पर प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के अभाव में यह कहना कि ये सभी पद इसी रूप में मीराबाई ने कहे थे, अत्यन्त साहस का कार्य होगा। इसी कारण भाषा, छाप आदि के विचार से कुछ पद संदिग्ध समझ-कर परिशिष्ट में दिए गए हैं। इनकी जीवनी के संबंध में अनेक विवाद थे। प्रामाणिक इतिहासों के आधार पर इनके जीवन की रूप रेखा तैयार की गई है और दंतकथाओं का विवेचन किया गया है। इनके पदों में राजस्थानी तथा गुजराती भाषा का प्राधान्य है इसलिए पुस्तक के अन्त में टिप्पणियाँ दे दी गई हैं और प्रतीकानुक्रमणिका भी लगा दी गई है।

इस प्रकार यथासाध्य इस संग्रह को उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है पर यह तो निश्चय है कि अभी इसमें अनेक त्रुटियाँ तथा अभाव हैं और आशा है कि सज्जन तथा विद्वान पाठकों के सहयोग से ये क्रमशः दूर हो जायँगी।

विनीत
व्रजरत्नदास

विजया-दशमी
सं० २००५

समर्पण

अनुश्रुति है कि मीराँ बाई गोपी
की अवतार थीं और
वह गोपी
श्री
ललिता
थीं
उन्हीं को

यह
'रत्न'

विषय-सूची

भूमिका

जीवन-खंड

१. विषय प्रवेश

लीलामय श्रीगिरिधरलाल के मुकुट की भक्तिरसामृतनिस्यंदिनी चंद्रिका के समान साक्षात् भक्ति की अवतार मीराबाई ने इस कर्मभूमि पर अवतरित होकर उन्हीं सर्वहृदयेश्वर भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति के जो पद बनाकर गान किए थे, उनकी मधुर स्वर-लहरी आज भी, उन्हीं पदों को पढ़ने पर, भावुक हृदय को तरंगित कर देती है। उद्भट काव्य-कौशल, प्रचंड पांडित्य आदि का लेश भी न होते, सरल भाषा में अपने पदों में इन कवियित्री ने अपना सारा हृदय खोलकर इस प्रकार रख दिया है कि उनके पढ़ने से, सुनने से आज भी हृदय का सारा कल्मष धुल जाता है। हिंदी साहित्य के इतिहास, एवं वैभक्तमाल तथा स्वदेश के इतिहास में इनक नाम स्वर्णाक्षरों में बराबर लिखा जाता है और लिखा जाएगा। हिंदी-साहित्य-प्रेमियों में तो स्यात् ऐसा ही कोई अभागा बच रहा होगा, जिसने इनका नाम न सुना हो और इनके पद पढ़े या सुने न हों। हिंदी साहित्य में स्त्री कवियित्रियों में इनका स्थान अब तक सर्वश्रेष्ठ है और तन्मयता, अनन्यता तथा निश्चल प्रेमोद्गार में यह श्रेष्ठतम पुरुष कवियों के समकक्ष हो गई हैं।

मीराबाई की श्रीगोविंद के प्रति जो भक्ति थी वह उस कोटि की थी, जो सांसारिक प्रबल से प्रबल विकारों के झंझावात को सहकर भी अडिग तथा अखंड बनी रहती है। मायका, ससुराल, सगे संबंधी, सखी सहेलियों के प्रेमपूर्ण उपदेश, मर्मस्पर्शी उपालंभ, व्यंग्यपूर्ण भर्त्सना तथा प्राणहारी प्रयासों में से कोई भी उन्हें उस मार्ग से डिगा न सका। उनका सत्याग्रह सत्याग्रह था, जिसे प्रचण्ड बलशाली नृपतिगण भी क्षणभर के लिए नहीं चलायमान कर सके। ऐसी भक्ति कभी निष्फल नहीं जाती और संसार की दृष्टि के परे सर्वलीलामय भगवान का इन्हें बराबर साक्षात् होता रहा था।

जिस प्रकार मैथिल-कोकिल विद्यापतिजी को हिंदी तथा मैथिली दोनों भाषाओं का कवि मानते हैं और दोनों के साहित्येतिहासों में उन्हें उच्चस्थान प्राप्त है उसी प्रकार मीराबाई को हिंदी, ब्रजभाषा तथा मेवाड़ी, और गुजराती में प्राप्त है। दोनों ही में इनका उल्लेख बड़े ही आदर के साथ किया जाता

हैं। मीराबाई के पद गुजरात से बिहार प्रांत तक तथा विंध्याटवी से हिमालय तक बराबर पढ़े तथा गाये जाते हैं।

भक्तों की जीवनी में प्रायः सदा देखा जाता है कि उनमें दो प्रधान विभाग होते हैं, जिन्हें लौकिक तथा अलौकिक कह सकते हैं। इहलोक की बातों में निस्पृह पर परलोक की चिंता में व्यग्र भारत लौकिक चरित्र-लेखन में सदा कंजूस रहा है, और यही कारण है कि उन महान् महात्माओं तक की जीवनी, जिन्होंने संसार की विचारधारा तथा प्रगति को बदल दिया था, आज पूर्ण-रूपेण नहीं प्राप्त है और जो कुछ प्राप्त है उसमें भी अलौकिक अंश ही अधिक है। यही मीराबाई की जीवनी में भी परिलक्षित होता है। इनकी जीवनी दंतकथाओं से इतनी भाराक्रांत हो गई है कि उसमें से सत्य का अन्वेषण करना भी एक साहस का काम हो गया है। लौकिक अंश प्रायः सर्वग्राह्य होता है और इसे यथाशक्ति राग, द्वेष आदि के कारण अज्ञानियों द्वारा मिश्रित अंशों का निराकरण कर शुद्ध ऐतिहासिक सत्य के आधार पर लिखना चाहिए। अलौकिक अंश आजकल के नए प्रकाश से आलोकित मस्तिष्कवालों की अश्रद्धा से सत्य नहीं माना जाता पर यह भी निर्भ्रांत नहीं कहा जा सकता। संसार के प्रायः सभी इतिहास-प्रसिद्ध विद्वानों, नृपतियों, महावीरों, महात्माओं आदि के विषय में इस प्रकार की अलौकिक गाथाएँ सुनने में आती हैं और इन सभी को एकदम असत्य कर देना साहसिक का कार्य हो सकता है। इसी प्रकार मीराबाई की जीवनी में दोनों अंश प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। देश के राजनैतिक इतिहास में स्त्री होने के कारण इनका उल्लेख स्पष्ट और विस्तार से नहीं मिलता।

मीराबाई की जीवनी के संबंध में कुछ साधन प्राचीन भक्तमालों में मिलते हैं, जिनमें प्रियदास, नाभाजी आदि के प्रमुख हैं। मीराबाई के पद-संग्रहों में भी कुछ साधन मिलता है और कुछ आधार जनश्रुति भी है। अब तक इनकी रचनाओं के बहुत छोटे २ संग्रह निकले हैं, जिनमें इनकी समग्र प्राप्त रचनाओं का संग्रह नहीं है और जो रचना प्राप्त हो गई है उसके विषय में भी [illegible] नहीं जा सकता। इनकी जीवनी के विषय में [illegible] और दंतकथाएँ भी अब तक जोड़ी जा रही हैं। इसी [illegible] मीराबाई में इसी प्रकार [illegible]। प्रथम में [illegible] [illegible]। दूसरे में [illegible] [illegible]

आना आदि अनर्गल प्रलाप किया गया है। भोजराज सन् १५१६ ई० के लगभग मरे और अकबर का सन् १५४२ में जन्म हुआ पर दोनों का समकालीन होना लिखा गया है। वास्तव में पहिले पहल स्व० मुंशी देवी-प्रसाद जी ने इनकी तथ्यपूर्ण छोटी जीवनी लिखी और बाद को उन्हीं की पुस्तिका से लोगों ने बराबर सहायता ली।

इतना सब गड़बड़ होते हुए भी मीराबाई की ख्याति भारतीय गगनांगण में ध्रुव तारा के समान अपनी ज्योति वितरित कर रही है और प्रत्येक प्रभु-प्रेमी को वह सत्य मार्ग बतला रही है, जिस पर चलकर कोई भी नहीं भटक सकता। किसी ने सत्य कहा है—

नाम रहेगो नाम सें सुनो सयाने लोय।
मीराँ सुत जायो नहीं, शिष्य न मूँड्यो कोय॥

वास्तव में पुत्र-पौत्रादि या शिष्य-परंपरा से किसी का नाम 'यही दो तीन चार पुश्त' तक रहता है पर स्वोपार्जित सत्कीर्ति से उसका नाम सदा के लिए अमर हो जाता है। इसके विपरीत प्रायः देखा जाता है कि सत्कीर्ति-लब्ध महान पुरुषों के कारण उनके पुत्र-पौत्रादि का भी नाम अमिट हो जाता है। मीराबाई का नाम आज उनकी भक्तिमयी कविता तथा भक्ति के अनुष्ठान के कारण अमर बना हुआ है और बना रहेगा। अब मीराबाई की जन्मभूमि, पितृकुल तथा श्वशुरकुल का ऐतिहासिक वृत्तांत देकर इनकी जीवनी पर विचार किया जायगा।

२. मेड़ता का संक्षिप्त इतिवृत्त

राजपुताना के समस्त क्षत्रिय वंशों में राठौड़ों की संख्या सबसे अधिक है अर्थात् प्रायः एक भाग राठौड़ हैं तो अन्य सभी मिलकर दो भाग हैं। इन राठौड़ों में भी मेड़तिया शाखा ही संख्या में सब से अधिक है और इनके पास केवल मारवाड़ राज्य के प्रायः आधे ठिकाने हैं। यह शाखा राव दूदाजी से चली है।

मेड़ता अजमेर से बीस कोस पश्चिम और जोधपुर से चालीस कोस पूर्व में स्थित है। जोधपुर रेलवे का स्टेशन मेड़ता सिटी के नाम से प्रसिद्ध है। इसका शुद्ध नाम महारेता या मांधातृ-पुर कहा जाता है, जिसका अपभ्रंश मेडंतक या मेड़ता हो गया है। राजा मांधाता ने इसे कई सहस्र वर्ष हुए तब बसाया था। इसके चारों ओर लाल पत्थर का प्राकार गिरी हालत में अब तक वर्तमान है। बहुत दिनों तक इस पर नागवंशियों का अधिकार रहने के बाद क्रमशः परमारों तथा प्रतीहारों का राज्य रहा। यह प्रतीहारों से मुसलमानों के अधिकार में गया और प्रायः दो शताब्दि बाद इनसे राव

दूदाजी ने यह स्थान छीन कर पुनः नए सिरे से बसाया। इन्होंने चतुर्भुज जी का मंदिर तथा अनेक प्रासाद बनवाए और इसकी इतनी उन्नति की कि वह एक ऐश्वर्यशाली राज्य में परिवर्तित हो चला परंतु राव मालदेव की ईर्ष्याग्नि में पड़कर उसका ह्रास होने लगा। इसने सं० १५९५ में मेड़ता विजय कर राव दूदाजी के बनवाए प्रासादों को गिराकर उसी पर मालकोट दुर्ग बनवाया। केवल चतुर्भुजजी का मंदिर अद्यावधि वर्तमान है, जिनका इष्ट सभी मेड़तिए राठौड़ों को है।

३. पितृवंश का इतिहास

मारवाड़-नरेश राव रिणमल के पुत्र राव जोधाजी इतिहास-प्रसिद्ध वीर थे। इनका जन्म वि० सं० १४७२ में हुआ था और यह ७३ वर्ष की अवस्था में सं० १५४५ में मरे थे। इन्होंने अपने नाम पर जोधपुर नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया था। इन्हें १९ पुत्र तथा एक पुत्री शृंगारदेवी थी। पुत्री का विवाह महाराणा रायमल्ल से हुआ था। राव रिणमल की बहन हंसकुमारी का विवाह राणा लाखा से हुआ था। राव जोधाजी के चौथे तथा पाँचवें पुत्र राव दूदाजी और वरसिंहजी जालौर के सोनीगरा चौहान राजा की पुत्री रानी चाँद कुँवर से थे। राव दूदाजी बड़े पराक्रमी तथा वीर थे। इनका जन्म सं० १४९७ वि० के आषाढ़ शुक्ल १५ को मांडोवर में हुआ था। सं० १५१८ वि० में राव जोधाजी ने अपने इन दो पुत्रों को सेना देकर मेड़ता विजय करने भेजा। दूदाजी ने मालवे के सुलतान महमूद शाह खिलजी (सं० १४९३-१५२६) की ओर से नियत अजमेर के शासक से मेड़ता तथा उसके आसपास की भूमि छीनकर वहीं अपना निवास-स्थान बनाया। इन्होंने मेड़ते को नए सिरे से बसाया और चतुर्भुजजी का मंदिर, महल तथा गढ़ बनवाए। सं० १५१८ के वैशाख शुक्ल ३ को दोनों भाई यहीं आकर रहने लगे। इन्हीं दूदाजी से मेड़तियों की प्रसिद्ध शाखा का आरंभ हुआ।

वि० सं० १५४४ में जोधाजी ने दूदाजी को आज्ञा दी कि वह जैतारण के सिंधल मेघा पर चढ़ाई कर उसे मारे। इसका कारण नरबदजी के भाई आसकरण की मृत्यु का प्रतिशोध मात्र था। जैतारण पहुँचने पर दूदाजी ने मेघा को द्वंद्व युद्ध के लिए ललकारा और युद्ध में उसे मार कर पिता की आज्ञा पूरी की[१]।

राव जोधाजी की मृत्यु पर सातलजी गद्दी पर बैठे। सं० १५४७ वि०

---

१ मुहणोत नैणसी की ख्यात भाग २ पृ० १३३।

में दूदाजी तथा वरसिंह ने मेड़ते से सांभर पर आक्रमण कर उसे लूट लिया। यह समाचार पाकर दूसरे वर्ष अजमेर के शासक मल्लू खाँ ने मेड़ते पर चढ़ाई की। कोसाना गाँव में उसने गौरी के पूजनार्थ वाहर गई स्त्रियों को पकड़ लिया। इसपर एक ओर से ये दोनों भाई तथा दूसरी ओर से राव सावलजी चढ़ दौड़े। मल्लू हारकर भागा और स्त्रिएँ भी मिल गई पर सातलजी घायल होकर उसी रात्रि मर गया।

सं० १५५० में धोखा देकर मल्लूखाँ ने बरसिंह को अजमेर में कैद कर लिया, जिस समाचार को सुनकर जोधपुर से राव सूजाजी, बीकानेर से बीकाजी तथा मेड़ते से दूदाजी अजमेर पर चढ़ दौड़े। मल्लू यह देखकर घबड़ा उठा और बरसिंहजी को छोड़ दिया। इसके छ महीने बाद इनकी मृत्यु हो गई। दूदाजी ने इनके पुत्र सीहाजी आदि को रीयाँ ठिकाना जागीर में दिया था। सीहाजी की पाँचवी पीढ़ी में केशवदास हुए, जिन्हें जागीर में झाबुआ राज्य प्रदान किया गया था, जो अब तक उनके वंश में है। इस घटना के कुछ दिन पश्चात् ही राणा रायमल्ल की पुत्री गौरज्याबाई से बीरमदेव का विवाह हुआ, जिससे मेड़ता तथा मेवाड़ में दृढ़ मित्रता हो गई। इस विवाह से प्रतापसिंह पुत्र हुए, जिन्हें मेवाड़ की ओर से घाणेराव नामक बड़ा ठिकाना मिला, जो अब तक उनके वंश में है।

राव दूदाजी को दो रानियाँ थीं। प्रथम सीसौदिया वंश की सादड़ी की चंद्रकुँअर तथा दूसरी चौहान मृगकुँअर थीं। इनसे पाँच पुत्र तथा एक पुत्री गुलाबकुँअर थीं। राव दूदाजी सं० १५७२ में मर गए तब उनके प्रथम पुत्र राव बीरमदेव मेड़ता के अधिकारी हुए, जिनका जन्म सं० १५३४ वि० में हुआ था। इन्होंने दूसरे ही वर्ष सं० १५७३ में मीराबाई का विवाह राणा साँगा के पाटवी कुमार भोजराज के साथ कर दिया। ईडर-नरेश रायमल्ल को, जिन्हें राणा साँगा की पुत्री ब्याही थी, जब उनके चाचा भीम ने सिंहासनच्युत कर दिया तब राणा ने पुनः उसे वहाँ का राजा बनाया। पर सं० १५७२ में गुजरात के मुजफ्फरशाह ने पुनः रायमल्ल को हटाकर भीम के पुत्र भारमल को वहाँ का राजा बना दिया, इस पर सं० १५७४ वि० में राणाजी, जोधपुर के राव गांगाजी तथा राव बीरमदेवजी ने चढ़ाई कर ईडर फिर रायमल्ल को दिला दिया।

सं० १५८२ में राव बीरमदेवजी अपने दो भाई रत्नसिंह तथा राय-मल्ल के साथ चार सहस्र सेना लेकर राणा साँगा के सहायतार्थ कन्हवा युद्ध में गए थे और उस युद्ध में इनके दोनों भाई मारे गए थे, जो बाबर

से हुआ था। राव गाँगाजी तथा शेखाजी के सं० १५८५ के युद्ध में शेखाजी के सहायक नागौर के शासक दौलत खाँ का हाथी भागकर मेड़ते पहुँचा, जिसे वीरमजी ने पकड़ लिया। राव गाँगा के पुत्र मालदेव भी पीछे पहुँचे और उसे माँगा पर वीरमदेव ने नहीं दिया। इस पर दोनों में वैमनस्य हो गया। राव गाँगा के कहलाने पर वीरमदेव ने वह हाथी भेज दिया पर वह मार्ग ही में मर गया। इस पर भी मालदेव ने वैमनस्य बनाए रखा। गाँगा की मृत्यु पर मालदेव ने गद्दी पर बैठते ही इनसे झगड़ा चलाया। सं० १५९५ में वीरमदेवजी ने अजमेर विजय किया, जिसे मालदेव ने उनसे माँगा। इनके अस्वीकृत करने पर उसने चढ़ाई की और इनसे मेड़ता छीन लिया। वीरमजी यहाँ से अजमेर गए पर राव मालदेव ने वहाँ भी सेना भेजी। पहिले वह जीते पर दूसरी बार हार गए। इसके अनंतर वीरमदेव रायमल शेखावत के पास एक वर्ष तक रहे। यहाँ से यह अपनी रानियों तथा परिवार को रणथम्भौर दुर्ग में सुरक्षित रूप से रखकर पहिले मालवा गए पर एक वर्ष बाद वहाँ के सुलतान के सहायता देना एकदम अस्वीकृत कर देने पर यह शेरशाह के पास गए और सं० १६०० में उसे राव मालदेव पर चढ़ा लाए। दोनों पक्ष की सेनाओं का सामना हुआ पर राव मालदेव शेरशाह की चालाकी से सशंकित हो लौट गया। इसके कुछ सरदार लड़कर मारे गए और जोधपुर पर शेरशाह का अधिकार हो गया। राव वीरमदेव को मेड़ता पर अधिकार मिल गया। दो वर्ष बाद शेरशाह के मर जाने पर राव मालदेव ने चढ़ाई कर जोधपुर पर अधिकार कर लिया। सं० १६०० के फाल्गुन मास में वीरमदेव की मृत्यु हो गई। वीरमदेवजी की चार रानियाँ थीं, जिनसे इन्हें तेरह पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ थीं।

वीरमदेव की मृत्यु पर जयमल मेड़ते का स्वामी हुआ। इसका जन्म सं० १५६४ में हुआ था। राव मालदेव ने मेड़ते पर कई चढ़ाई की थीं। कहते हैं कि बाईस युद्ध दोनों पक्ष में हुए थे। अंतिम बार भी जयमल्ल युद्ध को तैयार हुए पर महाराणा उदयसिंह ने उनको समझा कर अपने साथ ले लिया और राव मालदेव का सं० १६११ में मेड़ता पर दुबारा अधिकार हो गया। कुछ दिन बाद महाराणा की सहायता से जयमल ने मेड़ते पर पुनः अधिकार कर लिया पर कुछ ही महीनों बाद सं० १६१३ के अंत में राव मालदेव ने फिर पहुँचकर उसे ले लिया तथा दूदाजी के समय तक के बने महल आदि गिरवाकर वहाँ मालकोट नामक दुर्ग अपने नाम पर बनवाया। जयमलजी वेदनोर चले गए पर राव

मालदेव ने सं० १९१९ में उन्हें वहाँ से भी निकाल दिया तब वह अजमेर के सूबेदार की सहायता से मेड़ते पहुँचे और उसे विजय कर लिया। शरफुद्दीन के बागी होने पर अकबर ने राव जयमल पर शंका कर मेड़ता जगमल को दे दिया तब जयमलजी महाराणा के पास चले गए और वहीं चित्तौड़ की तृतीय शाका के समय सं० १६२४ में मारे गए। मेवाड़ के सर्दारों में बेदनोर के ठाकुर इन्हीं जयमल के वंश में हैं।

दूदाजी के चतुर्थ पुत्र राव रत्नसिंहजी थे, जिन्हें उन्होंने कुड़की (चोकड़ी), बाजोली आदि बारह गाँव जागीर में दिए थे। राव रत्नसिंह वहीं कुड़की में रहते थे। यह बड़े साहसी तथा युद्ध-प्रिय थे। इन्हें केवल एक पुत्री मीराँबाई के सिवा और कोई संतान नहीं हुई थी। इनकी स्त्री का जब देहांत हो गया तब इनकी पुत्री मीराँबाई को राव दूदाजी ने अपने पास बुला लिया। रत्नसिंह अब स्वतंत्र होकर विशेषतः युद्ध ही में रत रहने लगे। सं० १५८४ वि० में जब राणा साँगा तथा बाबर में कन्हवा में युद्ध हुआ तब जोधपुर की सेना के सेनापति रायमल तथा रत्नसिंह थे और दोनों ही उस युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुए।

४. पति-वंश का इतिहास

चित्तौड़ का गहलोत या सिसौदिया वंश संसार के प्राचीन तथा प्रसिद्ध राजवंशों में गिना जाता है। राणा लाखाजी सं० १४३९ वि० में उस वंश की राजगद्दी पर बैठे और पंद्रह वर्ष राज्य कर स्वर्ग सिधारे। इनके पुत्र मोकल जी अल्पावस्था में गद्दी पर बैठे और सं० १४९० वि० में एक षड्यंत्र में मारे गए। इनके पुत्र प्रसिद्ध महाराणा कुंभकर्ण या कुंभाजी राजगद्दी पर आसीन हुए और अनेक युद्धों में विजय प्राप्त कर सं० १५२५ वि० में अपने ही पुत्र उदयसिंह द्वारा मारे गए। यद्यपि उदयसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठा पर अंत में हटाया गया और इसका भाई रायमल्ल सं० १५३० में गद्दी पर बैठा। इसकी सन् १५६६ में मृत्यु हुई। इसीके पुत्र संग्रामसिंह थे जो राणा साँगा के नाम से भारत-प्रसिद्ध नरेश हुए। इनका जन्म सं० १५३९ में हुआ था और यह १५६६ में गद्दी पर बैठे। यह तेरह भाई थे जिनमें दो इनसे बड़े थे। इन्होंने गुजरात तथा मालवा के सुलतानों और दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोदी को परास्त किया था। इन्होंने अपने राज्य का बहुत विस्तार बढ़ाया। कहते हैं, कि इन्होंने अट्ठाईस विवाह किए, जिनसे इन्हें सात पुत्र तथा चार पुत्रियाँ हुईं। इनके नाम क्रमशः भोजराज, कर्णसिंह, रत्नसिंह, विक्रमादित्य, उदयसिंह, पर्वतसिंह और कृष्णसिंह थे। पुत्रियों का नाम कुँवरबाई, गंगाबाई,

पद्मावाई तथा राजवाई था। इन पुत्रों में प्रथम दो तथा अंतिम दो पिता के सामने ही मर गए। राणा साँगा की मृत्यु माघ सुदी ९ सं० १५८४ को हुई थी।

पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा अपने उदयपुर राज्य के इतिहास में भोजराज तथा उनकी पत्नी मीरावाई के विषय में इस प्रकार लिखते हैं—

महाराणा सांगा का ज्येष्ठ कुँवर भोजराज था, जिसका विवाह मेड़ते के राव वीरमदेव के छोटे भाई रत्नसिंह की पुत्री मीरावाई के साथ वि० सं० १५७३ (ई० सन् १५१६) में हुआ था। परंतु कुछ वर्षों बाद महाराणा की जीवित-दशा में ही भोजराज का देहांत हो गया, जिससे उसका छोटा भाई रत्नसिंह युवराज हुआ। कर्नल टॉड ने जनश्रुति के अनुसार मीरावाई को महाराणा कुंभा की राणी लिखा है[1] और उसी आधार पर भिन्न-भिन्न भाषाओं के ग्रंथों में भी वैसा ही लिखा जाने से लोग उसको महाराणा कुंभा की राणी मानने लग गए हैं, जो भ्रम ही है।

हिंदुस्तान में विरला ही ऐसा गाँव होगा, जहाँ भगवद्भक्त हिंदू स्त्रियाँ या पुरुष मीरावाई के नाम से परिचित न हों और विरला ही ऐसा मंदिर होगा, जहाँ उसके वनाए हुए भजन न गाए जाते हों। मीरावाई मेड़ते के राठौड़ राव दूदा के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की, जिसको दूदा ने निर्वाह के लिए १२ गाँव दे रक्खे थे, इकलौती पुत्री थी। उसका जन्म कुड़की गाँव में वि० सं० १५५५ (ई० सन् १४९८) के आसपास[2] होना माना जाता है। वाल्यावस्था में ही उसकी माता का देहांत हो गया, जिससे राव दूदा ने उसे अपने पास वुलवा लिया और वहीं उसका पालन पोषण हुआ। वि० सं०

---

१ मीरावाई 'मेड़तणी' कहलाती हैं, जिसका आशय मेड़तिया राजवंश की कन्या है। जोधपुर के राव जोधा का एक पुत्र दूदा, जिसका जन्म वि० सं० १४९७ (ना० प्र० प० भाग १, पृ० ११४) में हुआ था, वि० सं० १५१८ (ई० स० १४६१) या उससे पीछे मेड़ते का स्वामी वना। उसी से राठोड़ों की मेड़तिया शाखा चली। दूदा का ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेव जिसका जन्म वि० सं० १५३४ (ई० स० १४७७) में हुआ था (वही पृ० ११४), उस (दूदा) के पीछे मेड़ते का स्वामी वना। उसके छोटे भाई रत्नसिंह की पुत्री मीरावाई थी। महाराणा कुंभा वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में मारा गया, जिसके ९ वर्ष वाद मीरावाई के पिता के वड़े भाई वीरमदेव का जन्म हुआ था। ऐसी दशा में मीराँवाई का महाराणा कुंभ की राणी होना सर्वथा असंभव है।

२. हरविलास सारडा ; महाराणा सांगा ; पृ० ९६।

१५७२ (ई० सन् १५१५) में राव दूदा के देहांत होने पर बीरमदेव मेड़ते का स्वामी हुआ। गद्दी पर बैठने के दूसरे साल उसने उसका विवाह महाराणा साँगा के कुँवर भोजराज के साथ कर दिया। विवाह के कुछ वर्षों बाद युवराज भोजराज का देहांत हो गया। यह घटना किस संवत में हुई, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुआ, तो भी संभव है कि यह वि० सं० १५७५ (ई० सन् १५१८) और १५८० (ई० सन् १५२३) के बीच किसी समय हुई हो।

मीराबाई बचपन से भगवद्भक्ति में रुचि रखती थी, इसलिए वह इस शोकप्रद समय में भी भक्ति में ही लगी रही। यह भक्ति उसके पितृ-कुल में पीढ़ियों से चली आती थी। दूदा, बीरमदेव और जयमल सभी परम वैष्णव थे। वि० सं० १५८४ (ई० सन् १७२७) में उसका पिता रत्नसिंह महाराणा साँगा और बाबर की लड़ाई में मारा गया। महाराणा साँगा की मृत्यु के बाद रत्नसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ और उसके भी वि० सं० १५८८ (ई० सन् १५३१) में मरने पर विक्रमादित्य मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। इस समय से पूर्व ही मीराबाई की अपूर्व भक्ति और भावपूर्ण भजनों की ख्याति दूर दूर तक फैल गई थी और सुदूर स्थानों से साधु संत उससे मिलने आया करते थे। इसी कारण विक्रमादित्य उससे अप्रसन्न रहता और उसको तरह तरह की तकलीफें दिया करता था। ऐसा प्रसिद्ध है कि उसने उस (मीराबाई) को मरवाने के लिए विष देने आदि के प्रयोग भी किए, परंतु वे निष्फल ही हुए। मीराबाई की ऐसी स्थिति जान कर उसको बीरमदेव ने मेड़ते बुला लिया। वहाँ भी उसके दर्शनार्थी साधु संतों की भीड़ लगी रहती थी। जब जोधपुर के राव मालदेव ने बीरमदेव से मेड़ता छीन लिया, तब मीराबाई तीर्थयात्रा को चली गईं और द्वारिकापुरी में जाकर रहने लगीं, जहाँ वि० सं० १६०३ (ई० सन् १५४६) में[1] उसका देहांत हुआ।

भक्त शिरोमणि मीराँबाई के बनाए हुए ईश्वरभक्ति के सैकड़ों भजन भारत भर में प्रसिद्ध हैं और जगह-जगह गाए जाते हैं। मीराबाई का मलार राग तो बहुत ही प्रसिद्ध है। उसकी कविता भक्ति रस-पूर्ण, सरल और सरस है। उसने राग गोविंद नामक कविता का एक ग्रंथ भी बनाया था। मीराबाई के संबंध की कई तरह की बातें पीछे से प्रसिद्ध हो गई हैं, जिनमें ऐतिहासिक तत्व नहीं है।

---

१ हरविलास सारड़ा, महाराणा सांगा ; पृ० ९६। मुंशी देवीप्रसाद ; मीराबाई का जीवन चरित ; पृ० २८। चतुरकुलचरित्र, भाग १ पृ० ८०।

द्वितीय पंक्ति का मूल पाठ इस प्रकार था—

तुलसी मस्तक नवतु है धनुष वान लो हाथ ॥

क्योंकि यह समय के अनुरूप प्रार्थना थी। ठीक इसी प्रकार अज्ञान के कारण यह दंतकथा प्रचलित की गई है कि मीराबाई विवाहोपरांत श्वशुरालय पहुँचते ही देवी की पूजा न कर सास से लड़ बैठी। अस्तु, अब देखना चाहिए कि इनके विवाह के पहिले इन दोनों वंश में कितने संबंध हुए थे। मेवाड़ तथा मारवाड़ के बीच का सर्वप्रथम ज्ञात संबंध एक ऐतिहासिक घटना है। राणा लाखा के पाटवी राजकुमार राव चूँड़ाजी से राव रिणमल की बहिन हंसकुमारी का विवाह संबंध करने के लिए जब संदेश आया तब राणा लाखा की साधारण हँसी पर राव चूँड़ाजी ने यह विचार कर कि पिता जी को अभी विवाह की इच्छा है स्वयं विवाह करना अस्वीकार कर दिया। अंत में चूँड़ाजी के इस भीष्म-प्रतिज्ञा करने पर कि हंसकुमारी का पुत्र ही मेवाड़ का अधिकारी होगा, यह विवाह हुआ था। इसका फल अच्छा नहीं हुआ और दोनों वंश में इसके कारण बहुत दिनों तक झगड़ा चलता रहा। जब जोधाजी का मारवाड़ पर अधिकार हो गया तथा दोनों पक्ष में संधि की बातचीत चली तब राणा कुम्भा ने अपने वंश की एक कन्या जोधा जी को व्याह दी थी। इसके अनंतर जोधाजी की पुत्री शृंगारदेवी का विवाह राणा कुंभा के पुत्र राणा रायमल्ल जी से हुआ। राव जोधाजी के पौत्र बाघा सूजावत की पुत्री धनबाई या धनकुँवर का विवाह राणा रायमल्ल के पुत्र प्रसिद्ध राणा साँगा से हुआ था, जिनसे भोजराज[1], कर्णसिंह तथा रत्नसिंह पुत्र हुए थे।[2] राणा रायमल्ल ने अपनी एक पुत्री का विवाह राव जोधाजी के पौत्र बीरमजी से किया था तथा राणा साँगा जी ने अपनी एक पुत्री पद्माबाई का विवाह राव गांगा जी के साथ किया था। इन संबंधों के अनंतर वीरमदेव के भाई रत्नसिंह की पुत्री मीराबाई का विवाह राणा साँगा के पुत्र राजकुमार भोजराज से हुआ था। मीराबाई राणा साँगा की पुत्री की भ्रातुष्पुत्री अर्थात् राणा साँगा की नातिनी हुईं तथा साथ ही पुत्र वधू भी हुईं। भोजराज की बहिन तथा मीराबाई की ननद पद्माबाई राव गाँगा जी को व्याही थीं, जो मीराबाई के भाई लगते थे। ये दोनों जोधा जी के प्रपौत्र तथा प्रपौत्री थीं। मीराबाई की बूआ धनाबाई के भोजराज पुत्र थे अर्थात्

---

१. वीर विनोद में कुँअर भोजराज की माता सोलंकी रायमल की पुत्री कुँवर बाई लिखी हैं, जो बड़वे देवीदान की ख्यात के आधार पर है।

२. वीर विनोद, बड़वे देवीदीन की ख्यात तथा नैणसी की ख्यात।

फुफेरे भाई का संबंध था। तात्पर्य यह कि मीराबाई का किसी अजनबी वंश में विवाह नहीं हुआ था प्रत्युत् ऐसे जगह हुआ था, जहाँ उनकी बहिन, बूआ, भाई आदि सभी मौजूद थे और संभव है कि वे उस घर में बराबर गई आई हों। वे वहाँ के आचार-विचार से परिचित अवश्य रहा होंगी और साधारण कुलाचार के लिए वे किसीसे कभी न लड़ बैठी होंगी।

६. मरुधराधीशों का वंशवृक्ष
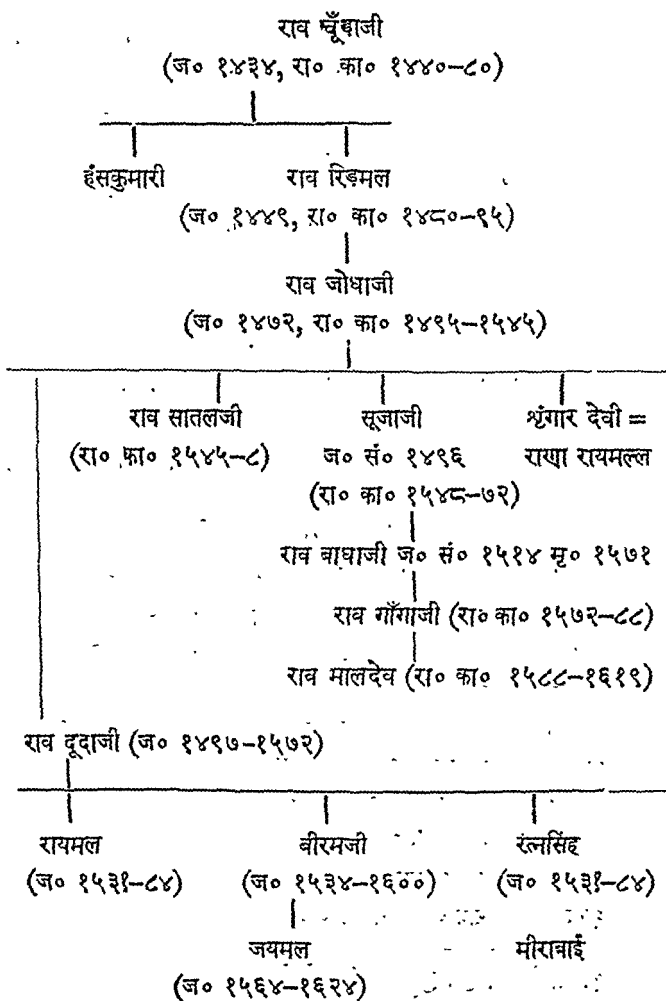
मेवाड़पति का वंशवृक्ष

राणा क्षेत्रसिंह (रा० का० १४२१–३९)
|
(रा० का० १४३९–५४) राणा लाखा = हंसकुमारी
|
(ज० १४४९ रा० का० १४५४–९०) राणा मोकल
|
राणा कुंभ (ज० १४७५ रा० का० १४९०–१५२५) — लालबाई = अचलसिंह खीची
|
(रा० का० १५२५–६६) राणा रायमल्ल = शृंगारदेवी — रमादेवी[1]
|
(रा० का० १५६६–१५८५) राणा साँगा = धनाबाई
|
पद्मावती — भोजराज — राणा रत्नसिंह (रा० का० १५८५–८८) — राणा विक्रमादित्य (रा० का० १५८८–९३) — राणा उदयसिंह (रा० का० १५९५–१६२८)
|
(रा० का० १६२८–१६५४) राणा प्रताप

७. काल चक्र

(१४३०–१७००)

१४३९	राणा लाखाजी की राजगद्दी
१४५२	मारवाड़ राज्य-संस्थापन
१४७२	जोधाजी का जन्म
१४९७	राव दूदाजी का जन्म
१५१५	जोधपुर राजधानी बसाना
१५१८	मेड़ता राज्य-संस्थापन
१५२५	राणा कुंभा की मृत्यु
१५३०	राणा रायमल की राजगद्दी
१५३४	राव वीरमदेव का जन्म

---

१. भारतेंदुजी कृत पुरावृत्त संग्रह में लेख ।

१५३५	श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्य का जन्म
१५३८	राणा साँगा का जन्म
१५४१	श्री स्वामी हरिदासजी का जन्म
१५४५	जोधाजी की मृत्यु
१५५४	तुलसीदास जन्म
१५५७	भोजराज का जन्म
१५५९	हितहरिवंशजी का जन्म
१६६०[1]	मीराबाई का जन्म
१५६४	जयमलजी का जन्म
१५६६	राणा साँगा की राजगद्दी
१५६८	श्री जीव गोस्वामी का जन्म, मालदेव का जन्म
१५७२	गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी का जन्म, राव दूदाजी की मृत्यु
१५७३	मीराबाई का विवाह
१५७६	श्री रूप गोस्वामी का वृंदावन में आना
१५७८	भाद्र शुक्ल १२ राणा उदयसिंह का जन्म
१५८०	भोजराज की मृत्यु, मीरा का वैधव्य
१५८४	मीराबाई के पिता रत्नसिंह तथा पितृव्य रायमल की मृत्यु, राणा साँगा की मृत्यु, राणा रत्नसिंह की राजगद्दी
१५८७	महाप्रभु वल्लभाचार्य का निधन
१५८८	राणा रत्नसिंह की मृत्यु, विक्रमाजीत की राजगद्दी, बहादुर शाह गुजराती का चित्तौड़ पर आक्रमण, मालदेव की राजगद्दी, मालदेव का वीरमदेव की सहायता से भद्राजुन पर अधिकार।
१५८८–९	मीराबाई का मेवाड़ त्याग कर मेड़ता गमन
१५८९	मालदेव की मेड़ता पर चढ़ाई
१५९०	दौलत खाँ ने मेड़ता पर चढ़ाई की तब मालदेव ने वीरमदेव की सहायता के लिए नागौर पर अधिकार कर लिया
१५९२	बहादुर शाह गुजराती का चित्तौड़ पर अधिकार, श्री जीव गोस्वामी का वृंदावन में आना

१. चतुरकुल चरित्र में सं०-१५५५ लिखा है। श्री सुखवीरसिंह गहलोत जन्म तिथि श्रावण शुक्ल १ सं० १५६१ वि० लिखते हैं।

१५९३	विक्रमाजीत का मारा जाना, बनवीर की राजगद्दी
१५९५	उदयसिंह की राजगद्दी, मालदेव का मेड़ता पर अधिकार तथा मीराबाई का मेड़ता त्याग
१५९५–६	वृंदावन-गमन, द्वारिका-गमन
१५९७	बनवीर का हटाया जाना
१५९९	अकबर का जन्म
१६००	मालदेव तथा शेरशाह का युद्ध, मेड़ता पर बीरमदेव का अधिकार
१६०१	बीरमदेव की मृत्यु
१६०३	मीराबाई का निधन[1] (चतुरकुल चरित्र के अनुसार)
१६०८	गोकुलनाथजी का जन्म
१६११	मेड़ता पर मालदेव का पुनः अधिकार
१६१२	व्यासजी का वृंदावन आगमन
१६१३	अकबर की राजगद्दी
१६२०	तानसेन का अकबर के दरबार में आना, मेड़ता पर अकबर का अधिकार
१६२४	अकबर का चित्तौड़ पर अधिकार, जयमल मेड़तिया की मृत्यु
१६२८	भाद्र शुक्ल १२ राणा उदयसिंह का मरण
१६३०	अकबर का वृंदावन आना
१६३१	मानस का आरंभ
१६४२	गोस्वामी विट्ठलनाथजी का निधन
१६५२	श्रीजीव गोस्वामी का निधन
१६८०	तुलसी-निधन
१६९०	गोकुलनाथजी का निधन

८. समय–निर्द्धारण

मीराबाई के जन्म-स्थल का, उनके पति के तथा पिता के वंशों का एतद्विषयक पाँच-पाँच छ-छ पीढ़ियों का इतिहास आदि दे दिया जा चुका है और उनसे इनके समय, जीवनी आदि पर निश्चयात्मक पूरा प्रकाश पड़ रहा है पर तब भी अन्य साधनों से इस संबंध में जो कुछ सहायता और

---

१. श्री सुखवीरसिंह गहलोत मृत्यु तिथि चैत्र शुक्ल २ सं० १६२५ वि० लिखते हैं।

प्राप्त हो सकती है उन सबका विवेचन भी आवश्यक है। जिन साधनों ने दंतकथाओं के आधार पर इनके जीवन-संबंधी अनेक भ्रम पैदा कर दिए हैं उन सब का समाधान तथा परीक्षा कर उन्हें दूर करना भी कम आवश्यक नहीं है, इसलिए यथासाध्य प्रायः सभी साधनों का समयानुक्रम से संग्रह किया गया है और उनपर विचार कर उनका निष्कर्ष भी दे दिया गया है।

इस प्रकार के साधनों में प्रधान वह है, जो मीराबाई की निजी रचनाओं से एकत्र किया गया है। मीरा ने किसी प्रबंध काव्य की रचना की नहीं है, केवल स्फुट पद बनाए हैं पर यत्र तत्र पदों में अपने विषय में बहुत कुछ लिखा है। अपने समय के तथा पूर्व के भक्तों तथा भक्त-कवियों का उल्लेख किया है और कुछ ऐसी बातें भी आ गई हैं, जिनसे इनके समय तथा जीवनी पर काफी प्रकाश पड़ता है। मीराबाई का भी प्राचीन संग्रह-ग्रंथों, भक्तमाल आदि में आदर से उल्लेख हुआ है और उनकी अलौकिक जीवनी का बराबर विवरण दिया गया है। जो दंतकथाएँ जनश्रुति के आधार पर चल पड़ी हैं, उनसे भी सहायता ली गई है और उनकी सचाई आदि की विवेचना भी की गई है। अब पहिले प्राचीन संग्रहकारों के उद्धरण आदि दिए जाएँगे।

अ. प्राचीन संग्रहों में मीराबाई का उल्लेख

ऐसे ग्रंथकारों में, जिन्होंने मीराबाई का उल्लेख किया है, सबसे प्राचीन हरिरामजी व्यास हो गए हैं, जो व्यासजी के नाम ही से अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके अनंतर नाभादासजी तथा ध्रुवदासजी आते हैं। दक्षिण के संत तुकारामजी प्रायः इन्हीं लोगों के समकालीन हैं। ये सभी सत्रहवीं शताब्दि विक्रमाब्द में हुए हैं। चौरासी वैष्णवों की वार्ता भी प्रायः इसी शताब्दि की रचना है। इसके अनंतर क्रमशः राघवदास, चरणदास, नागरीदास आदि आते हैं। इन सभी संग्रहकारों की उनकी रचनाओं तथा समय के साथ पहिले तालिका दे दी जाती है।

संख्या	नाम	समय	रचना
१	हरिरामजी व्यास	सं० १५६७–१६३५	शब्द
२	नाभादास	र० का० सं० १६४२–१६५१	भक्तमाल
३	प्रियादासजी टीकाकार	समाप्ति का० सं० १६७९	भक्तिरसबोधिनी टीका
४	ध्रुवदासजी	र० का० १६८०–१७००	भक्त नामावली

संख्या नाम	समय	रचना
५–६	र० कां० सं० १५५१ तथा सं० १६४७ के लगभग	चौरासी तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता
७ तुकाराम	सं० १६६५–१७	अभंग
८ राघवदास दादूपंथी	जन्म सं० १६५३ मृ० सं० १७४६	भक्तमाल
९ नागरीदास	१७५६–१८१६	पदप्रसंग मालिका
१० चरणदास	१७६०–१८३८	'शब्द'
११ दयाबाई	१७६५–१८४०	विनय मालिका
१२ नंदराम	र० का० १७४०–६० लगभग	बारहमासा
१३ प्रीणधन	अज्ञात	
१४ बख्तावर	"	
१५ जन लछमन	"	
१६ सुदरदास कायस्थ	प्रायः १८५०–१९००	
१७ कर्नल टॉड	सन् १७८२–१८३५	
१८ ठा० शिवसिंह	र० का० सं० १९३३–४	शिवसिंह सरोज
१९ महाराज रघुराजसिंह	सं० १८८०–१९३६	राम रसिकावली
२० महाकवि श्यामलदानजी		वीर विनोद
२१ मलूकदास	सं० १६३१–१७३९	ज्ञानबोध
२२ भगवत रसिक	र० का० १८३०–५०	भक्त नामावली
२३ श्रीसीताराम शरण भगवान प्रसाद		भक्तमाल की टीका

व्यासजी

यह संस्कृत के बड़े विद्वान तथा तर्कशास्त्री थे। सं० १६१२ में पैंतालीस वर्ष की अवस्था में वृंदावन आकर यह श्रीहितहरिवंशजी के शिष्य हुए। इससे इनका जन्म-संवत् निश्चय हो जाता है, जो विक्रमाब्द सं० १५६७ है। इनके सेव्य ठाकुर श्रीयुगुलकिशोरजी का मंदिर अद्यावधि पन्ना में है। इन्होंने अपने पदों में अनेक भक्तों का उल्लेख किया है, जिनमें मीराबाई का भी नाम आया है। दो पदों में इनके विषय में इस प्रकार लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि मीराबाई इनके समय जीवित नहीं

थी पर साथ ही यह भी ध्वनि निकलती है कि उनके निधन को बहुत दिन नहीं हुए हैं।

इतनौ है सब कुटुम हमारौ।
सैन, धना अरु नामा, पीपा, कबीर रैदास चमारौ॥
रूप सनातन कौ सेवक गंगलभट्ट सुढारौ।
सूरदास, परमानंद, मेहा, मीरा भक्ति बिचारौ॥
ब्राह्मन राजपुत्र कुल उत्तम तेऊ करत जाति कौ गारौ।
आदि अंत भक्तनि कौ सर्वसु राधा वल्लभ प्यारौ॥
आसु कौ हरिदास रसिक हरिवंश न मोहि बिसारौ।
इहि पथ चलत स्याम-स्यामा कै 'व्यासहि' बोरौ भावैं तारौ॥

बिहारहि स्वामी बिनु को गावै।
बिनु हरिवंशहि राधा-वल्लभ को रस-रीति सुनावै॥
रूप-सनातन बिनु को बृंदा बिपिन माधुरी पावै।
कृष्णदास बिनु गिरिधर जू कौं को अब लाड़ लड़ावै॥
मीराबाई बिनु को भक्तनि पिता जानि उर लावै।
स्वास्थ परमारथ जैमल बिनु को सब बंधु कहावै॥
परमानंददास बिनु को अब लीला गाय सुनावै।
सूरदास बिनु पद रचना कौं कौन कविहि कहि आवै॥
और सकल साधुन बिनु को अब यह कलिकाल कटावै।
'व्यासदास' इन सब बिनु को अब तन की तपति बुझावै॥

द्वितीय पद से मीराबाई का साधु महात्माओं के प्रति विशेष श्रद्धा-दृष्टि रखना स्पष्ट है। ये पद व्यासजी के राधावल्लभीय संप्रदाय में दीक्षित होने के बाद के हैं, क्योंकि उसका इनमें उल्लेख ही है। ये पद सं० १६१२ के बाद के हैं और यद्यपि व्यासजी का निश्चित मृत्यु-संवत् नहीं ज्ञात है पर वह सं० १६३० के लगभग होगा।

नाभादास तथा प्रियादास

प्रथम का वास्तविक नाम नारायणदास था तथा यह हिंदू-समाज के उच्च वर्णों में से नहीं थे। यह अंधे थे और इनके गुरु अग्रदासजी ने इनका पालन-पोषण किया था। अग्रदासजी श्रीरामानंदजी के शिष्य अनंतानंदजी के शिष्य कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे और जयपुर के अंतर्गत गलता पहाड़ी पर रहते थे। जिस पर्वत-श्रृंखला ने जयपुर नगर को वर्तुलाकार घेर रखा है उसके एक ओर आमेर दुर्ग तथा ठीक दूसरी ओर गलता

पहाड़ी है। इसपर से जयपुर नगर का दृश्य अच्छा दिखलाई पड़ता है। यहाँ एक गोमुख से पानी गिरकर एक कुंड बनता है और इसमें से नीचे जाकर दूसरे तालाब में तथा उसमें से तीसरे में जाता है। कुंड का पानी स्वच्छ है। नीचे कई मंदिर हैं तथा यह स्थान दर्शनीय है। जयपुर बसने के पहिले अवश्य ही यह स्थान साधु-संतों के योग्य एकांत स्थल रहा होगा। इन्हीं अपने गुरु अग्रदासजी के कहने से नाभादासजी ने भक्तमाल की रचना की।

नाभादासजी का समय उनकी रचना भक्तमाल से इस प्रकार ज्ञात होता है कि इन्होंने उसमें गोस्वामी श्री गिरधरदासजी तथा गोस्वामी श्री तुलसीदासजी का उल्लेख वर्तमान कालिक क्रिया में किया है। यथा—

१—श्री वल्लभजू के वंश में सुरतरु गिरिधर भ्राजमान॥

२—रामचरण रस मत्त रहत अहनिशि व्रतधारी॥

गोस्वामी श्री गिरिधरदासजी सं० १६४२ में श्री नाथद्वारा के टीकायत हुए थे और इसी के बाद वे प्रसिद्ध हुए। गोस्वामी तुलसीदासजी का निधन सं० १६८० में हुआ था। ओड़छा नरेश राजा मधुकरशाह की मृत्यु सं० १६५१ में हुई थी और उनका उल्लेख भूतकाल में हुआ है। इस प्रकार यह निश्चित है कि नाभादासजी ने भक्तमाल की रचना इन्हीं दोनों सं० १६४२ तथा सं० १६५१ के बाद और सं० १६८० के बीच की होगी। श्री रामानंदजी का समय भी पंद्रहवीं शताब्दि माना जाता है और उससे भी यह समय मानना उचित है।

इस भक्तमाल में प्रत्येक भक्त पर एक एक छप्पय कहे गए हैं और उनके कथन में किसी प्रकार का सामयिक क्रम नहीं है। इस ग्रंथ पर पहिली टीका श्री प्रियादासजी की भक्ति रसबोधिनी नाम की कवित्तों में हुई है जो सं० १७६९ वि० में समाप्त हुई थी। इसमें नाभादास के कथित भक्तों का विशेष वर्णन करते हुए अन्य भक्तों का भी वृत्त दिया गया है। उक्त दोनों मूल तथा टीका की प्रायः दो सौ वर्ष प्राचीन हस्तलिखित प्रति से मीराबाई के विषय में जो कुछ लिखा गया है, वह नीचे पूरा दे दिया जाता है। हिंदी साहित्य में यह भक्तमाल इस प्रकार के संग्रहों में अत्यंत प्राचीन है इसलिए इसका उद्धरण बहुधा दिया जाता है। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि नाभादासजी ने उक्त दो गोस्वामी महोदयों के समान मीराबाई के लिए, वर्तमान का प्रयोग न कर भूतकालिक क्रिया का प्रयोग किया है। अतः वह उनके काल के पूर्व हुई थीं, ऐसा निश्चय समझना चाहिए।

लोक-लाज कुल-शृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी ॥
सदृश गोपिका प्रेम प्रगटि कलिजुगहि दिखायो।
निर अंकुश अति निडर रसिक जस रसना गायो ॥
दुष्टनि दोष बिचारि मृत्यु को ऊधम[1] कीनौ।
बार न बाँको भयो गरल अमृत ज्यौं पीयौ ॥
भक्ति निसान बजाय कै काहू तैं नाहिन लजी।
लोक-लाज-कुल-शृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी ॥

टीका—मेरतो जनम भूमि झूमि हित नैन लगे
पगे गिरिधारी लाल पिता ही के धाम मैं।
राना कै सगाई भई करी ब्याह सामा नई
गई मति बूड़ि वा रँगीले घनस्याम मैं ॥
भाँवरे परत मन साँवरे सरूप माँहि
ताँवरे सी आवै चलिवें कौं पति ग्राम मैं।
पूछे पितु मातु पट आभरन लीजिये जू
लोचन भरत नीर कुहा काम दाम मैं ॥१॥
देवौ गिरिधारीलाल जो निहाल कीयौ
चाहौ और धन माल सब राखिये उठाय कै।
बेटी अति प्यारी प्रीति रंग चढ़यौ भारी
रोय मिली महतारी कही लीजिये लड़ाय कै ॥
डोला पधराय दृग दृग सौं लगाय चलीं
सुख न समाय चाय प्रानपति पाय कै।
पहुँची भवन सास देवी पै गवन कियौ
तिया और बर ग्रन्थि जौरौ कह्यौ भाय कै ॥२॥
देवी के पुजायवे कौं कियो लै उपाय
सासु बर पै पुजाय पुनि वधू प्रति भाषिये।
बोली जु विकायो माथ लाल गिरिधारी
हाथ और कौन नवै एक वाही अभिलाषिये ॥
घटत सुहाग याकैं पूजें तातैं पूजा करी
करौ जिन हठि सीस पायन पैं राषियै।

---

१. पाठा०—उद्यम।

हुआ, जिससे इन्हें बहुत कष्ट हुआ। विदा होते समय माता-पिता के पूछने पर कि वह क्या लेगी मीराबाई ने अपने ठाकुरजी को साथ ले जाने के लिए माँगा। आज्ञा मिलने पर वह उन्हें साथ ले गईं। ससुराल पहुँचने पर सास ने देवी-पूजन को कहा पर इन्होंने नहीं पूजा। सास रुष्ट हो गईं और राणाजी से कहा जिस पर वह भी कुपित हो गए। मीराबाई को अलग रहने के लिए स्थान दिया और मन में मारने का निश्चय किया। मीराबाई साधु-सत्संग करती थीं। ननद ने आकर समझाया पर इन्होंने नहीं माना तब विष भेजा गया, जिसे वह पान कर गईं। इसके बाद राणा ने चर लगाए और उसने इन्हें गिरिधारीलालजी से बातचीत करते सुनकर राणा को खबर की। वह मारने दौड़ा पर वहाँ किसी को न देखकर पूछने लगा कि वह आदमी कहाँ गया। मीराबाई ने मूर्ति को दिखला दिया कि इन्हीं से बातचीत कर रही थी। एक दुष्ट साधु-वेश में आकर मीराबाई से कहने लगा कि मुझे रति दान दीजिए। श्रीगिरिधारीजी ने प्रतिनिधि बनाकर भेजा है। मीरा ने साधु-समाज के बीच पलंग बिछवाकर उससे कहा कि आइए तब वह लज्जित हो पैरों पड़ा। मीराबाई के सौंदर्य का हाल सुनकर अकबर तानसेन के साथ इन्हें देखने आया था और देख कर प्रसन्न हुआ। इसके अनंतर वृंदावन आकर यह जीव गोस्वामी से मिलीं और स्त्री मुख न देखने का उनका प्रण छुड़ाया। यहाँ से द्वारिका जाकर वहीं रहने लगीं। राणा के बुलाने पर यह रणछोड़जी में लीन हो गईं।

ध्रुवदास

भक्त नामावली के रचयिता ध्रुवदासजी गोस्वामी हितहरिवंशजी की संप्रदाय के शिष्य थे, जिनका जन्म सं० १५५९ के वैशाख कृष्ण ११ को हुआ था। इन्होंने सं० १५८२ में कार्तिक सुदी १३ को राधारमणजी की मूर्ति स्थापित कर श्री राधा वल्लभीय संप्रदाय चलाया था। ध्रुवदासजी के चौआलीस छोटे छोटे ग्रंथों का एक हस्तलिखित संग्रह मेरे पास है, जिनमें तीन ग्रंथों का रचनाकाल दिया गया है। उनके नाम वृंदावनशत, सभा-शृंगार तथा रहस्यमंजरी हैं। इनका रचनाकाल क्रमशः नीचे दिया जाता है—

१—सोलहसौ ध्रुव छयासिया पून्यो अगहन मास।

२—मंडल सभा सिंगार सोलह सै इक्यासिया।
सकल रसनि को सार छवि ध्रुव वरनत जथामति॥

३—सत्र सै द्वै ऊन अरु अगहन पछ उँजियार।

ये तीनों ग्रंथ इस संग्रह में संख्या ४, १९, ३९ पर क्रमशः हैं। इससे ज्ञात होता है कि इनका रचनाकाल अनुमानतः सं० १६८० से १७०० तक रहा है। इन्होंने मीराबाई के विषय में निम्नलिखित चार दोहे लिखे हैं—

लाज छाँड़ि गिरिधर भजी करी न कछु कुल कानि।
सोई मीरा जग विदित प्रगट भक्ति की खानि॥
ललिता हू लइ बोलि कै तासों हो अति हेत।
आनँद सों निरखत फिरै वृंदावन रस खेत॥
नृत्यत नूपुर बाँधि कै नाचत लै करतार।
विमल हियौ भक्तनि मिली तृन सम गन्यो सँसार॥
बन्धुनि विष ताकों दियौ करि विचार चित आन।
सो विष फिरि अमृत भयौ तब लागे पछितान॥

नाभादासजी इनके प्रायः समकालीन कवि थे और उनके छप्पय की अंतिम पंक्ति 'लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी' ध्रुवदास के प्रथम दोहे की प्रथम पंक्ति का रूपांतर मात्र है। पूरा छप्पय इन दोहों के आधार पर लिखा गया ज्ञात होता है, पर इसमें किसने किससे सहायता ली है, यह ठीक नहीं कहा जा सकता।

इन दोहों से भी केवल इतना ही ज्ञात होता है कि मीराबाई संसार-विरक्त तथा गिरिधरजी की पूर्ण भक्त थीं। यह वृंदावन गई थीं। यह करतार लेकर तथा नूपुर बाँधकर भजन करती थीं। इनके बंधुवर्ग ने साधु-सत्संग के कारण कुछ और समझकर इन्हें मारने के लिए विष दिया पर वह इनके लिए अमृत हो गया। इस पर वे बहुत पछिताए।

मीराबाई के जीवन के विषय में इन दोहों से विशेष कुछ नहीं ज्ञात होता।

चौरासी तथा दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता

व्रजभाषा गद्य साहित्य में उक्त दोनों ग्रंथ अधिक प्रसिद्ध हैं और प्रचलित तो यही है कि ये दोनों ग्रंथ गोस्वामी गोकुलनाथ कृत हैं। गोकुलनाथजी का समय सं० १६०८ से सं० १६९० माना जाता है। इनमें प्रथम अवश्य ही प्राचीन तथा तत्कालीन है तथा दूसरी अनेक ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेख के कारण बाद की ज्ञात होती है। इन दोनों ग्रंथों में मीराबाई का पाँच बार उल्लेख है, प्रथम में तीन बार तथा दूसरे में दो बार। इन तीनों वार्ताओं का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

४०वें वार्ता में लिखा है कि गोविंद दूबे साचोरा ब्राह्मण मीराबाई के गृह आए और उनके सत्संग में वहीं कुछ दिन रह गए। गोस्वामीजी ने यह समाचार सुनकर उन्हें एक श्लोक लिख भेजा, जिसे बाँचते ही वह तुरंत चले आए। चौरासी वैष्णवों की वार्ता में ५४वें शीर्षक पर मीराबाई के पुरोहित रामदासजी का उल्लेख है कि उन्होंने एक दिन मीराबाई के श्रीठाकुरजी के आगे श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु-विषयक पद गाया तब मीराबाई ने कहा कि अब दूसरा पद श्रीठाकुरजी का गाइये। यह सुनते ही 'महाप्रभून' के भक्तजी बिगड़ खड़े हुए और बोले 'अरे दारी राँड़ यह कौन को पद है, यह कहा तेरे खसम को मूँड़ है, जा आज ते तेरो मुँहड़ो कबहूँ न देखूँगो।' इतनी शिष्टता दिखलाकर वह वहाँ से चले आए और मीराबाई ने इतने पर भी क्षमाशालीनता दिखलाते उन्हें बुलाया पर वे नहीं लौटे।[1]

९२वीं वार्ता में कृष्णदास अधिकारी के प्रसंग में लिखा है कि जब वह द्वारिका से रणछोड़जी का दर्शन कर लौटे तब मार्ग में मीराबाई के यहाँ गए, जहाँ हरिवंश, व्यास आदि कई वैष्णव उपस्थित थे। मीराबाई के महाप्रभु वल्लभाचार्य का शिष्य न होने के कारण यह वहाँ नहीं ठहरे और न उसकी भेंट स्वीकार किया। एक वैष्णव के पूछने पर कहा कि इतने वैष्णव एकत्र थे और भेंट स्वीकार न कर उन सबकी नाक नीची कर दी।

दो सौ बावन वैष्णवों की १५वीं वार्ता में मेड़ता निवासी हरिदास भक्त का विवरण है, जहाँ के राजा जयमल स्मार्त थे। जब श्रीगुसाईंजी मेड़ते पधारे तब जयमल की बहिन पत्र द्वारा सेवक हुई क्योंकि वह परदे में रहती थीं। इसके अनंतर जयमल सपरिवार वैष्णव हो गए। ४७वें वैष्णव की वार्ता में लिखा है कि अजब कुँअर बाई मेवाड़ की निवासिनी मीराबाई की देवरानी थीं, जो श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथजी की उस समय शिष्या हुईं, जब वे मेवाड़ में पधारे थे। यह पुष्टि मार्ग के सिद्धांतानुसार श्रीनाथजी की पूजा करती थीं और श्रीनाथजी स्वयं उनके साथ चौपड़ खेलते थे। इनकी बहुत इच्छा थी कि श्रीनाथजी उन्हीं के देश में विराजें, इस पर श्रीनाथजी ने कहा कि जब तक गोस्वामी विट्ठलनाथजी तथा उनके नाती पुत्र पृथ्वी पर हैं, तब तक श्रीगोवर्द्धन पर्वत पर रहेंगे और उसके बाद यहाँ आ विराजेंगे। इसी अनुसार सं० १७२८ में महाराणा राजसिंह के समय श्रीनाथजी मेवाड़ में पधारे थे।

---

[1] भारतेंदुजी कृत उत्तरार्द्ध भक्तमाल में १२३ संख्या पर गोविंद दूबे और १२६ पर रामदास का उल्लेख है।

प्रथम वार्ता को पूर्णतया समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि मीराबाई श्रीमध्वाचार्य के संप्रदाय के अंतर्गत श्रीचैतन्य संप्रदाय की थीं और केवल श्रीकृष्ण ही की अर्चना करती थीं। उनके पुरोहित श्रीवल्लभ संप्रदाय के थे जिसमें गुरुजी को गोविंद के बराबर ही नहीं बढ़कर मानते हैं। यही कारण है कि मीरा के स्वभावतः श्रीगोविंद के गुण गायन करने को कहते ही वह इतने अभद्र हो उठे थे क्योंकि उन्होंने मीरा के कथन में इस व्यंग्य का आभास पाया कि वल्लभ गुण-गायन ईश्वर-गुणानुवाद न होकर मनुष्य गुणकीर्तन मात्र है। स्त्रियों के प्रति इतनी अशिष्टता दिखलानेवाले को केवल इसीलिए उक्त वार्ता में स्थान मिला था कि उन्होंने गुरुजी के प्रति पक्की भक्ति दिखलाई। बहुत दिनों से यह प्रथा देखी जाती है कि ईश्वर के दरबार में भी पहुँचने के लिए एक दल्लाल या मध्यस्थ की आवश्यकता पड़ती है।

चौरासी वार्ता के उल्लेखों से यह स्पष्ट ही लक्षित होता है कि मीराबाई गोस्वामी विठ्ठलनाथजी के समय जीवित थीं तथा उन घटनाओं के समय अपने गृह ही पर थीं। इस ग्रंथ का रचनाकाल निश्चित नहीं है पर अनुमानतः यह सोलहवीं शताब्दि के अंत सं० १५९० के लगभग रचा ज्ञात होता है। अन्य उल्लेख दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता के हैं जिसका रचनाकाल अठारहवीं शताब्दि का मध्य ज्ञात होता है। इसमें मीराबाई की एक देवरानी अर्थात् भोजराज के अनुज की पत्नी मेवाड़-निवासिनी अजब कुँअर की भक्ति, उपासना तथा इनका विठ्ठलनाथजी के मेवाड़ आने पर शिष्य होने का उल्लेख है। हो सकता है कि मीराबाई के संसर्ग से इनमें भी भक्ति का प्रस्फुटन हुआ हो। इसमें अजब कुँअर के समय गो० विठ्ठलनाथजी तथा उनके सात पुत्रों का वर्तमान होना लिखा है पर श्री वल्लभाचार्यजी का वर्तमान होना नहीं लिखा है। वल्लभाचार्यजी सं० १५८७ में और विठ्ठलनाथजी सं० १६४२ में गोलोक सिधारे थे अतः सं० १५८७ और सं० १६४४ के बीच उन्हें यह वरदान मिला होगा। इससे भी मीराबाई का समय निश्चित करने में कुछ सहायता मिलती है क्योंकि राणा कुँभा (सं० १४७५-१५२५) की स्त्री मीराबाई की देवरानी का सं० १५८७ के बाद तक जीवित रहना असंभव है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' की १५वीं वार्ता का उल्लेख 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के उल्लेखों का विरोधी है। यह मीरा के पर्दा करने तथा पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने का वर्णन करता है, जो ठीक नहीं है। हो सकता है कि मीरा से भिन्न जयमल की कोई सगी बहिन रही हो।

दो सौ चौरासी वैष्णवों की वार्ता में आमेर-नरेश महाराज मानसिंह के भाई माधोसिंह की स्त्री रत्नावतीबाई की भक्ति तथा उसी कारण पद पाने का वृत्त लिखा है। वह समय कुछ ऐसा ही था।

उक्त वार्ताओं के उद्धरणों के आधार पर पं० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने एक लेख में कुछ विचित्र निष्कर्ष निकाला है। वल्लभसंप्रदाय के भक्तों ने मीरा की जो उपेक्षा की, दुर्वचन कहे तथा निरादर किया उसके मूल में आपने 'गहरा तात्विक भेद' ढूँढ़ निकाला है और उस भेद के आधार पर आपने निराकार-वादी संत-शृंखला में एक कवियित्री को बढ़ाने का अत्यंत शिथिल प्रयास किया है। लिखते हैं कि मीराबाई की ओर से 'हमारे सामने दो अर्थ-गर्भित तथ्य हैं।' पहिला यह कि सूरदासजी वल्लभाचार्य के शिष्य हो गए 'तब भी मीरा ने उनसे दीक्षा नहीं ली।' यह व्यर्थ की बात है। सूरदास यदि शिष्य हो गए तो किसी का बना बिगड़ा क्या? उनके शिष्य होने से सभी का उनका शिष्य हो जाना क्या कोई धर्म हो गया या जो नहीं हुए वे सभी 'निर्गुनिए' संत मान लिए जायँ। सूरदास शिष्य करते फिरते थे या उनकी कोई शिष्य परंपरा चली, यह भी आपने नहीं बतलाया। दूसरा तथ्य तथ्य है और वह यही है कि वह वल्लभाचार्यजी की स्तुति में कहे गए पदों को गोविंद-गुण-गायन नहीं समझती थीं। वल्लभ-संप्रदाय में पहिले गुरु तब गोविंद आते हैं। सूरदास ही ने कहा है कि 'गुरु-गोविंद दोनों खड़े काके लागौं पाउँ।' पर मीरा की अनन्य भक्ति उसके तथा गिरिधर के बीच में किसी को आने नहीं देना चाहती थी। वह गिरिधर के प्रेम में बाल्यकाल ही से इतना तन्मय थी कि उसे किसी गुरु या मध्यस्थ की आवश्यकता ही नहीं थी। मीरा ने गिरिधर नागर ही का अपनी समग्र रचना में गुण-गायन किया और उन्हीं को पति-रूप में 'वरण' ही नहीं किया है पर 'सपने में परण गया' है। ऐसी अवस्था में दूत या दूती की अपेक्षा ही कहाँ है। दो चार पदों का उद्धरण देकर, जो निश्चित रूप से मीरा कृत कहे भी नहीं जा सकते, उसे रैदासी संत संप्रदाय में लाना, जहाँ निराकार ही का बोलबाला है, अनर्गल कथन मात्र है। मीरा ने अपने समय के निराकारवादी संत-संप्रदाय के कथनों का उल्लेख कर अंत में यही कहा है कि 'मीरा के प्रभु गिरिधर नागर बार बार बलि जाऊँ।' मीरा ने संत-संप्रदायवालों की सुरत, निरत, अनाहत आदि सभी का जहाँ कहीं उल्लेख किया है, पर सबको अपने भक्ति रंग ही में रंग कर। मीरा ने मूर्ति पूजन से आरंभ किया और उसी में अपना लय भी कर दिया। वह केवल प्रत्यक्षतः कृष्ण भक्त

न थीं, उनकी अंतरात्मा भी कृष्णमय थी। उन पर एक मात्र श्रीकृष्ण का रंग चढ़ा हुआ था। ध्यान रखना चाहिए कि मीरा बचपन ही से 'पूरब जन्म को कौल' मानकर श्रीकृष्ण की भक्ति कर रही थीं, किसी गुरु से दीक्षा लेने या किसी गुरु की चलाई हुई भावना के रंग चढ़ने की उन्होंने प्रतीक्षा नहीं की थीं। मीरा आप ही पदों की रचना कर अपने इष्ट का भजन-कीर्तन किया करती थीं, दूसरों के पद गाकर उससे प्रेरणा प्राप्त करने की भी उन्हें कभी आवश्यकता न पड़ी।

बड़थ्वालजी ने एक बात और भी बड़े मजे की कही है। आपने संत-संप्रदाय के कृष्ण या राम को पूर्ण ब्रह्म कहा है और तब उनका तात्पर्य हुआ कि भक्ति-संप्रदाय के कृष्ण गाय बैल के पीछे लठिया लेकर दौड़ने-वाले रह गए और राम 'मारेहु मोहि व्याधा की नाईं' या सीता की खोज में रोने कलपने वाले रह गए। धन्य हैं आपके विचार। पूर्ण ब्रह्म ही के साकार रूप की कृष्ण या राम में भावना कर भक्ति संप्रदाय इतना प्रचलित हुआ है और निराकारवादी निर्गुनिए ही मात्र रह गए हैं।

तुकारामजी

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध महात्मा तुकारामजी का जन्म सं० १६६५ वि० में पूना से आठ कोस वायव्य की ओर हटकर स्थित देहू नामक ग्राम में हुआ था। इनके विषय में कहा जाता है कि यह नामदेवजी के अवतार थे। सत्रह वर्ष की अवस्था में यह माता-पिता हीन हो गए और इसके अनंतर इन पर बराबर विपत्ति पड़ती गई, जिससे इनका वैराग्य-भाव दृढ़तर होता गया। फलतः इक्कीस वर्ष की अवस्था में यह एकदम विरक्त हो गए और भगवद्भजन में समय व्यतीत करने लगे। इसी समय भक्तों के भजन तथा अनेक धर्म ग्रंथों का मनन किया। इन्हें स्वप्न में महाप्रभु कृष्ण चैतन्य ने 'रामकृष्ण हरि' मंत्र की दीक्षा दी और इसीके अनंतर कविता का अजस्र स्रोत इनसे फूट निकला। तुकारामजी के चमत्कारों के विवरण में एक पुस्तक लिखी जा सकती है। यह शिवाजी के समकालीन थे और वह इनका कीर्तन सुनने के लिए प्रायः आया करते थे। इनका देहावसान सं० १७०६ में हुआ था। इन्होंने एक अभंग में रैदास और कबीर तथा सूरदास और मीराबाई का बड़े सम्मान के साथ उल्लेख किया है उस अभंग का अनुवाद इस प्रकार है—

नैहर है मेरा, पंढरी-पत्तन, कूटत धान, गाऊँ गीत।
राई रखमाई, सत्यभामा माता, पांडुरंग पिता करें वास ॥टेक॥
उद्धव अक्रूर, व्यास अंबरीष, नारद मुनीश, भाई मेरे ॥ २ ॥

गरुड़जी वन्धु, लाढ़िले पुंडलीक, तिनके कौतुक, गेय मेरे ॥ ३ ॥
मेरे वहु गोती, संत ओ महंत, नित्य सुमिरत, सर्वनाम ॥ ४ ॥
निवृत्ति ज्ञानदेव, सोपान चाँगाजी, मेरे जी के हैं जी, नामदेव ॥५॥
नागा जनमित्र, नरहरि सुनार, रैदास, कवीर, सगे मेरे ॥ ६ ॥
सुनो सूरदास, माली साँवताजी, गीत गुण के जी गावो गावो ॥७॥
चोखा मेला संत, हृदय के हार, कभी ना विसार हरि-दास ॥८॥
जीव के जीवन, एका-जनार्दन, पाठक श्रीकान्ह, मीरावाई ॥९॥
अन्य मुनि संत, महंत सज्जन, सवके चरण, माथे धरूँ ॥१०॥
सुख संग जाते, पंढरी दर्शन, तदीय कीर्तन, करूँ सदा ॥११॥
'तुका' कहे माता, पिता मेरे ये ही, सुखरूप गृही, गृहाश्रमी ॥१२॥

राघवदासजी दादूपंथी

राघवदासजी सुंदरदासजी के वहुत समय तक समकालीन थे, जिनका जन्म सं० १६५२ में और निधन सं० १७४६ में हुआ था। यह प्रह्लाद-दासजी के शिष्य और बड़े सुंदरदासजी के प्रशिष्य थे। इन्होंने अपने गुरु के आदेश से भक्तमाल की रचना की थी। यह क्षत्रिय थे और पहिले पीपावंशी चागलगोत्र के वैष्णव थे। वाद को यह दादू संप्रदाय में चले आए। यह दीर्घायु होकर मरे। इनके जन्म-मृत्यु का ठीक समय ज्ञात नहीं हुआ पर यह सुंदरदासजी के वहुत दिनों वाद मरे थे। इन्होंने सुंदरदासजी के बहुत से शिष्यों का भक्तमाल में विवरण दिया है। निज भक्तमाल की समाप्ति के विषय में लिखते हैं—

संवत सत्रह सौ सत्रहोतरा सुकल पक्ष सनिवार।
तिथि तृतीया आषाढ़ की राघौ कियो विचार॥

अर्थात् सं० १७१७ वि० आषाढ़ शुक्ल ३ शनिवार को यह भक्तमाल समाप्त हुआ। इस भक्तमाल पर चत्रदास ने टीका लिखी है, जो सं० १८५७ में समाप्त हुई थी। सुंदरदासजी के प्रशिष्य रामदासजी के शिष्य दयाराम हुए, जिनके प्रशिष्य यह चत्रदास विद्वान सुकवि हो गए हैं। यह एक छंद में लिखते हैं कि जिस प्रकार नारायनदास (नाभाजी) के भक्त-माल पर प्रियादास ने टीका लिखी, उसी प्रकार राघोदास की कृति पर मैंने लिखी।

यद्यपि मीरावाई का जो विवरण इस भक्तमाल तथा टीका में दिया गया है, वह पूर्व के भक्तमाल तथा दंतकथा के आधार पर ही है पर दो शताब्दि से अधिक प्राचीन होने से यहाँ टीका सहित उद्धृत कर दिया जाता है, जो स्व० पुरोहित हरिनारायणजी की हस्तलिखित प्रति से ली गई है।

मीरांबाई को वरनन

मूल छपै

लोक वेद कुल जगत सुष मुचि मीरां श्रीहरि भजे।
गोपिन की सी प्रीति रीति कलिकालि दिषाई।
रसिकराइ जस गाई निडर रही संत सभाई॥
रांनैं रोस उपाइ जहर कौ प्यालौ दीन्हौं।
रोम पुस्यौ नहीं येक मांनि चरनांमृत लीन्हौं॥
नौवति भक्ति धुराई कैं पति सो गिरिधर ही सजे।
लोकवेद कुल जगत सुष मुचि मीरां श्रीहरि भजे॥२१४॥

मनहर

रांमजी की भक्ति न भावै काहू दुष्टन कौं
मीरां भई वैष्णुं जहर दीन्हौं जांनिकैं।
रांनौं कहै मारै लाज मारि डारौ याहि आज
आप करै कीरतन संत बैठे आंनिकैं॥
प्रेम मधि पीयो बिस पद गाये अहनिस भैन
व्याप्यौ नैंकहू न लीन्हौं दुष मांनिकैं।
राघो कहै रांनौं मुषि बैरी अब राजलोक
मीरांबाई गगन भरोसौ चक्रपांनिकैं॥२१५॥

टीका, इंदव छंद

मातपिता जनमीं पुर मेड़त प्रीति लगी हरि पोहर मांहीं।
रांनहि जाइ सगाइ करावत व्याहन आवत भावत नांहीं॥
फेर फिरावत वान सुहावत यौं मनमैं पति साथि न जांहीं।
देन लगे पितमात आभूषन नैंन भरे जल मोहि न चांहीं॥२७०॥
द्यौ गिरिधारिहि लाल निहारन वेस अभूषन वेग उठावौ।
मातपितास सुता अतिहै प्रिय रोय दये प्रभु लेहु लडावौ॥
पाइ महासुष देषत है मुख डोलहि मै बयठाइ चलावौ।
धांमहि पौंचत मात पुजावत सास करावत गांठि जुरावौ॥२७१॥
मात पुजाइ लई सुत पैं पुनि पूजि बहू अब सास कही है।
सीस नवै मम श्रीगिरिधारिहि आंन न मानत नाथ वही है॥
होत सुहागणि याहिक पूजत टेक तजौ सिरनाइ मही है।
येक नवै हरि और न नावत मांनत क्यूँ नहि वुद्धि वही है॥२७२॥

गरुड़जी बन्धु, लाड़िले पुंडलीक, तिनके कौतुक, गेय मेरे ॥ ३ ॥
मेरे बहु गोती, संत ओ महंत, नित्य सुमिरत, सर्वनाम ॥ ४ ॥
निवृत्ति ज्ञानदेव, सोपान चाँगाजी, मेरे जी के हैं जी, नामदेव ॥५॥
नागा जनमित्र, नरहरि सुनार, रैदास, कबीर, सगे मेरे ॥ ६ ॥
सुनो सूरदास, माली साँवताजी, गीत गुण के जी गावो गावो ॥७॥
चोखा मेला संत, हृदय के हार, कभी ना विसार हरि-दास ॥८॥
जीव के जीवन, एका-जनार्दन, पाठक श्रीकान्ह, मीराबाई ॥९॥
अन्य मुनि संत, महंत सज्जन, सबके चरण, माथे धरूँ ॥१०॥
सुख संग जाते, पंढरी दर्शन, तदीय कीर्तन, करूँ सदा ॥११॥
'तुका' कहे माता, पिता मेरे ये ही, सुखरूप गृही, गृहाश्रमी ॥१२॥

राघवदासजी दादूपंथी

राघवदासजी सुंदरदासजी के बहुत समय तक समकालीन थे, जिनका जन्म सं० १६५३ में और निधन सं० १७४६ में हुआ था। यह प्रह्लाद-दासजी के शिष्य और बड़े सुंदरदासजी के प्रशिष्य थे। इन्होंने अपने गुरु के आदेश से भक्तमाल की रचना की थी। यह क्षत्रिय थे और पहिले पीपावंशी चागलगोत्र के वैष्णव थे। बाद को यह दादू संप्रदाय में चले आए। यह दीर्घायु होकर मरे। इनके जन्म-मृत्यु का ठीक समय ज्ञात नहीं हुआ पर यह सुंदरदासजी के बहुत दिनों बाद मरे थे। इन्होंने सुंदरदासजी के बहुत से शिष्यों का भक्तमाल में विवरण दिया है। निज भक्तमाल की समाप्ति के विषय में लिखते हैं—

संवत सत्रह सौ सत्रहोतरा सुकल पक्ष सनिवार।
तिथि तृतीया आषाढ़ की राघौ कियो विचार॥

अर्थात् सं० १७१७ वि० आषाढ़ शुक्ल ३ शनिवार को यह भक्तमाल समाप्त हुआ। इस भक्तमाल पर चत्रदास ने टीका लिखी है, जो सं० १८५७ में समाप्त हुई थी। सुंदरदासजी के प्रशिष्य रामदासजी के शिष्य दयाराम हुए, जिनके प्रशिष्य यह चत्रदास विद्वान सुकवि हो गए हैं। यह एक छंद में लिखते हैं कि जिस प्रकार नारायनदास (नाभाजी) के भक्त-माल पर प्रियादास ने टीका लिखी, उसी प्रकार राघोदास की कृति पर मैंने लिखी।

यद्यपि मीराबाई का जो विवरण इस भक्तमाल तथा टीका में दिया गया है, वह पूर्व के भक्तमाल तथा दंतकथा के आधार पर ही है पर दो शताब्दि से अधिक प्राचीन होने से यहाँ टीका सहित उद्धृत कर दिया जाता है, जो स्व० पुरोहित हरिनारायणजी की हस्तलिखित प्रति से ली गई है।

मीरांबाई को बरनन

मूल छपै

लोक वेद कुल जगत सुष मुचि मीरां श्रीहरि भजे।
गोपिन की सी प्रीति रीति कलिकालि दिषाई।
रसिकराइ जस गाई निडर रही संत सभाई॥
रांनैं रोस उपाइ जहर कौ प्यालौ दीन्हौं।
रोम पुस्यौ नहीं येक मांनि चरनांमृत लीन्हौं॥
नौवति भक्ति घुराई कैं पति सो गिरिधर ही सजे।
लोकवेद कुल जगत सुष मुचि मीरां श्रीहरि भजे॥२१४॥

मनहर

रांमजी की भक्ति न भावै काहू दुष्टन कौं
मीरां भई वैष्णुं जहर दीन्हौं जांनिकैं।
रांनौं कहै मारै लाज मारि डारौ याहि आज
आप करै कीरतन संत बैठे आंनिकैं॥
प्रेम मधि पीयो बिस पद गाये अहनिस भैन
ब्याप्यौ नैंकहू न लीन्हौं दुष मांनिकैं।
राघो कहै रांनौं मुषि बैरी अब राजलोक
मीरांबाई गगन भरोसौ चक्रपांनिकैं॥२१५॥

टीका, इंदव छंद

मातपिता जनमीं पुर मेड़त प्रीति लगी हरि पोहर मांहीं।
रांनहि जाइ सगाइ करावत व्याहन आवत भावत नांहीं॥
फेर फिरावत बान सुहावत यौं मनमैं पति साथि न जांहीं।
देन लगे पितमात आभूषन नैंन भरे जल मोहि न चांहीं॥२७०॥
धौ गिरिधारिहि लाल निहारन वेस अभूषन वेग उठावौ।
मातपितास सुता अतिहै प्रिय रोय दये प्रभु लेहु लडावौ॥
पाइ महासुष देषत है मुख डोलहि मै बयठाइ चलावौ।
धांमहि पौंचत मात पुजावत सास करावत गांठि जुरावौ॥२७१॥
मात पुजाइ लई सुत पैं पुनि पूजि वहू अब सास कही है।
सीस नवै मम श्रीगिरिधारिहि आंन न मानत नाथ वही है॥
होत सुहागणि याहिक पूजत टेक तजौ सिरनाइ मही है।
येक नवै हरि और न नावत मांनत क्यूँ नहि बुद्धि वही है॥२७२॥

होइ उदास भरै उर सास गई पति पास बहू नहिं आछी।
मानत नैं अब फेरि गिनै कब केति कहौ फिरि आतन पाछी॥
रोस कह्यौ नृप ठौर जुदी दइ रीझि लई वह नांचन काछी।
नृत्य करै उर लाल धरै सतसंग बरै सबहै जन साछी॥२७३॥
आइ नणंद कहै सुनि भाभिहि साधन संग निवारि भजीजे।
लाजत है नृप तास बड़ौ कुल लाजत द्वैयप वेगि तजीजे॥
संत हमारहि जीवनमांनस तारत द्वै कुल सत्य मनीजे।
जाइ कही तब भैर पठावत लै चरनांमृत पांन करीजे॥२७४॥
सीस नवाइर पीत भई विप संतन छोड़न है दुप भारी।
भूप कहै भृति चौकस रापहु आइ कनै जन बोलत मारी॥
स्यांमहि सौं बतलात सुनी तब जाइ कही अबहै सत यारी।
सो सुनिकैं तरवारि लई कर दौरि गयो पट पोलि निहारी॥२७५॥
बोलत हौस गयो कत मांनस देहु लपाइ न मारत तोही।
येह परे कछु नांहि डरे चित लेत हरे किन वाहत मोही॥
भूप लजाइ रह्यौ जड होइर ऊठि गयो तजिकैं उर छोही।
देपि प्रताप न मानत आप रहै उर ताप करै हरि वोही॥२७६॥
संतन भेष कह्यौ विषई नर आइ कही मम संग करीजे।
लाल दीई यह आइस जावहु मांनि लई अब भोजन लीजे॥
सेज बिछावत साध सभा बिचि टेरि लियौ तब कारिज कीजे।
देषितही मुष सेत भयो पगि जाइ नयौ अब सिष्य मनीजे॥२७७॥
भूप अकब्बर रूप सुन्यौ अति तांनहिसेन लिये चलि आयौ।
देषि कुस्याल भयो छबि लालहि ऐक सबद बनाइ सुनायौ॥
जा बृज जीउ मिली पन हौ तिय देषतनैं सुष ताहि छुड़ायौ।
कुंजन कुंज निहारि बिहारिहि आइरुदेस बनैं बनगायौ॥२७८॥
भूपति वुद्धि असुद्ध लषी अति द्वारवती वसि लाल लड़ाये।
पेटि जलंध्र होत भयौ नृप जानि महादुष बिप्र षिनाये॥
लैकरि आवहु मोहि जिवावहु वेगि गये समचार सुनाये।
होन बिदा चलि ठाकुर पैं मुष मांहि लई तुछ चीर रहाये॥२७९॥

(राघवदासकृत भक्तमाल हस्तलिखित-पत्र ६३—६५ तक)

(टीका—चतुरदास कृत)

नागरीदास

जोधपुर-नरेश महाराज उदयसिंह के छोटे पुत्र कृष्णसिंह को अकबर ने पहिले हिंडोन का परगना जागीर में दिया था और बाद को सेठोलाव

आदि अन्य कई परगने भी दिए। सं० १६६६ में इन्होंने कृष्णगढ़ नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। इनके सं० १६७२ में वीरगति प्राप्त करने पर इनके तीन पुत्र सहसमल्लजी, जगमलजी तथा हरीसिंहजी क्रमशः गद्दी पर बैठे। सं० १७०० में चौथे पुत्र भारमल्ल के पुत्र रूपसिंहजी गद्दी पर बैठे। इन्हींने रूपनगर बसाया था। यह परम कृष्णभक्त थे और रूपनगर में श्रीकल्याणजी की मूर्ति स्थापित की थी। सं० १७१५ में यह युद्ध में मारे गए और इनके पुत्र मानसिंहजी गद्दी पर बैठे। यह अड़तीस वर्ष राज्य कर स्वर्गवासी हुए और इनके पुत्र राजसिंहजी गद्दी पर बैठे। इन्हींके पुत्र महाराज सामंतसिंह हुए, जिनका उपनाम नागरीदासजी हुआ।

नागरीदासजी का जन्म पौष कृष्ण १२ सं० १७५६ में हुआ था। इनके दो बड़े भाई अपने पिता के सामने ही मर चुके थे, अतः यही राज्याधिकारी थे। सं० १८०५ के वैशाख कृष्ण ७ को जब राजसिंह की मृत्यु हुई, उस समय यह अपने पुत्र सरदारसिंह के साथ दिल्ली में बादशाह के पास थे। यह अवसर पाकर इनके छोटे भाई बहादुरसिंह ने राज्य पर अधिकार कर लिया। बादशाह ने इनकी सहायता की पर यह सफल न हो सके और अंत में ये दोनों मथुरा चले आए। यहीं सामंतसिंहजी ने विरक्ति के कारण ब्रह्म-संबंध कर लिया और नागरीदास होकर यहीं रहने लगे पर सरदारसिंह मराठों की सहायता प्राप्त करने मल्हारराव होलकर के पास गए। कई वर्ष के अनंतर सं० १८१२ में लाचार होकर बहादुरसिंह ने संधि कर इन्हें रूपनगर का राज्य दे दिया पर यह निस्संतान थे, इसलिए सं० १८२३ में इनकी मृत्यु पर यह राज्य कृष्णगढ़ में पुनः मिल गया।

नागरीदासजी का विवाह राजावत कछवाहा भानगढ़ के अधिपति जसवंतसिंह की पुत्री से हुआ था। प्रथम पुत्र का जन्म सं० १७७७ में हुआ था, जो छ वर्ष के होकर जाते रहे। दूसरे पुत्र सरदारसिंह का जन्म सं० १७८७ में हुआ था। इनके सिवा इन्हें दो पुत्री किशोर कुँवरि तथा गोपाल कुँवरि थीं। द्वितीय का संबंध जयपुर-नरेश माधोसिंह के साथ निश्चित हो चुका था पर विवाह होने के पहिले उनका निधन हो गया। सरदारसिंहजी ने अन्यत्र विवाह करने के लिए बहुत जोर दिया पर गोपालकुँवरि ने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि एक शरीर दो को अर्पण नहीं हो सकता और श्रीरामललाजी का मंदिर स्थापित कर उन्हीं की भक्ति में मग्न रह कर यह जीवन व्यतीत कर दिया।

नागरीदासजी बड़े वीर तथा साहसी थे। यह संस्कृत, फारसी तथा भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। यद्यपि इनके कुछ पद इनके मथुरा आने के पहिले ही बन चुके थे पर विशेषतः इनकी अधिक रचना यहीं बनी है। जिन ग्रंथों में रचनाकाल दिया है, उनमें एक का सं० १७५९ है पर अन्य सभी सं० १७८० के बाद के हैं।

पद प्रसंग माला में ३६ भक्तों का उल्लेख हुआ है, जिनमें सातवीं संख्या पर मीराबाई का वर्णन दिया गया है। वह यथावत् नीचे दे दिया जाता है। यह अंश नाभाजी, ध्रुवदासजी आदि के समान प्राचीन न होते भी विशेष महत्व का है क्योंकि नागरीदासजी राजस्थान के उसी राठौड़ वंश के थे, जिस वंश में मीराबाई का जन्म हुआ था।

'मेडतैं मीराबाई तिनकौं राना के छोटे भाई सौं व्याही, यह जग प्रसिद्ध हैं ही सो कितनेक दिन उपरांत काहू समैं राना के वा भाई को देहांत भयो, अरु रानाहुते सो मीरांबाई सौं दुष पाय रहेहीहे, ये वैष्णवनिको सतसंग करिते यातैं, वा समैं राना नैं कहाई, जो यह औसर हैं तुम भरता के संग सती होहु, तब मीरांबाई भगवत रंग आगैं लगेहे, त्यौंही लगे रहे या समैं कछू षेदमानी नाहीं, अरु या बात के उत्तर कौं एक विष्णु पद नयो बनाय राना कौं लिषि पठयो, पद बहुत प्रसिद्ध भयो॥ सो वह यह पद।

मीरा के रंग लग्यो हरी को और रंग सब अटक परी।
गिरधर गास्यां सती न होस्यां मन मोह्यो घन नामी।
जेठ बहू को नातो नहीं राणा जी थे सेवगम्हे स्वामी॥
चूडो दो बगे तिलक जुमाला सील वर्त सिंगार।
और सिंगार भावै नहीं राणाजी यौं गुर ग्यान हमार॥
कोई निंदो कोई विंदो गुण गोविंद रा गास्यां।
जिण मारग वै संत पहूंता तिण मारग म्हे जास्यां॥
चोरी करां न जीव संतावां कांई कर सी म्हांरो कोई।
हसती चढि गधैं नहीं चडां यातो बात न होई॥
राज करंता नरक पडेसी भोगीडा जम कै लीया।
भगत करंता मुक्त पहूंता जोग करंता जीया॥
गिरधर धणी कटूंबो गिरधर मात पिता सुत भाई।
थे थां हरैं म्हे ह्यां हां रैंहो राणा जी यौं कहैं मीरांबाई॥

पुनः अन्य पद प्रसंग—

मीरांबाई सौं राना वहौत दुष पायैं रहैं, राना के घर की रीततैं इनकें

इनके भिन्यरीत, यह भगवत संबंध सत्यसंग विसेस करैं, देह संबंध को नातो व्यौहार कछु न मानैं, राना बहुत समुझाय रह्यो, निदान एक बिष को प्यालो उनकौं पठियो, कह्यो चरनामृत को नाम लेकैं दीजियो, उनको प्रण हैं, चरणामृत के नाम तैं पीही जांयगे, सो ऐसैं हीं भयो, जानि बूझ पीयो, राना तो इनके मरिबे की राह देखत रह्यो, अरु यह झांझ मृदंग संग लेकैं परम रंग सौं एक नयो पद बनाय ठाकुर आगैं गावत भये, पद बहुत प्रसिद्ध भयो, सो वह यह पद—

राने जू बिष दीनौं हम जानी ।
जान बूझि चरनामृत सुनि पियो नहीं बौरी भौरानी ॥
कंचन कसत कसौटी जैसैं तन रह्यो बारह बानी ।
आपुन गिरधर न्याय कियो यह छांन्यौ दूधरु पानी ॥
राना कोटक बारौं जिहिं पर हौं तिहिं हाथ बिकानी ।
मीरां प्रभु गिरधर नागर कैं चरन कमल लपटानी ॥

पुनः अन्य पद प्रसंग—

राना को छोटो भाई मीरां को देह संबंध को भर्ता हो, सो ताको परलोक भयो, ता पीछैं मीरांबाई गंगादिक तीरथ करिकैं अरु श्रीवृंदावनहू आये, तहाँ जीऊ गुसांई जू को प्रण स्त्री के न देखिबे को छुटाय सब सौं गुरु गोविंदवत सनमान सत्यसंग करि द्वारिका कौं चले, जहां बास करिबे कैं लियैं तहां एक मारग मैं नयो पद बनायो, बहुत प्रसिद्ध भयो, सो वह यह पद—

राय श्री रनछोड़ दीज्यो द्वारिका को बास ।
संख चक्र गदा पद्म दरसैं मिटै जम की त्रास ॥
सकल तीरथ गोमती के रहत नित्त निवास ।
संख झालर झांझ बाजैं सदा सुख की रास ॥
तज्यो देसरुवेस हू तजि तज्यो राना राज ।
दास मीरां सरन आवत तुम्हैं अब सब लाज ॥३॥

पुनः प्रसंग—

सो या भाँति मनोरथ करत यह पद गावत द्वारिका पहुँचे, तहाँ कोई दिन रहे ता पीछैं मीरांबाई के संग प्रोहितादिक जे राना के लोक हे, तिन कह्यो अब बहुत दिन भये हैं अब देस कौं चलो, राना की आज्ञा हैं। ऐसैं ही तीन दिन तो कह्यो, फिरि मीरांबाई परि धरनां कियो, तब मीरांबाई ठाकुर श्रीरनछोड़ जू सौं बिदा ह्वैबे को नांवलैं मंदिर मैं अकेले ही जाय महाआरती सहित एक नयो पद बनाय गायो, सो वह यह पद—

हरि करिहो जन की भीर।
द्रोपदी की लाज राखी तुम बढ़ायो चीर॥
भक्ति कारन रूप नरसिंघ धर्‌यो आप सरीर।
हरिन कस्यप मारि लीनौं धर्‌यौ नाहिंन धीर॥
बूड़तैं गज ग्राह तार्‌यो कियो बाहिर नीर।
दास मीरा लाल गिरिधर दुख जहाँ तहाँ पीर॥४॥

सो यह पद गायें हूं उततैं न ढरे, तब महाआरति प्रेमावेस सहित एक और पद बनाय गायो, तब ही ठाकुर आप मैं उनकौं याही शरीर तैं लीन करि लीनें, देहहू न रही, सो जा पद के गायें लीन भये, सो वह यह पद—

सजन सुधि ज्यौं जानें त्यौं लीजें।
तुम बिन मेरें और न कोई कृपा रावरी कीजें॥
द्यौस न भूख रैन नहिं निद्रा यह तन पल पल छीजें।
मीरां प्रभु गिरिधर नागर अब मिलि बिछुरनि नहीं कीजें॥५॥

सो ये दोऊ पद निकट द्वार कैं इनकी परम चतुर वैष्णव सखीन कंठ करि लीनैं, तथा लिखि लीने ते प्रसिद्ध भये।

पुनः अन्य पद प्रसंग—

मीरांबाई की कई भाँति की चरचा निंदक जन राना आगैं बहुत करन लागे, तब एक समैं राना नैं अपनैं अंतःपुर की एक स्त्री कौं पठाई कह्यो कि आधी राति उपरांत जहाँ वे होय तहाँ चली जाई जाइये काहू की हटकी मत रहिये सो वानैं ऐसे ही कियो, मीरांबाई अटारी पर सोई सोई जागत ही सौंहैं चंद्रमा कौं देखि हरि प्रीतम के अंतराय को विरह सह सहतहीं उनकी भावना करि करि परी उसास लेतही, इतने हीं ये जाय ठाढ़ी भई, ताकूं मीरांबाई कह्यो, तनकेक बैठि कैं हमारो दुख सुनौ, या समैं हमकूं तुम बड़े श्रोता मिले, सो जद्यपि वह बिजाती ही, परंतु ज्यो कोऊ अति अधीर अनुरागी होय, ताकूं बिजाती सजाती को ज्ञान नाहीं रहैं, वहि अपने चित्त की कहैं सो कहैं ही कहैं, यातैं वाके आगैं वाही वेर एक पद बनाय बनाय कैं गावन लगी, सो पद सुनि इनकी अवस्था देखि वह आई हुती सो परम अनुराग मैं मूरछित ह्वै गई, इनकी ही निकटवर्ती परम वैष्णव भई, फिरि राना के अंतःपुर मैं न गई, फिरि राना और काहू स्त्रीनिकौं हुती सो परम अनुराग मैं मूरछित ह्वै गई, इनकी ही निकटवर्ती परम वैष्णव भई, फिरि राना के अंतःपुर मैं न गई, फिरि राना और काहू स्त्रीनिकौं इनपै पठावैं सोई नट जाइ, अरु कहैं ज्यो उनपैं ज्यो जायहैं, सो बावरी ह्वै जात हैं; तातैं हम न जाहिगी, यह बात इनकै बहुत प्रसिद्ध भई, सो

पिछली रात के समै जा पद के सुनै तैं राना की सहचरी की उनमत्त दशा ह्वै गई, सो वह यह पद—

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारतां सब रैन बिहानी।
सखियनि मिलि सीख दई मन एक न मानी।
बिन देखें कळ ना परै जिय ऐसी ठानी।
अंग छीन व्याकुल भई मुख पिय पिय बानी।
अंतर वेदन विरह की वहि पीर न जानी।
ज्यौं चातक घन कौं रटै मछरी बिन पानी।
मीराँ व्याकुल विरहिनी सुधि बुधि बिसरानी ॥६॥'

उक्त उद्धरणों से इतना ज्ञात होता है कि मेड़ते की मीराबाई का राणा के छोटे भाई से व्याह हुआ था। कितने दिन बाद किसी समय इनके पति मरे तो राणा ने इनसे सती होने को कहलाया पर यह श्रीकृष्ण की भक्ति में तन्मय हो रही थीं इसलिए स्वीकार नहीं किया। इसके समर्थन में जो पद दिया है उसकी एक पंक्ति यों है—जेठ वहू को नातो नहीं राणा जी थे सेवगहि स्वामी। पर यह पाठ ठीक नहीं है, होना चाहिए—जेठ वहू को नातो न राणाजी हूँ सेवक थे स्वामी। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि मीराबाई अपने देवर राणा जी से कहती हैं कि अब हमारा जेठ बहू का नाता नहीं रह गया, हम सेवक हो गए और आप मालिक बन बैठे। तात्पर्य यह कि भूल से राणा के बड़े भाई के स्थान पर छोटा भाई लिखा गया है। हो सकता है कि पिता के सामने ही बड़े भाई की मृत्यु हो जाने का वृत्त न ज्ञात होने से और यह समझकर कि बड़ा भाई ही राणा हो सकता है, यह भूल हो गई हो। इसके अनंतर इन्हें विष दिया गया तथा स्त्री चर नियत किया गया जिस पर यह गंगादि तीर्थ करती वृंदावन आकर जीव स्वामी से मिलीं और यहाँ से द्वारिका जी गईं। यहीं राणा के आदमी इन्हें बुलाने को आए थे पर यह श्री रणछोड़जी में लीन हो गईं।

चरणदास

यह मेवात के अंतर्गत डेहरा स्थान के निवासी मुरलीधर ढूसर बनिया के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १७६० में हुआ था और सं० १८३८ में मृत्यु हुई थी। पाँच वर्ष की अवस्था में पिता की मृत्यु हो जाने पर यह दिल्ली आए और यहीं बाबा सुखदेवदास के उन्नीस वर्ष की अवस्था में शिष्य हुए। इक्कीस वर्ष की अवस्था में ग्रंथ रचना आरम्भ की और कई सहस्र पद्यों की रचना की। इन्होंने निज का चरणदासी संप्रदाय चलाया,

जिसके अनुयायी अब भी मेवात, दिल्ली आदि स्थानों में मिलते हैं। इनके एक संग्रह ग्रंथ 'शवद' में 'भक्त का अंग' शीर्षक एक पद है, जिसमें अन्य भक्तों के साथ मीराबाई का भी बड़े आदर से उल्लेख हुआ है। वह पद इस प्रकार है।

साधो सोइ जन सूर जो खेत में मँड रहै, भक्ति मैदान में रहै ठाढ़ा।
सकल लज्जा तजै महानिरभै गजै, पैज निसांन जिन आय गाड़ा।
भए बहु वीर गंभीर जे धीर मत सवन को जस कहत ग्रंथ होई।
तिन विषै कछू इक नाम बरनन करूँ सुनौ हो संत दे चित्त सोई।
पिता सूँ रूठ ध्रुव पाँच ही वरस को टेक गहि भक्ति के पंथ धायो।
छल भए ना डिगो टेक पूरी भई जीत मैदान हरि दरस पायो।
हठी प्रह्लाद हरिनाम छाड़ो नहीं बाप ने त्रास दे बहु डिगायो।
टेक जब नां टरी राम रिछ्या करी दुष्ट कूँ मारकर जन जितायो।
कबीर, दादू, धनैं पहिर बगतर बनें नाम दे सारपे वहुत कूदे।
सैंन सदनां भगत बली पीपा बड़ो राम की ओर कूं चले सूधे।
मलूक जैदेव गज ग्राह कलगीधरैं सूर रैदास मुख नाहिं मोड़ा।
ध्यान बंदूक मैं प्रेम रंजक जमा मीर माधो चला कुदा घोड़ा।
दास मीरां चली प्रेम सनमुख चली छोड़ दई लाज कुल नाहिं माना।
और स्यौरी मंडी तोड़ ऊँची गढ़ी दौड़ करमां चली प्रेम जानां।
श्री सुखदेव चरनदास सांवत कियो लड़ै कलजुग विषैं खंभ गाड़ैं।
बहुत सैना लियैं ललक हूँ हूँ कियैं चरन हो दास सँग नाँहि छाड़ैं।

दयाबाई

यह चरणदासजी की शिष्या थीं तथा उन्हींकी जन्मभूमि मेवात के अंतर्गत डेहरा ग्राम में पैदा हुई थीं। इनका जन्म संवत १७६५ के आस पास हुआ था। यह तथा अन्य शिष्या सहजोबाई दोनों ही वरावर अपने गुरुदेव की सेवा में निरत रहती थीं। यह भी अपने गुरु तथा सहजोबाई की सजातीय दूसर बणिक थीं। इन्होंने अनूठे पद कहे हैं और काफी कहे हैं। इनकी कविता संत बानी ग्रंथमाला में प्रकाशित हो चुकी है। इनका एक ग्रंथ दयाबोध सं० १८१८ में लिखा गया था। एक और ग्रथ विनय-मालिका है, जिसमें दयादास छाप मिलता है। नहीं कहा जा सकता कि यह इन्हीं दयाबाई का है या किसी अन्य का। यह अवश्य ज्ञात होता है कि इसी चरणदासा पंथ के किसी भक्त का है। हो सकता है कि इन्हीं दयाबाई के किसी शिष्य का हो, जिसने इन्हीं के नाम पर उपनाम रख लिया था। इसी विनयमालिका में एक दोहा इस प्रकार है—

विष का प्याला घोरि के, राणा भेज्यो छान।
मीरा अचयो राम कहि हो गयो सुधा समान॥

इसमें राणा द्वारा भेजे हुए विष का मीरा द्वारा पान करने की कथा मात्र है और सं० १८०० के आस पास की लिखी है, जिसके दो शताब्दि पहिले मीराबाई हुई थीं। अतः यह समय-निर्धारण आदि के लिए विशेष महत्व का नहीं है।

नंदराम

इनके विषय में विशेष ज्ञात नहीं हो सका। खोज रिपोर्ट जि० १ में एक नंदराम का उल्लेख है, जिसने कार्तिक शुक्ल पक्ष सं० १७७४ में एक पचीसी लिखी है। यह खंडेलवाल बलराम के पुत्र तथा अंबावति नगरी के रहनेवाले कृष्णोपासक थे। आमेर में इन्होंने यह पचीसी लिखी थी। इस बारहमासा की भाषा उक्त पचीसी की भाषा से मिलती जुलती भी है। बारहमासा के नंदराम अपने को ब्राह्मण का बेटा लिखता है।

बारहमासा

म्हाने सुरत दिखावो, वेगा थे आवो, कृष्ण मुरारजी॥ ॥टेक॥
प्रथम महीनो चैत शारदा, गणपत देव मनाऊँ।
बारामास बणाय बुद्धि से, तव बृजराज लड़ाऊँ।
कृपा करो थे मात शारदा, मन इच्छा फल पाऊँ।
मारवाड़ गढ़ मेड़तो, कमधज कुल राठौड़।
जननी मीराँ भक्त कृष्ण की व्याही गढ़ चित्तोड़॥
श्याम म्हारी सुध ले जावो॥ म्हाने० ॥१॥
लगत मास वैशाख साँवरा, भक्ती करूँ तिहारी।
मैं दासी थारी जनम जनम की, थे म्हारा सिरजनहारी।
गोतम नार भीलणी गणका, त्यारी अधम उधारी।
हे बृजबासी साँवरा, अरज करूँ कर जोड़।
उग्रसेन-सुत-मारण-तारण भक्त-वछल-सिरमौड़॥
मेड़तणी महिमा गावो॥ म्हाने० ॥२॥
जेठ मास सुध लगन तात मेरी करी व्याह की त्यारी।
गढ़ चित्तौड़ राव सिसोद्यो, भूप-शिरोमणि भारी।
जोसी दियो खिनाय तात मेरे रच्यो व्याह बलकारी।
सेस मेवाड़ो गढ़पती, राणो सुघड़ सुजान।
रच्यो सुयंवर तात बात मेरी, सुनो कृष्ण दे कान॥
मीराँ के फंद छुड़ावो॥ म्हाने० ॥३॥

लगत मास आषाढ़ राव म्हाँसूँ करै लोभ की बात।
सीसोद्यो भूल्यो, फिरै सज्यो, मैं थाने समजूँ भ्रात॥
मैं न्यारी संसार से थे, मोपर रखियो ख्यांत।
काम क्रोध मद लोभ को, समद गयो भरपूर।
मैं न्यारी संसार काम से, समझो आप हिजूर॥
हो नहीं रस को दावो॥ म्हाने० ॥४॥

सावण सगुन मनाय कृष्ण का, मीराँ मन्दर जावे।
प्रेम भक्ति सूं नाच कूदकर, गुण गिरिधर का गावे॥
खबर भई रणवास में, मेड़तणी लोग हँसावे।
बात सुणी सिसोदिया, कोप कियो भरपूर।
कुटिल नार पाने पड़ी याने मारो तुरत जरूर॥
जाय कर खड्ग दिखावो॥ म्हाने० ॥५॥

भादू मास राव सिसोद्यो, मन में कपट ऊपायो।
भरकर प्यालो जहर को, उण मन्दर में धरवायो॥
कपट माल कर व्याल की, उंने खूँटी पर लटकायो।
चरणामृत मीराँ लियो, ईम्रत कियो मुरार।
जा पर कृपा होय कृष्ण की, कुण छे मारणहार॥
भक्त को बिड़द वधावो॥ म्हाने० ॥६॥

लागत मास आस्योज राव के, रीस भई अति भारी।
जहर व्याल से बच गई बैरण, या छै जादूगारी॥
राव कहे सुणज्यो मेड़तणी, राखो लाज हमारी।
सुण मेड़तणी सुन्दरी, राणो करे बयान।
लाज तुम्हारे हाथ हमारी सुणो अरज दे कान॥
बचन सुण ओड़ निभावो॥ म्हाने० ॥७॥

कातिक मास सास मीराँ को, अपने पास बुलावे।
सब कामण रणवास की, मीराँ ने वे समझावे॥
बड़ाँ घराँ की नार बहू तूं, मतना लोग हँसावे।
हे रंग भीनी गोरड़ी, कह्यो हमारो मान।
रैण राव सेवा करो, दिवस भजो भगवान॥
जगत में जस फैलावो॥ म्हाने० ॥८॥

अगहन मास सास नणदल सूँ, मीराँ करै बयान।
म्हारो पति भगवान, सास मैं करूँ, रात दिन ध्यान॥
भक्त-उधारण असुर-संघारण, वो बृजवासी कान।

सुरपत - सुत-नाती[1] जठर, रक्षा - करण कृपाल।
सांतनु - सुत - नातो - रिपु[2] यो पतनी प्रतिज्ञा पाल॥
इसाने थे बी ध्यावो॥ म्हाने० ॥६॥

पोष मास मोय आस साँवरा, अब तो हियो उम्यावे।
कड़वा बोले वचन राव म्हारे, झूठो कलंक चढ़ावे॥
कोप्यो राणो कुलछणो मने, कुलदूषणी बतावे।
सुरपत-सुत-पतनी-सखा[3], जलधि - सुतापति, नाथ।
रुद्र वेद सर अर्धकर, शीश हतन निज हाथ॥
मेवाड़ै त्राण दिखावो॥ म्हाने० ॥१०॥

लग्यो महीनो माघ साँवरा, अर्ज सुणो अविनाशी।
चुटकी ताल बजाय नाच रही, निरत करत नित दासी॥
राणो ध्यायो खड्ग लेय कर, अब थाने कूण बचासी।
मारण लाग्यो रावजी, कर सूंती तलवार।
सो मीराँ भगवत रची, यो इचरज भयो अपार॥
मीराँ इव सुर्ग सिधावो॥ म्हाने० ॥११॥

फागण मास आस मीराँ की, भगवत आज पुराई।
नन्दराम ब्राह्मण का लड़का, बारामास कथ गाई॥
सारां सिरै नम्र कर डावण, निपजै साल सवाई।
स्वर्ग पुरी. थो सासरो, यहाँ थी आधूं चार।
सीसोद्यो समझ्यो नहीं तो, थाने ले उतरती पार॥
मीराँ का इव गुण गावो॥ म्हाने० ॥१२॥

प्रीणधन

किसी अज्ञात प्रीणधन का एक पद मिला है, जिसमें मीराबाई का उल्लेख है। वह पद नीचे दिया जाता है—

राणो जी जेर दीयो सू में जाणी।
कुंचन लेर अगन में डारो, नीकसो बारे वाणी।
राणे जी विष को प्यालो मेलो भेलो मीराँ राणी।
वसन बीजय बेहाल करी है मो पे कछु न सरीयोरी।
ललना सकीये हाहा कर छुटी पायन सीस धरीयोरी।
'प्रीण धन' तन लहरीयो, मोरी लगर लार परीयो॥

---

१. परीक्षित। २. कृष्ण। ३. कृष्ण।

बख्तावर[1]

उक्त नाम के कवि ने मीराबाई के विषय में निम्नलिखित एक पद कहा है—

मेड़तणी रे मेलडे रंग छायो। टेक
कोटिक भान भयो प्रकासो; हो मांनु गीरधर आयो॥ मेड़तणी०
सिव सनकादिक ओर ब्रह्मादीक वेद पुराण में गायो॥ मेड़तणी०
'बषतावर' मीराँ बड़ भागण घर बैठाँ हरि पायो॥ मेड़तणी रे०

जन लछमन

महाराज रघुराजसिंह कृत रामरसिकावली में पृ० ८७८ पर जन लछमन कृत एक पद दिया हुआ है, जिसमें मीराबाई का उल्लेख है। पद नीचे दिया जाता है।

आई छुं राजा रणछोड़ शरणे थारे, आई छुँ। टेक
हितसुँ ब्राह्मण भेज दिया रे, लावो ने मेड़तणी वहोड़।
धरम संकट दियो ब्राह्मण, बैठी मंदिर में दौड़। आई०
आपणी ढिग राखि साँवराँ, विनती करूँ कर जोड़।
केमें पाछी जाउँ जगत पें, लागे मने मोटी खोड़। आई०
भयो प्रकाश मंदिर में भारी उगा सूरज करोड़।
ऐसा रूप देखि कृष्ण कों आई मंदिर में दौड़॥
नीर खीर ज्यों मिल ग्या, सजनी परमानंद की ओड़,
'जन लिछमन' साँचो जु जगत में धनि मीराँ राठोड़॥

सुंदरदास कायस्थ

यह श्रीवास्तव्य कायस्थ खरे दूलहराम के पुत्र थे, जो कमरुद्दीन खाँ वजीर के नायब राय भोगचंद के पुत्र थे। दूलहराम के बड़े भाई राय नौनिद्धराम भी उसी पद पर रहे। दूलहराम तथा सुंदरदास दोनों ही बंगाल आए तथा कंपनी की सम्मति से मुर्शिदाबाद के नवाब के यहाँ दीवान रहे। यह मथुरा-निवासी थे, क्योंकि नौकरी पर रहते समय अपने परिवार को वहीं से बुलाने का उल्लेख किया है। इन्होंने यहाँ आठ दस वर्ष कार्य कर छुट्टी ली और तीर्थयात्रा करते हुए काशी आकर यहीं रहने लगे। यहाँ निरंतर संत समागम रहता था। इन्होंने श्रीकृष्णलीला पर बहुत से पद बनाए हैं तथा संतों की वंदना लिखी है, जिसमें प्रायः एक सौ

---

१ यह पद रागकल्पद्रुम में उद्धृत है, जिसमें बख्तावर के अन्य पद भी हैं।

भक्तों का उल्लेख किया है। साथ साथ में प्रत्येक भक्त के एक एक दो दो पद भी उद्‌धृत किए हैं। इनका रचनाकाल प्रायः विक्रमीयः उन्नीसवीं शताब्दि का पूर्वार्ध है। इन्होंने नरसी महेता के बाद मीराबाई तथा नंददासजी की वंदना लिखी है। मीराबाई के विषय में लिखते हैं—

चौपै—श्री मीरा कों करौं प्रनाम। हरि के भक्तन में सरनाम ॥
तिनको प्रेम बरनि नहिं जाय। सागर तामें जात समाय ॥
तिनको प्रेम मनो सागर उमड्यो। देसन देसन बादल घुमड्यो ॥
चरनामृत कहि विष दियो डारि। अचै गई नहिं लाग्यो बार ॥
तिन किरपा तें भक्ति मैं पाओं। संगहि संग कुंज में आओं ॥

(राग सोरठ ताल अड़ाना चौताला)

सखि मोहि लाज बैरिन भई।
चलत लाल गोपाल पिय के संग काहे न गई ॥
दिवस चैन न रैन निद्रा विरह या तन तई।
लिखि सँदेस मैं प्रानपिय पै काहि पठओं दई ॥
कठिन छाती स्याम बिछुरत बिहरि दो किन भई।
दासि मीरा प्रानपिय पैं वारि दछिना दई ॥

कर्नल टॉड

कर्नल टॉड ने अपने प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ 'एनल्स आव राजस्थान' के प्रथम भाग पृ० ३०३ पर[1] जनश्रुति के आधार पर लिखा है कि 'राणा कुंभा ने मेड़ता के राठौड़ की एक पुत्री से विवाह किया था, जो मारवाड़ की जातियों में प्रथम गिनी जाती है। मीराबाई अपने समय की सौंदर्य तथा रहस्यपूर्ण भक्ति में सबसे अधिक प्रसिद्ध राजकुमारी थीं। इनकी रचना बहुत है, जो कृष्णभक्तों में अधिक प्रचलित हैं, भाटों में बहुत कम। इनके कुछ भजन तथा गान अब तक प्राप्त हैं। नहीं कहा जा सकता कि इन्होंने अपने पति से यह भक्ति-पूर्ण कवित्व-शक्ति पाई थी या इनके संसर्ग से इनके पति गीतगोविंद की टीका लिख सके थे। इनकी जीवनी रहस्यपूर्ण है और यमुना से द्वारिका तक भारत के स्त्री-लोक के प्रिय ठाकुर श्रीकृष्णजी के प्रत्येक मंदिर में उनकी भक्ति के आधिक्य ने अनेक दंतकथाएँ प्रचलित कर दी हैं।'

कुछ लोगों ने इसको विशेष रंजित करने के लिए लिखा है कि

---

१. एनल्स एंड एंटिक्विटीज आव राजस्थान, दी इंडिअन पब्लिकेशन सोसाइटी कलकत्ता, सन् १८९८–९।

और राग सागरोद्भव-राग कल्पद्रुम (सं० १८००) ही प्राचीन हैं, अन्य सभी विक्रमीय बीसवीं शताब्दि के हैं। सरोज के पहिले का पं० महेशदत्त शुक्ल का भाषा-काव्य-संग्रह नामक एक अन्य संग्रह ग्रंथ है, जिसमें समय-निर्णय सरोज से अच्छा हुआ है। मीराबाई के विषय में भी सरोज में लिखा गया है और सहायक ग्रंथों में टॉड राजस्थान का नाम देखने से यह स्पष्ट ही ज्ञात हो जाता है कि उसीके आधार पर इन्होंने मीरा की जीवनी संकलित की है। इसलिए टाडकृत राजस्थान शीर्षक पर जो कुछ कहा गया है वही इसके लिए भी अलम् है अतः विशेष नहीं लिखा जाता है। सरोज में भूमिका के सिवा उदाहरण तथा जीवनी अलग २ दी गई हैं, इससे तीनो स्थान के उद्धरण नीचे दिये जाते हैं।

भूमिका—

सं० १४५७ में महाराना[1] कुंभकर्ण चित्तौरगढ़ के राणा ने गीत-गोविंद को संस्कृत से भाषा करके नाना छन्दों को प्रकट किया। उनकी रानी मीराबाई ने कवियो का ऐसा मान किया कि उस समय भाषा-काव्य बनाने की हिंदुस्तान में बड़ी चर्चा हो गई। जिस स्थान में राणा कुंभकर्ण और मीराबाई अपने इष्टदेव के सामने अपनी बनाई हुई कविता को गाते और अन्य कवीश्वरों के काव्य को श्रवण करते थे, उसकी तैयारी में ९९ लक्ष रुपये खर्च हुए थे।

काव्य—मीराबाई चित्तौर की रानी।

दोहा—रसन करै आनहि रटै, फुटै आन लखि नैन।
स्रवन फटै ते सुने बिन, श्री राधा जस बैन॥

कबित्त—कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ अंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं।
कैसे सुरलोक नरलोक परलोक सब,
कीन मैं अलोक लोक लोकन ते न्यारी हौं॥
तन जाहु मन जाहु देव-गुरुजन जाहु,
जीभ क्यों न जाहु टेक टरत न टारी हौं।
बृंदावन वारे गिरिधारी के मुकुट पर,
पीतपट वारे की मैं मूरति पै वारी हौं॥

---

१. यह गलत है। मीराबाई के पति भोजराजा थे, जो राना साँगा के टे थे और थोड़ी ही अवस्था में मर गए।

(सरोज के संपादक)

मेड़तिया शाखा अगणित है और मरु के सर्वोत्तम खड्ग होने की प्रसिद्धि को यह बनाए हुए है। इसकी पुत्री मीराबाई राणा कुंभा की स्त्री थी और यह वीर जयमल का दादा था, जिसने अकबर के विरुद्ध चित्तौड़ की रक्षा की थी। इसके वंशधर बेदनोर के जैतसिंह उदयपुर दरबार के सोलह प्रमुख सर्दारों में से हैं।' उसी भाग के पृ० ८५० पर लिखा है कि 'गांगाजी के पौत्र युवक राजकुमार रायमल, मेड़तिया सर्दार खड़तो और रत्न तथा बहुत से अन्य प्रसिद्ध सर्दारों के साथ इस घटनामय दिन में चग़त्ताई के विरुद्ध लड़ते मारे गए।'

राजस्थान के उक्त उद्धरणों को मिलाकर देखने से इतना निश्चित होता है कि मीराबाई मेड़तिया शाखा के राठौर वंश की थीं, जिस शाखा का संस्थापक राव जोधा का पुत्र राव दूदा था। राणा कुंभकर्ण तथा राव जोधा का जन्म प्रायः एक ही संवत में हुआ था। यद्यपि मीराबाई राव दूदा की पौत्री और जयमल की बहिन थीं पर टॉड ने उन्हें राव दूदा की पुत्री लिखा है। तर्क के लिए ऐसा भी मान लेने पर राव दूदा की, जिसका जन्म राणा कुंभ के जन्म के तेईस वर्ष बाद हुआ था, पुत्री का विवाह राणा कुंभ के साथ होना असंभव है। राणा कुंभ पचास वर्ष की अवस्था ही में मर गया था, जिस समय राव दूदा की प्रथम संतान छ सात वर्ष की रही होगी। वास्तव में वह राव दूदा की पौत्री थीं और इनके पिता का जन्म राणा कुंभ की मृत्यु के दस बारह वर्ष बाद हुआ था।

अतः टॉड का यह कथन कि मीराबाई मेड़तिया राठौड़ होते हुए राणा कुंभ की स्त्री थीं, कोरा भ्रम मात्र है और अग्राह्य है। किसी ग्रंथ के एक उद्धरण को लेकर तथा उसके अन्य अंशों का बिना मनन किए किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाना कितना भ्रामक है, यह भी इससे स्पष्ट हो जाता है।

शिवसिंह सरोज

ठाकुर शिवसिंह उन्नाव जिले के अंतर्गत कांथा के जमींदार सेंगर वंशीय रणजीतसिंह के पुत्र थे। यह पुलिस में इंसपेक्टर के पद पर नियत थे। इन्होंने सं० १९३३-४ में एक सहस्र कवियों की जीवनियाँ तथा उनके उदाहरणों का एक संग्रह-ग्रंथ तैयार किया और अपने नाम पर उसका शिवसिंह सरोज नामकरण किया। इन्होंने विशिष्ट सहायक, संग्रह-ग्रंथों की जो तालिका दी है उनमें कालिदास का हजारा (सं० १७५५), तुलसीकृत कविमाला (१७१२), सुब्बासिंह कृत विद्वन्मोद-तरंगिणी (१७८४), बल्देव कविकृत सत्कवि-गिरा विलास, (सं० १८०३)

मीराबाई के भजन तथा सौंदर्य को सुनकर राणा कुंभा छद्मवेश में मेड़ता गए और जिस मंदिर में मीरा भजन कर रही थी वहाँ जाकर उन्हें देखा। उनपर मुग्ध होकर यह लौटे और विवाह ठीक करने के लिए ब्राह्मणों को भेजा। मीरा के पिता ने यह संबंध स्वीकार कर लिया और विवाह हो गया। राणा कुंभा ने इनकी उपासना के लिए एक छोटा मंदिर बनवा दिया, जहाँ यह भक्तों के बीच भजन किया करती थीं। इस विषय में राणा से कई बार कहने पर वह यह देखने गए और उससे दुखित होकर उन्होंने मीराबाई को डाँटा। इसपर यह अर्द्धरात्रि को वहाँ से निकल कर द्वारिका चली गईं।

एक वर्तमान लेखक ने 'मतवाली मीरा' में राणा कुंभा के अनुज से मीराबाई के विवाह का उल्लेख किया है। अस्तु, इस प्रकार यह दंतकथा प्रचलित हुई। कार्तिकप्रसादजी ने मीरा की जीवनी में इसे लिखा। गुजरात के कई विद्वानों ने इसे ठीक माना। स्व० गोवर्द्धनराम माधवराम त्रिपाठी कृत 'क्लासिकल पोएट्स् आव गुजरात' तथा कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी कृत 'गुजराती साहित्य नो मार्गसूचक स्तंभो' में यही दंतकथा मानकर मीरा का जन्म मरण काल निश्चित किया गया है। शिवसिंह सरोज में भी यही माना गया है। तात्पर्य यह कि इस दंतकथा का काफी प्रचार हुआ पर इसके विरुद्ध पहिले पहिल मुंशी देवीप्रसादजी ने लेख लिखकर इसकी असारता दिखलाई।

राजस्थान के उद्धरण में मीराबाई को मेड़ता के राठौड़ की राजकुमारी लिखा गया है, जो अंश ठीक है। राणा कुंभ की विद्वत्ता तथा मीराबाई की कवित्वशक्ति को देखकर और कुंभ के बनवाए कुंभश्याम के बृहत् मंदिर के बगल में उन्हींके बनवाए छोटे मंदिर को 'मीराबाई का मंदिर' के नाम से प्रसिद्ध होने से यह कथा गढ़ी गई ज्ञात होती है पर दोनों ही निस्सार हैं। दंपति में दोनों का विद्वान होना कोई ऐसा नियम नहीं है कि एक के विद्वान होने से दूसरे को विदुषी मान ही लिया जाय। किसी एक के निर्मित मंदिर का उसके बाद अनेक कारणों से दूसरे के नाम से प्रसिद्ध हो जाना असंभव नहीं है और ऐसा बहुधा होता है।

राजस्थान जि० २ पृ० ८४७ पर जोधपुर के बसानेवाले राव जोधाजी के पुत्रों की सूची दी गई है और दूदाजी के नाम के आगे लिखा है कि 'इसने चौहानों से साँभर विजय किया। इसका एक पुत्र वीरम था, जिसके दो पुत्र जयमल तथा जगमल थे। इनसे जयमलोत और जगमलोत शाखाएँ चलीं।' उसी पृष्ठ पर दूदा का वृत्त देते लिखा है कि 'चतुर्थ पुत्र दूदा ने मेड़ता के मैदानों में अपने को स्थापित किया, जिसकी

मेड़तिया शाखा अगणित है और मरु के सर्वोत्तम खड्ग होने की प्रसिद्धि को यह बनाए हुए है। इसकी पुत्री मीराबाई राणा कुंभा की स्त्री थी और यह वीर जयमल का दादा था, जिसने अकबर के विरुद्ध चित्तौड़ की रक्षा की थी। इसके वंशधर वेदनोर के जैतसिंह उदयपुर दरबार के सोलह प्रमुख सर्दारों में से हैं।' उसी भाग के पृ० ८५० पर लिखा है कि 'गांगाजी के पौत्र युवक राजकुमार रायमल, मेड़तिया सर्दार खड़तो और रत्न तथा बहुत से अन्य प्रसिद्ध सर्दारों के साथ इस घटनामय दिन में चग़त्ताई के विरुद्ध लड़ते मारे गए।'

राजस्थान के उक्त उद्धरणों को मिलाकर देखने से इतना निश्चित होता है कि मीराबाई मेड़तिया शाखा के राठौर वंश की थीं, जिस शाखा का संस्थापक राव जोधा का पुत्र राव दूदा था। राणा कुंभकर्ण तथा राव जोधा का जन्म प्रायः एक ही संवत में हुआ था। यद्यपि मीराबाई राव दूदा की पौत्री और जयमल की बहिन थीं पर टॉड ने उन्हें राव दूदा की पुत्री लिखा है। तर्क के लिए ऐसा भी मान लेने पर राव दूदा की, जिसका जन्म राणा कुंभ के जन्म के तेईस वर्ष बाद हुआ था, पुत्री का विवाह राणा कुंभ के साथ होना असंभव है। राणा कुंभ पचास वर्ष की अवस्था ही में मर गया था, जिस समय राव दूदा की प्रथम संतान छ सात वर्ष की रही होगी। वास्तव में वह राव दूदा की पौत्री थीं और इनके पिता का जन्म राणा कुंभ की मृत्यु के दस बारह वर्ष बाद हुआ था।

अतः टॉड का यह कथन कि मीराबाई मेड़तिया राठौड़ होते हुए राणा कुंभ की स्त्री थीं, कोरा भ्रम मात्र है और अग्राह्य है। किसी ग्रंथ के एक उद्धरण को लेकर तथा उसके अन्य अंशो का बिना मनन किए किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाना कितना भ्रामक है, यह भी इससे स्पष्ट हो जाता है।

शिवसिंह सरोज

ठाकुर शिवसिंह उन्नाव जिले के अंतर्गत कांथा के जमींदार सेंगर वंशीय रणजीतसिंह के पुत्र थे। यह पुलिस में इंसपेक्टर के पद पर नियत थे। इन्होंने सं० १९३३-४ में एक सहस्र कवियों की जीवनियाँ तथा उनके उदाहरणों का एक संग्रह-ग्रंथ तैयार किया और अपने नाम पर उसका शिवसिंह सरोज नामकरण किया। इन्होंने विशिष्ट सहायक, संग्रह-ग्रंथों की जो तालिका दी है उनमें कालिदास का हजारा (सं० १७५५), तुलसीकृत कविमाला (१७१२), सुब्बासिंह कृत विद्वन्मोद-तरंगिणी (१७८४), बल्देव कविकृत सत्कवि-गिरा विलास (सं० १८०३)

और राग सागरोद्भव-राग कल्पद्रुम (सं० १८००) ही प्राचीन हैं, अन्य सभी विक्रमीय बीसवीं शताब्दि के हैं। सरोज के पहिले का पं० महेशदत्त शुक्ल का भाषा-काव्य-संग्रह नामक एक अन्य संग्रह ग्रंथ है, जिसमें समय-निर्णय सरोज से अच्छा हुआ है। मीराबाई के विषय में भी सरोज में लिखा गया है और सहायक ग्रंथों में टॉड राजस्थान का नाम देखने से यह स्पष्ट ही ज्ञात हो जाता है कि उसीके आधार पर इन्होंने मीरा की जीवनी संकलित की है। इसलिए टाडकृत राजस्थान शीर्षक पर जो कुछ कहा गया है वही इसके लिए भी अलम् है अतः विशेष नहीं लिखा जाता है। सरोज में भूमिका के सिवा उदाहरण तथा जीवनी अलग २ दी गई हैं, इससे तीनो स्थान के उद्धरण नीचे दिये जाते हैं।

भूमिका—

सं० १४५७ में महाराना[1] कुंभकर्ण चित्तौरगढ़ के राणा ने गीत-गोविंद को संस्कृत से भाषा करके नाना छन्दों को प्रकट किया। उनकी रानी मीराबाई ने कवियों का ऐसा मान किया कि उस समय भाषा-काव्य बनाने की हिंदुस्तान में बड़ी चर्चा हो गई। जिस स्थान में राणा कुंभकर्ण और मीराबाई अपने इष्टदेव के सामने अपनी बनाई हुई कविता को गाते और अन्य कवीश्वरों के काव्य को श्रवण करते थे, उसकी तैयारी में ९९ लक्ष रुपये खर्च हुए थे।

काव्य—मीराबाई चित्तौर की रानी।

दोहा—रसन करै आनहि रटै, फुटैं आन लखि नैन।
स्रवन फटै ते सुने बिन, श्री राधा जस बैन॥

कबित्त—कौऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ अंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं।
कैसे सुरलोक नरलोक परलोक सब,
कीन मैं अलोक लोक लोकन ते न्यारी हौं॥
तन जाहु मन जाहु देव-गुरुजन जाहु,
जीभ क्यों न जाहु टेक टरत न टारी हौं।
वृंदावन वारे गिरिधारी के मुकुट पर,
पीतपट वारे की मैं मूरति पै वारी हौं॥

---

१. यह गलत है। मीराबाई के पति भोजराजा थे, जो राना साँगा के बेटे थे और थोड़ी ही अवस्था में मर गए।

(सरोज के संपादक)

जीवनी—

हमने इनका जीवन चरित्र तुलसीदास कायस्थ कृत भक्तमाल में देखा और तारीख चित्तौड़ से मिलाया तो बड़ा फरक पाया गया। अब हम इनका हाल चित्तौड़ के प्राचीन प्रबंध से लिखते हैं। यह मीराबाई मारवाड़ देश में राना राठौर-वंशावतंस मेरतिया देशाधिपति के यहाँ उत्पन्न हुई थीं। यह रियासत सारे मारवाड़ के फिरकों में उत्तम है। मीराबाई का विवाह सं० १४७० के करीब राना मोकलदेव के पुत्र राना कुंभकर्ण सी चित्तौर-नरेश के साथ हुआ था। सं० १४७५ में ऊदा राना के पुत्र ने राना को मार डाला। मीराबाई महास्वरूपवती और कविता में अतिनिपुण थीं। रागगोविंद ग्रंथ भाषा का बहुत ललित बनाया है। चित्तौरगढ़ में दो मंदिर राना रायमल के महल के करीब थे। एक राना कुंभा का और दूसरा मीराबाई का। सो मीराबाई अपने इष्टदेव श्यामनाथ को उसी मंदिर में स्थापित कर नृत्यगीत भावभक्ति से रिझाया करती थीं। एक दिन श्यामनाथ मीरा के प्रेमवश होकर चौकी से उतर अंक में लेकर बोले—हे मीरा! केवल इतना ही शब्द राधानाथ के मुँह से सुन मीराबाई प्राण त्याग कर रसिक बिहारी गिरधारी के नित्य विहार में जाय मिलीं। इन दोनों मंदिरों के बनाने में नब्बे लाख रुपया खर्च हुआ था।

बांधवेश रघुराजसिंह कृत रामरसिकावली

रीवाँ नरेश महाराज रघुराजसिंह ने स्वकृत भक्तमाल रामरसिकावली में मीराबाई का चरित्र पृ० ८६१—७९ तक १९ पृष्ठों में दोहे चौपाई में लिखा है तथा मीरा के कुछ पद भी उद्धृत किये हैं। यह वर्णन दंत-कथाओं ही के आधार पर लिखा गया है। उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

मारवाड़ देश के राजा जयमल की पुत्री मीरा थीं, जिनका बाल्यकाल ही से श्री हरि के प्रति अनुराग था। एक दिन एक साधु-मंडली जयमल के यहाँ आई, जिनके महंत की श्री गिरधरलाल की मूर्ति को मीरा ने माँगा। जब उसने नहीं दिया और चला गया तब यह रोती हुई सूर का पद 'जो बिधना निज वश करि पाऊँ' गाने लगीं। इस प्रकार सात दिन उपास करने पर महंत को स्वप्न में मूर्ति दे देने की आज्ञा मिली तब उसने वह मूर्ति दे दिया। जब मीरा बारह वर्ष की हुई तब उदयपुर के राणा से इसका ब्याह हुआ और भौंवर के समय मंडप में गिरिधरलालजी की मूर्ति रखकर इन्होंने फेरी ली। गिरिधरलालजी को पालकी में लेकर ससुराल आईं और कुलदेव के पूजन के समय जब इन्होंने पूजा करना

स्वीकार नहीं किया तब भूत महल में रखी गई और कुँवर का दूसरा विवाह कर दिया गया। मीरा ने प्रसन्न होकर एक मंदिर बनवाकर उसी में गिरिधरलालजी की मूर्ति स्थापित की। वहीं मूर्ति के सामने स्वयं पद बनाकर गातीं तथा नृत्य करतीं। साधुगण भी वहाँ आते थे। इस पर रानियों ने उसे बहुत समझाया पर मीरा के न मानने पर राणा से जाकर कह दिया। तब राणा ने विष घोलकर चरणामृत के नाम से मीरा के पास उसी के सास के हाथ भेजा जिसे वह पी गईं पर उस पर कुछ असर नहीं हुआ। इसके बाद उनके महल में पुरुष की बोली सुन कर दासी द्वारा समाचार पा राणा वहाँ पहुँचा पर किसी को न देखकर लज्जित हो लौट गया।

इसके बाद उस साधु की कथा है, जो श्री गिरिधरलाल का प्रतिनिधि होकर आया था और जब मीरा ने साधु-समाज के बीच पलंग बिछवाया तब उसने पैरों पर गिरकर क्षमा माँगी। इसके अनंतर तानसेन को लेकर अकबर आया तब मीरा से संगीत विद्या पर जो तर्क वितर्क हुआ और मीरा ने जो कुछ कथा कही उसका विवरण गद्य-पद्य में दिया हुआ है। इसके साथ मीरा के दर्शन से अकबर की प्राण रक्षा की यह कथा भी है कि किसीने पुरश्चरण ,कर हनुमानजी को अकबर को मारने के लिए भेजा पर वहाँ राम लक्ष्मण को खड़े देख कर वह लौट आए और पुरश्चरण कर्ता को मार डाला।

राणा को यह सब सुनकर भी कुछ समझ नहीं आया और एक डिब्बा में काला नाग रखकर शालिग्राम के नाम से मीरा के पास भेज दिया पर उसके हाथ में लेकर खोलते ही वह शालिग्राम हो गया। इसके अनंतर वह बीमार पड़ीं पर एक पद गाने से अच्छी हो गईं। इस प्रकार जब राणा के उपद्रव से वह घबरा उठीं तब तुलसीदासजी को पत्र लिखा और उनका उत्तर आने पर वृंदावन चली गईं। वहाँ स्थान स्थान पर पद बनाकर गाने का उल्लेख है, तथा पद भी दिए गए हैं। यहीं किसी जीव गोसांई से मीरा के मिलने का विवरण भी दिया गया है।

वृंदावन में बहुत दिन बसने के अनंतर मीरा उदयपुर गईं पर राणा की वही टेढ़ी चाल देखकर द्वारिका चली गईं। इधर राणा के यहाँ अनेक उत्पात भए तब मीरा को बुलाने को पुरोहितों को भेजा। इन लोगों के धरना देने पर मीरा कई पद गाकर श्री रणछोड़जी में लीन हो गईं।

रामरसिकावली में किसी राणा का नाम तक नहीं दिया गया है और जयमल को मारवाड़ का राजा लिखा है। जयमल की कथा अन्यत्र

कहते हुए उन्हें श्रीहित हरिवंशजी का शिष्य और मीरा का पिता लिखा है। यह कैसे लिखा है, इसका भी उल्लेख नहीं है।

वीरविनोद

महाराणा संग्रामसिंह के सात पुत्र हुए (१) पूर्णमल्ल (२) भोजराज (३) पर्वतसिंह (४) रत्नसिंह (५) विक्रमादित्य (६) कृष्णसिंह (७) उदयसिंह। पूर्णसिंह, भोजराज, पर्वतसिंह, कृष्णसिंह चार तो महाराणा साँगा के सामने ही परलोक सिधारे। इनमें से भोजराज, जो सोलंखी रायमल्ल की वेटी के गर्भ से जन्मे थे उनका विवाह मेड़ते के राव दूदा जोधावत के पाँचवें वेटे, रत्नसिंह की वेटी, मीरावाई के साथ हुआ था। मीरावाई वड़ी धार्मिक और साधु संतों का सम्मान करनेवाली थी।[1]

---

१. टाड साहव मीरावाई को महाराणा कुंभा की स्त्री लिख रहे हैं परंतु यह वात ठीक नहीं है क्योंकि राव जोधाजी ने विक्रमी १५१५ (हि० ८६२ = ई० १४५८) में जोधपुर वसाया। विक्रमी १५२५ (हि० ८७२ = ई० १४६८) में महाराणा कुंभा का देहांत हुआ। वि० १५४२ हि० ८९०, १४८५ ई०) में राव दूदा जोधावत को मेड़ता (झामादेव के वरदान से) मिला। वि० १५८४ (हि० ९३३, ई० १५२७) में महाराणा साँगा और वावर वादशाह की लड़ाई में राव दूदा के दो वेटे रायमल्ल और रत्नसिंह (मीरावाई का पिता) मारे गए और रायमल्ल का वेटा जयमल्ल वि० १६२४ (हि० ९७५, ई० १५६८) में चित्तौड़ पर अकवर की लड़ाई में मारा गया।

सोचना चाहिए कि महाराणा कुंभा के वक्त दूदा को मेड़ता ही नहीं मिला था फिर दूदा की श्रीमती मीरावाई मेड़तणी कुंभा की राणी किस तरह हो सकती है?

महाराणा कुंभा के देहांत से ५९ वर्ष पीछे वावर और महाराणा साँगा की लड़ाई में मीरावाई का वाप रत्नसिंह मारा गया तो महाराणा कुंभा के वक्त में (टाड साहव का लिखा माना जाय तो) रत्नसिंह की अवस्था चालीस वर्ष से कम न होगी, उस हिसाव से मारे जाने के वर्ष सौ के आसरे होनी चाहिए और इतनी उमर के आदमी का वहादुरी के साथ लड़ाई में मारा जाना असंभव है।

महाराणा कुंभा से १०० वर्ष पीछे मीरावाई के चचेरे भाई जयमल्ल का मारा जाना लिखा है, इस हालत में जयमल्ल की वहन मीरावाई कुंभा की राणी किस तरह समझी जावे। मीरावाई महाराणा विक्रमादित्य उदय-

भक्तिमाहात्म्य चरित्रम्

एक सज्जन विद्वान से एक खंडित पत्राकार हस्तलिखित पुस्तक प्राप्त हुई जिसके बहुत से अंत के पृष्ठ नहीं हैं तथा बीच-बीच के भी बहुत से पत्रे नहीं हैं। इस कारण रचनाकाल, लिपिकाल तथा ग्रंथकार का नाम कुछ भी नहीं ज्ञात हो सका। आरंभ में लिखा है—

भक्तिमाहात्म्यचरितं कुर्वेहं मैथिलो द्विजः।

इससे इतना ज्ञात होता है कि किसी मैथिल ब्राह्मण ने भक्तिमाहात्म्य चरित नामक पुस्तक लिखी है। यह पुस्तक विशद अवश्य है क्योंकि लिखते हैं:—

खंडत्रयं विधास्येऽहं ग्रंथोस्मिन्नाति विस्तरः।

यह ग्रंथ तीन खंड में है, जिसके विष्णुखंड, शिवखंड तथा शक्तिखंड नाम रखे हैं। पौराणिक काल के तथा बाद के प्रायः सभी भक्तों के परिचय दिए गए हैं। विशदता के लिए मीराबाई का परिचय ही काफी सबूत है। एक-एक भक्त पर एक-एक सर्ग लिखा गया है। सूरदास, नित्यानंद आदि के परिचय भी इसी प्रकार एक-एक सर्ग में दिए गए हैं। ग्रंथ डेढ़ शताब्दि से अधिक प्राचीन नहीं ज्ञात होता और इसमें प्रचलित दंतकथाओं ही का समावेश किया गया है। जो कुछ भी हो संस्कृत में लिखे गए इस प्रकार के भक्तमाल का एक निजी महत्व है। मीरा के विषय में जो अंश, अधूरा ही सही, प्राप्त है वह यहाँ दे दिया जाता है।

चिते गिरिधरं देवं पतिं कृत्वा व्यवरिच्छतं ॥ ६ ॥
जयमल्लस्ततो मीरां सुमुहूर्ते ददौ मुदा।
राना पुत्राय वीराय धनानि विविधानि च ॥ ७ ॥

सिंह के समय तक जीती रही और महाराणा ने उसको जो जो दुख दिया वह उसकी कविता में स्पष्ट है।

टाड साहब ने धोखा खाया है इसका सबब है कि महाराणा कुंभा चित्तौड़गढ़ पर कुंभनश्यामजी के नाम से एक मंदिर बनवाया था और उसके पास ही एक दूसरा मंदिर बना हुआ है जो मीराबाई के नाम से मशहूर है पर न मालूम कि वह मंदिर मीराबाई ही का बसाया हुआ है या किसी और का। शायद इन दोनों मंदिरों के पास पास होने से महाराणा कुंभा की स्त्री मानी गई है परंतु हमारे यहाँ व मेड़तिया राठौड़ों की तवारीखों में मीराबाई को भोजराज की राणी लिखा है।

ततः स मीरा नीत्वा स्वं भवनं चलितो भवत् ।
मीरा गिरिधरं त्यक्त्वा नमंतुं सहतेऽस्यसा ॥ ८ ॥
प्रस्थान समये मीरा रुदंती मूर्छिता पतत् ।
ततस्तु पितरौ तस्याः समागत्येदमूचतुः ॥ ९ ॥

किमस्ति हृदये मीरे तद्वदावोवदाशुवां ।
इति श्रुत्वा ब्रवीन्मीरासमुन्मील्य विलोचने ॥१०॥
मह्यं गिरिधरं देहि नीत्वा तं यामि हर्षिता ।
नोचेदद्यैव मरणं भविष्यति न सशयः ॥११॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः पितरावतिमोहितौ ।
ददतुस्तं गिरिधरं पुत्री तोषयतावुभौ ॥१२॥
अथ मीरा गिरिधरं शिविकायां निधायतं ।
हर्षिता प्रययौ पत्युर्गेहे सैन्यसमन्विता ॥१३॥

तत्रश्वश्रूः समागत्य मीरया सहचात्मज ।
ग्रामदेवी समीपे तु निनायातिप्रमोदिता ॥१४॥
पुत्रेण पूजयित्वा तां देवीं मीरामथाब्रवीत् ।
स्नुषे संपूज्य मनसा ग्रामदेवीं नमस्कुरु ॥१५॥

इति श्वश्रू वचः श्रुत्वा मीरा प्राह कृतांजलिः ।
विना गिरिधरं चान्यं नमस्कुर्यामहं नहि ॥१६॥
इति श्रुत्वा पुनः श्वश्रूराह सौभाग्यवर्धनं ।
भविष्यति ततस्त्वंतु नमस्कुरु न संशयः ॥१७॥

इति श्रुत्वा पुनः प्राह मीराश्वश्रू न मे पतिः ।
मरिष्यति ततो नित्यं सौभाग्यं वर्धते मम ॥१८॥
किंचे मा विधवाः संति ग्रामे तव कथंस्त्रियः ।
इति श्रुत्वा तदाश्वश्रूः कोपेन स्फुरिताधरा ॥१९॥
वधूपुत्रौ परित्यज्य पति संनिधिमागता ।
उवाच तं महा दुष्टा स्नुषानीता त्वया गृहे ॥२०॥
अद्यैव न शृणोत्युक्तं किमेषाग्रे करिष्यति ।
अहं तु नैव वक्ष्यामि किंचिदस्यै हिताहितं ॥२१॥

इति श्रुत्वा ततो राना नृपः क्रुद्धो विचारयन् ।
मारणेऽस्याः कलंकस्यात् स्त्रीवधश्चातिदारुणः ॥२२॥
तस्मात्कचिद्गृहे रक्ष्या भोजनाच्छादनादिभिः ।
जिज्ञास्या नैव गेहेस्याः प्राधान्यस्यात्कथंचन ॥२३॥

इति निश्चित्यतां मीरां स्थापयामास मंदिरे।
कचित्तत्ररक्षासौ द्वारपालान् सुधार्मिकान् ॥२४॥
मीरा गिरिधरं नित्यं पूजयंती पतिव्रता।
नवेद किंचिच्चरितं श्वश्रा वा श्वशुरस्यच ॥२५॥

पूजयंती गिरिधरं निर्लज्जाः साधुभिः सह।
अनभिज्ञा कुलाचारे निमग्नानंदसागरे ॥२६॥
तदा रानादयः सर्वे तदाचारेण दुःखिताः।
कुले कलंकभूतेयं मरिष्यति कदा पुनः ॥२७॥

एवं विचिंतयं तस्ते लेभिरे शर्म न क्वचित्।
मीराननंदाचैकस्मिन् दिनेभ्योत्या ब्रवीच्यतां ॥२८॥
भ्रातृजाये, किमेवं त्वं कुलद्वय कलंकिनी।
भूत्वा गायति निर्लज्जा वैष्णवानां पुरस्थिता ॥२९॥

भावार्थ—जयमल्ल ने राणा के पुत्र को दहेज के साथ मीरा को अर्पित कर विदा किया पर मीरा अपने गिरिधर से बिछुड़ने के कष्ट को न सहन कर सकीं और अचेत हो गईं। माता-पिता के पूछने पर उसने गिरिधर को माँगा और पाने पर साथ लेकर शिविका में जा बैठीं। सास ने मीरा को ग्रामदेवता के पास लिवा जाकर पुत्र के साथ पूजा की और मीरा से प्रणाम करने को कहा। मीरा ने हाथ जोड़कर कहा कि सिवा गिरिधर के वह किसी दूसरे को नमस्कार नहीं करती। सास ने समझाया कि ग्रामदेवता को प्रणाम करने से सौभाग्य बढ़ता है। मीरा ने कहा कि मुझे पति नहीं है और मरेगा तो मेरा सौभाग्य बढ़ेगा। आपके ग्राम में इतनी विधवाएँ क्यों हैं? यह सुनकर क्रुद्ध हो सास पति के पास गई और कहा कि यह दुष्टा आज ही ऐसा कहती है, आगे न जाने क्या करेगी? मैं इसके शुभाशुभ का ध्यान नहीं रखूँगी। राणा भी क्रोधित हो गए और कहा कि मारने से कलंक होगा इसलिए अलग गृह में रख दो। मीरा भी किसीका चिंता न कर गिरिधर की पूजा में रत रहने लगी और साधुओं के साथ, कुलाचार से अनभिज्ञ रहकर निर्लज्जता के साथ भजन करती रही। सभी परिवारवाले दुःखी थे। एक दिन मीरा की ननद ने इससे कहा कि भाभी तुमने दोनों कुल में कलंक लगाया कि इस प्रकार वैष्णवों के सामने निर्लज्ज होकर गाती हो।

आ० अन्य साधन

नरसी मेहता

जूनागढ़ निवासी नरसिंह मेहता एक प्रसिद्ध भक्त तथा नागर ब्राह्मण थे। अल्पावस्था ही में इनके माता पिता की मृत्यु हो गई थी और यह भौजाई द्वारा पालित हुए थे। यह भक्तों का सत्संग करते और उनके साथ गोपी वेश धारण कर नृत्य करते थे। बड़े होने पर इनका विवाह हुआ। निर्धन होने से भाई के साथ रहते थे। भाभी के व्यंग्य पर यह घर छोड़ कर जंगल चले गए और वहाँ एक शिव मंदिर देखा, जिसकी पूजा नहीं होती थी। इन्होंने सात दिन निराहार रहकर पूजन किया जिस पर शिव जी प्रसन्न होकर प्रकट हुए और इनसे वर माँगने को कहा। इन्होंने कहा कि आपके दर्शन हुए, अब श्री विष्णु के दर्शन हों यही इच्छा है। शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा कि धन्य हो। भक्ति तुम में पूरी है, इस समय वह द्वारिका में रासमंडल में हैं। यह कह शिवजी ने मेहता का हाथ पकड़ा कि सामने श्रीकृष्णजी गोपी सहित दिखलाई पड़े। हरि-हर प्रसन्न हो मिले तथा गोपी ने महादेव को प्रणाम किया। शिवजी ने नरसिंह पर कृपा करने को कहा। भगवान ने कहा कि आप हाथ थाम चुके तब यह पूर्ण भक्त हो गए और यह कह इनके माथे पर हाथ रख कर कहा कि भजन किया करो। इसके बाद श्रीकृष्ण गोपी के साथ अंतर्ध्यान हो गए तब शिवजी भी राधाकृष्ण लीला वर्णन करने को कह कर अंतर्ध्यान हो गए। मेहता ने घर लौटकर भाभी को प्रणाम किया कि आपके पुण्य से हमें परमेश्वर के दर्शन हो गए, आप धन्य हैं।

नरसिंह इसके अनंतर भाई से अलग होकर रहने लगे और पूजा पाठ तथा हरिकीर्तन में दत्तचित्त रहते। किसी काम धंधे में मन नहीं लगाया। इनके दो संतानें थीं—एक पुत्र श्यामलदास तथा एक पुत्री कुँवरबाई। श्यामलदास का विवाहोपरांत मरण हो गया तथा इसी समय नरसिंह की स्त्री का भी देहान्त हो गया। कन्या का भी विवाह हो चुका था इसलिए अब नरसी स्वतंत्र होकर सत्संग तथा हरिकीर्तन करने लगे। कहते हैं कि श्रीकृष्ण ही ने इनके दोनों संतान का विवाह आदि किया था।

कुँवरबाई का विवाह श्रीरंग मेहता के पुत्र से हुआ था, जो धनी थे इसलिए इसकी ननद जेठानी इसे गरीब समझ कर बोली बोलती थीं। जब इसे पुत्र होने को हुआ तब अंत में बहुत कहने सुनने पर तथा विशेष

प्राप्ति की आशा छोड़ कर नरसिंह मेहता को संदेशा भेजा गया। यह ईश-भरोसे कुछ साधु महात्मा तथा पूजनादि का सामान लिए पहुँचे। सभी उपहास कर रहे थे और कुँवर बाई भी यह हाल देख कर रो दी पर अंत में नरसी की प्रार्थना पर भगवान स्वयं लक्ष्मीजी के साथ सेठ सेठानी के रूप में आ पहुँचे और सब सामान भी आ गया। नरसीजी ने बड़े समारोह से सब कार्य निपटाया।

यह समदृष्टि थे। ढेड जाति अंत्यज है पर उनके आमंत्रण पर इन्होंने उनके स्थान पर जाकर रात्रि भर भजन कीर्तन किया था। जातिवालों ने इन्हें पंक्ति में बैठाना बंद कर दिया। यह स्वप्न में आज्ञा पाकर एक दिन बिना निमंत्रण के भोजन के समय पहुँचे तब जातिवालों ने इन्हें रोका पर इतने में वे देखते हैं कि उनकी पंक्ति में ही दो दो नागरों के बीच एक एक ढेड बैठा हुआ है। इस पर डर कर सबने इन्हें पंक्ति में बैठाया और उसी समय सब ढेड लुप्त हो गए। यह देख कर सभी उपस्थित ब्राह्मण अत्यंत लज्जित हुए।

इनके संबंध में अनेक चमत्कार सुने जाते हैं, जिनमें साँवलिया शाह (श्रीकृष्ण) की हुंडी सकारना, श्यामलदास तथा कुँवरबाई का विवाह करना आदि है। नरसी मेहता के प्रायः दो सौ वर्ष बाद गुजराती के प्रसिद्ध कवि प्रेमानंद भट्ट ने इन सब आख्यानों को लेकर कविता की है, जो गुजरात में घर घर गाया जाता है। नरसी मेहता ने बहुत सी कविता की है। इनका समय प्रायः सं० १४७२ से सन् १५३८ ई० तक निर्धारित हुआ है।

इन्हीं नरसी मेहता की पुत्री कुँवरबाई के सीमंत पर मीराबाई ने 'नरसी का मायरा' नाम से कविता लिखी है, जिससे यह उनकी परवर्ती कवियित्री ज्ञात होती हैं पर नरसी के एक पद में मीरा का उल्लेख है, इसलिए कुछ समय के लिए यह उनकी समकालीन अवश्य थीं। पद[1] इस प्रकार है, जिसका टेक तथा दो चरण यहाँ दिया जाता है—

तूँ तारा विरद सांहांमू जोजे शामळा, न जोइश करणी हमारी रे।
लाखाग्रेह माँ जेम पवडां उगार्या, ब्रह्मांड ज्वाला कापी रे।
अर्ध वचने गज गणिका तारी, जयदेव ने पद्मिनी आपी रे॥
मीरांबाईना विष अमृत कीधां, विदुरनी अरोग्या भाजी रे।
सवरी ना जेम बोरज प्राश्यां, तेनी प्रीते थया राजी रे॥

---

१. गीता प्रेस से प्रकाशित 'भक्त नरसिंह मेहता' पृ० १५४-५।

**अनेक भक्त आगे उगार्या, सहाय थया मोरारी रे।
नरसैंया चा स्वामी लक्ष्मीवर, मोटी ओथ तमारी रे॥**

भक्तमाल छप्पय १०८ तथा टीका के २७ कवियों में नरसीजी का वृत्त दिया गया है जिसमें नरसी की दो पुत्री कुँवरसेना तथा रतनसेना नाम दिया है। पहिली का विवाह हुआ था, जो प्रभु-लीला देख कर भक्त हो गई। दूसरी पुत्री ने विवाह ही नहीं किया। साँवलिया शाह की हुंडी तथा पुत्र श्यामलदास के विवाह का विस्तृत विवरण दिया गया है। ध्रुवदासजी ने भी इनका उल्लेख अपनी भक्त नामावली में किया है।

मीराबाई द्वारा दर्शन की गई वृंदावन की मूर्तियाँ

मीराबाई लिखती हैं कि—

**१—माई म्हाने लागे वृंदावन नीको।
घर घर तुळसी ठाकुर पूजा दरसण गोविंदजी को॥
२—हमरो प्रणाम बाँके बिहारी को।
यह छबि देखि मगन भई मीराँ मोहन गिरिवरधारी को॥
३—निपट बंकट छबि अटके, मेरे नैना०
देखत रूप मदन मोहन को पियत पियूख न भटके॥**

जब मीराबाई वृंदावन गई थीं तब वहाँ के जिन प्रसिद्ध मंदिरों में वे दर्शनार्थ गईं, वहीं की मूर्तियों पर उन्होंने कुछ पद बनाए थे, जिनमें तीन प्राप्त हैं। उन तीनों के उद्धरण ऊपर दे दिए गए हैं और उनमें श्रीगोविंद-देवजी, श्री बांकेबिहारीजी और श्री मदनमोहनजी का उल्लेख है। अब इन मूर्तियों के प्रतिष्ठापन का समय यदि निश्चित हो सके तो कम से कम यह अवश्य निश्चित रूप से ज्ञात हो जायगा कि मीराबाई कब वृंदावन गई थीं। क्योंकि उस हालत में यह स्पष्ट ही है कि वह उन मूर्तियों के प्रतिष्ठापन के पीछे ही वृंदावन गई होंगी।

श्रीकृष्णजी के प्रपौत्र राजा वज्रनाभ ने अपने प्रपितामह की अष्टमूर्ति स्थापित की थीं, जिनके नाम हरदेवजी, बल्देवजी, केशवदेवजी, गोविंद-देवजी, श्रीनाथजी, गोपीनाथजी, साक्षीगोपाल और मदनगोपालजी हैं। इनमें मदनगोपालजी बाद को मदनमोहनजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हीं मूर्तियों में से दो का मीराबाई ने उल्लेख किया है और उन्हीं के विषय में अब लिखा जाता है।

पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध की प्रसिद्ध इमारतों, मंदिरों तथा शिलालेखादि पर एक वृहत् ग्रंथ गवर्नमेंट की ओर से सन् १८९१ ई० में

प्राप्ति की आशा छोड़ कर नरसिंह मेहता को संदेशा भेजा गया। यह ईश-भरोसे कुछ साधु महात्मा तथा पूजनादि का सामान लिए पहुँचे। सभी उपहास कर रहे थे और कुँवर बाई भी यह हाल देख कर रो दी पर अंत में नरसी की प्रार्थना पर भगवान स्वयं लक्ष्मीजी के साथ सेठ सेठानी के रूप में आ पहुँचे और सब सामान भी आ गया। नरसीजी ने बड़े समारोह से सब कार्य निपटाया।

यह समदृष्टि थे। ढेड जाति अंत्यज है पर उनके आमंत्रण पर इन्होंने उनके स्थान पर जाकर रात्रि भर भजन कीर्तन किया था। जातिवालों ने इन्हें पंक्ति में बैठाना बंद कर दिया। यह स्वप्न में आज्ञा पाकर एक दिन बिना निमंत्रण के भोजन के समय पहुँचे तब जातिवालों ने इन्हें रोका पर इतने में वे देखते हैं कि उनकी पंक्ति में ही दो दो नागरों के बीच एक एक ढेड बैठा हुआ है। इस पर डर कर सबने इन्हें पंक्ति में बैठाया और उसी समय सब ढेड लुप्त हो गए। यह देख कर सभी उपस्थित ब्राह्मण अत्यंत लज्जित हुए।

इनके संबंध में अनेक चमत्कार सुने जाते हैं, जिनमें साँवलिया शाह (श्रीकृष्ण) की हुंडी सकारना, श्यामलदास तथा कुँवरबाई का विवाह करना आदि है। नरसी मेहता के प्रायः दो सौ वर्ष बाद गुजराती के प्रसिद्ध कवि प्रेमानंद भट्ट ने इन सब आख्यानों को लेकर कविता की है, जो गुजरात में घर घर गाया जाता है। नरसी मेहता ने बहुत सी कविता की है। इनका समय प्रायः सं० १४७२ से सन् १५३८ ई० तक निर्धारित हुआ है।

इन्हीं नरसी मेहता की पुत्री कुँवरबाई के सीमंत पर मीराबाई ने 'नरसी का मायरा' नाम से कविता लिखी है, जिससे यह उनकी परवर्ती कवियित्री ज्ञात होती हैं पर नरसी के एक पद में मीरा का उल्लेख है, इस-लिए कुछ समय के लिए यह उनकी समकालीन अवश्य थीं। पद[1] इस प्रकार है, जिसका टेक तथा दो चरण यहाँ दिया जाता है—

तूँ तारा विरद सांहांमू जोजे शामळा, न जोइश करणी हमारी रे।
लाखाग्रेह माँ जेम पवडां उगार्या, ब्रह्मांड ज्वाला कापी रे।
अर्ध वचने गज गणिका तारी, जयदेव ने पद्मिनी आपी रे॥
मीरांवाईना विप अमृत कीधां, विदुरनी अरोग्या भाजी रे।
सवरी ना जेम बोरज मार्यां, तेनी प्रीते थया राजी रे॥

---

१. गीता प्रेस से प्रकाशित 'भक्त नरसिंह मेहता' पृ० १५४-५।

अनेक भक्त आगे उगार्या, सहाय थया मोरारी रे।
नरसैंया चा स्वामी लक्ष्मीवर, मोटी ओथ तमारी रे॥

भक्तमाल छप्पय १०८ तथा टीका के २७ कवियों में नरसीजी का वृत्त दिया गया है जिसमें नरसी की दो पुत्री कुँवरसेना तथा रतनसेना नाम दिया है। पहिली का विवाह हुआ था, जो प्रभु-लीला देख कर भक्त हो गई। दूसरी पुत्री ने विवाह ही नहीं किया। साँवलिया शाह की हुंडी तथा पुत्र श्यामलदास के विवाह का विस्तृत विवरण दिया गया है। ध्रुवदासजी ने भी इनका उल्लेख अपनी भक्त नामावली में किया है।

मीराबाई द्वारा दर्शन की गई वृंदावन की मूर्तियाँ

मीराबाई लिखती हैं कि—

१—माई म्हाने लागे वृंदावन नीको।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसण गोविंदजी को॥

२—हमरो प्रणाम बाँके बिहारी को।
यह छबि देखि मगन भई मीराँ मोहन गिरिवरधारी को॥

३—निपट बंकट छबि अटके, मेरे नैना०
देखत रूप मदन मोहन को पियत पियूख न भटके॥

जब मीराबाई वृंदावन गई थीं तब वहाँ के जिन प्रसिद्ध मंदिरों में वे दर्शनार्थ गईं, वहीं की मूर्तियों पर उन्होंने कुछ पद बनाए थे, जिनमें तीन प्राप्त हैं। उन तीनों के उद्धरण ऊपर दे दिए गए हैं और उनमें श्रीगोविंद-देवजी, श्री बांकेबिहारीजी और श्री मदनमोहनजी का उल्लेख है। अब इन मूर्तियों के प्रतिष्ठापन का समय यदि निश्चित हो सके तो कम से कम यह अवश्य निश्चित रूप से ज्ञात हो जायगा कि मीराबाई कब वृंदावन गई थीं। क्योंकि उस हालत में यह स्पष्ट ही है कि वह उन मूर्तियों के प्रतिष्ठापन के पीछे ही वृंदावन गई होंगी।

श्रीकृष्णजी के प्रपौत्र राजा वज्रनाभ ने अपने प्रपितामह की अष्टमूर्ति स्थापित की थीं, जिनके नाम हरदेवजी, बल्देवजी, केशवदेवजी, गोविंद-देवजी, श्रीनाथजी, गोपीनाथजी, साक्षीगोपाल और मदनगोपालजी हैं। इनमें मदनगोपालजी बाद को मदनमोहनजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हीं मूर्तियों में से दो का मीराबाई ने उल्लेख किया है और उन्हीं के विषय में अब लिखा जाता है।

पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध की प्रसिद्ध इमारतों, मंदिरों तथा शिलालेखादि पर एक वृहत् ग्रंथ गवर्नमेंट की ओर से सन् १८९१ ई० में

डा० फूहरेर के संपादन में निकला था। उसमें लिखा है कि 'इस (वृंदावन) की सीमा के भीतर प्रायः एक सहस्र मंदिर हैं। चार प्राचीनतम मंदिर—गोविंददेव, गोपीनाथ, जुगलकिशोर और मदनमोहन के अकबर के समय में बने हैं।' इन चारों मंदिरों का स्थापत्य की दृष्टि से उक्त ग्रंथ में पूरा विवरण दिया गया है और प्रथम की अच्छी प्रशंसा की गई है।

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जब बंगाल में अवतीर्ण हुए और स्वमत-प्रवर्तन किया तब श्री वृंदावन के लुप्त तीर्थों का उद्धार करने के लिए वह वहाँ स्वयं आये थे। साथ ही उनकी आज्ञा से रूप, सनातन, रघुनाथदास आदि छ गोस्वामीगण क्रमशः यहीं आकर इसी कार्य को संपन्न करने तथा हरिकीर्तन का प्रचार करने में सदा दत्तचित्त रहे। यहीं रहते हुए श्री रूप गोस्वामी को योगपीठ अर्थात् गोमाटीला पर श्रीगोविंददेवजी की मूर्ति सं० १५९१ के लगभग मिली। श्री रूप गोस्वामी का समय प्रायः १५६५–१६११ तक है। पहिले इन्होंने एक मंदिर बनाकर इस मूर्ति को उसमें स्थापित किया और उत्कल-नरेश प्रतापरुद्र के पुत्र राजा पुरुषोत्तम द्वारा भेजी गई श्रीराधाजी की मूर्ति इन्हीं के समय में श्रीगोविंददेवजी के बगल में स्थापित की गई। इस मंदिर के जीर्ण होनेपर सं० १६४५ में अकबर की आज्ञा से जयपुराधीश राजा मानसिंह ने वह विशाल मंदिर बनवाया, जो अब तक मौजूद है। औरंगजेब के उपद्रव के समय राजा जयसिंह ने यह मूर्ति जयपुर ले जाकर उसे राजमहल में पधराया था।

श्री सनातन गोस्वामी श्री रूपजी के बड़े भाई थे। ये दोनों एक साथ ही रहकर वृंदावन में धर्म प्रचार करते रहे। इन्हीं को सं० १५९० में आदित्य टीला पर श्रीमदनगोपालजी की मूर्ति मिली जिसका माघ मास द्वितीया को प्रतिष्ठापन किया गया। उक्त राजा पुरुषोत्तम ने श्री राधिकाजी की दो मूर्तियाँ भेजीं, जिन्हें श्रीराधा तथा श्री ललिता के भाव से श्री मदनगोपालजी के दोनों ओर स्थापित किया गया। तब से इनका नाम श्री मदनमोहनजी हो गया। इस मंदिर के निर्माण का समय नहीं दिया है। बा० राधाकृष्णदासजी लिखते हैं कि एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि गुणानंद ने यह मंदिर बनवाया था। परंतु यह ठीक नहीं है, गुणानंद का बनवाया मंदिर ठीक मदनमोहनजीके बगल में है। मदनमोहनजी के मंदिर को मुलतान-निवासी लाला रामदास कपूर ने सनातनजी के समय ही में निर्माण कराकर कुछ ग्राम पूजा आदि के लिए चढ़ा दिए थे। इस मंदिर के एक शिलालेख में कन्नौज के एक धनी की सं० १६८४ की सफल यात्रा का उल्लेख है। इस प्रकार यह मंदिर इस संवत् के पहिले का अवश्य है। वास्तव में सनातनजी

के समय ही में यह मंदिर बन गया था। यह मूर्ति इस समय करौली-राज्य में है।

श्री बाँकेबिहारीजी का मंदिर श्रीस्वामी हरिदासजी का स्थापित किया हुआ है। इनका जन्म भाद्रपद कृष्ण ८ सं० १४४१ को हुआ था। यह पच्चीस वर्ष की अवस्था में गृहत्यागी होकर वृंदावन जाकर रहने लगे और वहीं अपने मामा विट्ठलविपुलजी के शिष्य हुए। निधुवन में इन्हीं को श्री बाँकेबिहारीजी की मूर्ति मिली, जिनका बृहत मंदिर अब तक वृंदावन में है और उन्हीं के वंशधर अबतक इसके अधिकारी हैं। हरिदासजी का निधन सं० १५३७ में होना कहा जाता है, पर इसमें कुछ भ्रम मालूम होता है।

उक्त तीनों मंदिरों के विषय में लिख चुकने के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि मीराबाई के वृंदावन आने का समय सं० १५९१ के बाद ही हो सकता है।

उल्लिखित भक्तों का परिचय

मीराबाई ने अपने भजनों में जिन भक्तों का उल्लेख किया है वे उनके पूर्वकालीन या अधिक से अधिक समकालीन हो सकते हैं; बाद के नहीं। इन संतों के कुल बारह नाम आए हैं—जिनमें से पाँच श्रीरामानंदजी के बारह शिष्यों में से हैं। रामानंदजी का समय निश्चित नहीं है पर यह पंद्रहवीं शताब्दि में हुए थे। इनका प्रवर्तित संप्रदाय रामानंदी कहलाता है और इसमें श्रीसीताराम तथा हनुमानजी की पूजा होती है। इन्होंने भारत भ्रमण कर काशी अयोध्या आदि स्थानों में अनेक मठ स्थापित किए हैं। इन्होंने हिंदी में भी कुछ पद कहे हैं। अब इनके भक्तों का संक्षिप्त परिचय, जिनका मीराबाई ने उल्लेख किया है, अलग-अलग दिया जाता है।

१—सेन नाई—यह रीवाँ के निवासी थे। यह उक्त राजवंश में नापित का कार्य करते थे। यह श्रीज्ञानेश्वरजी के शिष्य कहे जाते हैं, जिनका समय सं० १३३२–१३५३ है। एक बार साधु सेवा के कारण इन्हें देर हो गई, जिससे भगवत् प्रेरणा से इनका कार्य आप ही आप राजा के यहाँ हो गया। राजा यह भेद जानकर इनका शिष्य हो गया। यह भी कहा जाता है कि राजा को एक दिन इनके दर्पण में तथा जलपात्र में श्रीविट्ठल भगवान के दर्शन हुए थे। इनकी कविता ग्रंथ साहब में संगृहीत है। इनका समय चौदहवीं शताब्दि का उत्तरार्द्ध माना जाता है। भक्तमाल छप्पय ६३ कवित्त ३७१–२ में इनका वृत्त दिया गया है।

२—पीपाजी—यह गागरौनगढ़ के खीची राजपूत थे। यह अपनी

द्वितीया पत्नी सीता के साथ श्रीरामानंदजी के शिष्य हो गए और राजपाट छोड़कर विरक्त हो स्वामीजी के साथ द्वारिका गए। समुद्र में डूबी हुई असली द्वारिका को देखने के लिए निर्भयचित्त हो पीपाजी समुद्र में कूद पड़े और कहते हैं कि उसका दर्शन कर वहाँ से शंख चक्रांकित मुद्रा लाए थे। वहाँ से लौटती समय पठान दस्युओं ने सीता-हरण करना चाहा पर दैवी कृपा से उनकी रक्षा हुई। यह प्रसिद्ध कवि हुए। इनका औदार्य, सीता का पातिव्रत्य तथा दोनों की साधु सेवा आदरणीय थी। भक्तमाल तथा उसकी टीका में इनके अनेक चमत्कार वर्णित हैं। देखिए छप्पय ६१ तथा कवित्त ३४३–६६ तक।

पीपाजी गागरौनगढ़ के राजवंश में से थे, जिनके बड़े भाई राजा अचलदासजी खीची को राणा मोकलजी की पुत्री अर्थात् राणा कुंभा की बहिन लालाँ दे ब्याही हुई थीं। राणा मोकल पाँच वर्ष की अवस्था में सं० १४५४ में मेवाड़ की गद्दी पर बैठे थे। इनकी पुत्री जो प्रथम संतान भी हों तो वह विवाह के योग्य सं० १४९० से पहिले नहीं हो सकतीं। इस प्रकार अचलदासजी का जन्म समय, जिनकी यह प्रथम रानी थीं, सं० १४७० के लगभग आता है और इनके छोटे भाई पीपाजी का सं० १४७५ के लगभग रहा होगा। इस प्रकार पीपाजी का समय सं० १४७५-१५२० के या दस पाँच वर्ष आस पास तक मान लिया जा सकता है। जे० एन० फार्कुहर ने स्वकृत 'एन आउटलाईन ऑव द रिलिजस लिटरेचर' पृ० ३२३ पर इनका जन्मकाल सन् १४२५ ई० (सं० १४८२) लिखा है।

राणा मोकल को सात पुत्र तथा उक्त एक पुत्री हुई थीं। राणा कुंभा का जन्म सं० १४७५ के लगभग हुआ था और सं० १५२५ में वह अपने पुत्र ही के हाथ ५० वर्ष की अवस्था में मारे गए। इस प्रकार राणा कुंभा पीपाजी के प्रायः समकालीन थे।

सं० १४९६ के रणपुर के शिलालेख से ज्ञात होता है कि राणा कुंभा ने अन्य चढ़ाइयों के साथ गागरूनगढ़ पर भी अधिकार कर लिया था। ज्ञात होता है कि जब मालवा के होशंगशाह ने गागरून पर चढ़ाई की और अचलदास की सहायता को जाते हुए सं० १४९० में राणा मोकल मारे गए तब उस पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। उसी समय पीपाजी गृहत्यागी होकर स्वामी रामानंदजी के साथ द्वारिकाजी चले गए होंगे। राणा कुंभा ने इन्हीं मुसलमानों से गागरून छीन लिया होगा। राणा साँगा के इतिहास में भी लिखा है कि मालवा प्रांत के सुलतान को

परास्त कर गागरौन विजय कर लिया था। अवश्य ही यह बीच में राणा उदयसिंह प्रथम तथा राणा रायमल के समय पुनः मालवे के अधिकार में चला गया था।

३—धना—यह जाति के जाट थे। इनका जन्म सं० १४७२ में हुआ था और राजपूताने में देवली के निवासी थे। यह भी स्वामीजी के शिष्य होकर एक प्रसिद्ध कवि तथा भक्त हुए। इनके पद भी ग्रंथ साहब में संगृहीत हुए हैं। इनका समय भी पंद्रहवी शताब्दि का उत्तरार्द्ध है। भक्तमाल छप्पय ६२ तथा टीका कवित्त ३३८–७० में इनका विवरण दिया हुआ है।

४—रैदास—काशी निवासी चमार जाति के थे। इनकी भगवद्भक्ति तथा वैष्णवों में मान देखकर कुछ लोगों ने उपद्रव मचाया पर इनकी अलौकिक शक्ति के कारण सब पस्त हो गए। इनके चमत्कारों की कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं। यह सुकवि थे और इनके पद ग्रंथ साहब में संगृहीत हैं। रैदास की बानी, साखी तथा पद मिलते हैं। इन्होंने भी लम्बी अवस्था पाई थी। कहते हैं कि यह १२० वर्ष के होकर मरे थे। इनका भी समय पूरी पंद्रहवी शताब्दि ईसवी है। भक्तमाल (छप्पय ५९) में उल्लेख है और ९ कवित्तों में टीका है। इसमें चित्तौड़ की रानी झाली का उल्लेख हुआ है, जो काशी आकर इनकी शिष्या हुई थीं और उनके निमंत्रण पर यह चित्तौड़ भी गए थे।

५—कबीर—काशी वासी ब्राह्मण के त्याज्य संतान थे, जिन्हें किसी जुलाहे ने पाला था। इनका जन्म सं० १४५५ और मृत्यु सं० १५७७ माना जाता है। यह श्री रामानंद के प्रधान शिष्यों में से थे। इन्होंने कबीरपंथ चलाया जिसके अब भी माननेवाले बहुत से लोग हैं। इन्होंने बहुत सी कविता लिखी है और प्रायः इनकी सभी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। यह हिंदी साहित्य के इतिहास में नवरत्न के कवियों के समकक्ष माने जाते हैं। इनका समय पंद्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दि है। कहा जाता है कि सौ वर्ष से अधिक जीवित रहे। भक्तमाल के छप्पय ६० में उल्लेख है।

६—नामदेवजी—यह जाति के छीपी तथा दक्षिण में पंढरपुर के रहनेवाले थे। इनका जन्म सं० १३२७ में और सं० १४०७ वि० में देहावसान हुआ था। विष्णु स्वामी के संप्रदाय वाले स्वामी ज्ञानदेव के यह समकालीन थे, जो वल्लभाचार्य के पहिले हुए हैं। भगवद्भक्ति इनमें बचपन से थी। इनके विषय में अनेक चमत्कारिक बातें प्रसिद्ध हैं। इनके

उपास्यदेव विट्ठलनाथजी थे तथा गुरु विसोवाखेचर नामक संत कहे जाते हैं। वह सुकवि थे। इनकी कविता भी ग्रंथ साहब में सम्मिलित की गई है। इनकी साखी, पद तथा सोरठ के पद मिले हैं, जिनसे इनकी भक्ति, दैन्य आदि स्पष्टतया परिलक्षित होता है। इनका कविता-काल चौदहवीं शताब्दि का उत्तरार्द्ध है। भक्तमाल छप्पय ४२ में इनका उल्लेख है, जिसपर प्रियादासजी ने सत्रह कवित्तों में टीका की है।

७—वामदेवजी—नामदेवजी के नाना थे। यह अपने समय के प्रसिद्ध भक्तों में से थे। इनका समय चौदहवीं शताब्दि का पूर्वार्द्ध है।

८—सदना—यह सिंध प्रांत के सेहवन का निवासी था। यह जाति का कसाई था पर जीवहिंसा से दूर रहता था। यह अन्य कसाइयों के यहाँ से माँस लाकर बेंचता था। यह शालिग्राम बटी से माँस तौलता था। यह नामदेव के समकालीन थे। यह जगन्नाथजी जाकर वहीं रह गए। भक्तमाल छप्पय ९६ तथा टीका के चार कवित्तों में विवरण है। इन्होंने भी हरिभक्ति के बहुत से पद बनाए हैं।

९. करमाबाई—नाभाजी लिखते हैं कि 'छप्पन भोग तें पहिले खीच करमा को भावै।" इनकी भगवान के प्रति वात्सल्य भक्ति थी और श्री जगन्नाथपुरी में रहती थीं। यह बहुत ही तड़के बिना स्नान आदि के खिचड़ी बनाकर भगवान को भोग लगा देतीं, क्योंकि बालकों को सो कर उठते ही भूख लगती है। एक दिन एक महात्मा ने यह देखकर उसे आचार-विचार का उपदेश दिया। उसने वैसा ही किया पर विलंब हो गया और भगवान बिना मुख धोए ही रह गए, जिसे देखकर पंडाजी ने प्रार्थना की तथा सब बातें सुनकर आज्ञानुसार उन्हीं महात्मा से कहा कि जाकर करमाबाई को समझा दें कि जैसे नित्य करती थीं वैसा ही करें। अब तक जगन्नाथजी में करमाबाई की खिचड़ी सबसे प्रथम भोग में रखी जाती है। करमाबाई की छाप से पद भी मिलते हैं।

१०—बलख बुखारा के एक सुलतान के विषय में इतना लिखा मिलता है कि वह श्रीकृष्ण के भक्त हो गए थे पर स्पष्ट रूप से कहीं पता नहीं चलता। यह सेना में मरे हुए ऊँट को देखकर संसार से विरक्त होकर भक्ति में मग्न हो गए थे। इनका उपनाम वाजिद था और इन्होंने बहुत से स्फुट पद कहे हैं।

मीराबाई की रचना के कुछ अंश

मीराबाई के जिन पदों या पदांशों से उनके जीवन-वृत्त पर कुछ भी प्रकाश पड़ता है वे पद या पदांश नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

पिय बिन सूनो छे जी म्हारोँ देस ।
अवधि वदी ती अजूँ न आए पंडर हो गया केस ॥
..............................तजि दियो नगर नरेस ॥१॥
झूठा सब आभूषणा रे साँची पियाजी री प्रीति ।
वर हीणो अपणो भलो है कोढ़ी कुष्टी कोइ ॥२॥
राणाजी भेज्या विष का प्याला सो इमरित कर दीज्योजी ॥३॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर विख से अमृत करे ॥४॥
गहणा गाँठी राणा हम सब त्यागा, त्यागा कर रो चूड़ो ।
काजल टीकी हम सब त्याग्यो, त्यागो छै बाँधन जूड़ो ॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर वर पायौ छे पूरो ॥५॥
सीसोद्यो[1] रूठ्यो तो म्हारो काँई कर लेसी ॥६॥
राणोजी थे क्यानें राखो म्हासूँ बैर ॥७॥
राणो भेज्या जहर पियाला इमिरत करि पो जाणा ।
डबिया में भेज्या ज भुजंगम सालिगराम करि जाणा ॥८॥
जहर प्याला राणो दिया पीवै मीराँबाई ॥९॥
लोक कहे मीरा हो गई बावरी बाप कहे कुळ नासी रे ।
राणा ने भेज्या जहर का प्याला पीवत मीरा हाँसी रे ॥१०॥
विष का प्याला राणाजी भेज्या दीज्यो मेड़तणी के हाथ ।
कर चरणामृत पी गई म्हारोँ सबल धणी का साथ ।
राणोजी मो पर कोप्यो रे मारूँ एक न सेळ ।
मार्याँ पराछित लागसी म्हाँ ने दीजो पीहर मेल ।
राणो मों पर कोप्यो रे रती न राख्यो मोद ।
ले जाती वैकुंठ में यों तो समझ्यो नहीं सिसोद ॥११॥
राणाजी मैं साँवरे रँग राँची ॥१२॥
जब मैं चली साध के दरसन तब राणो मारण कूँ दौर्यौ ।
जहर देन की घात विचारी निरमल जल में ले विष घोर्यो ।
जब चरणोदक सुण्यो सरवणा राम भरोसे मुख में ठोर्यो ॥१३॥
राणाजी मुझे यह बदनामी लगे मीठी ॥१४॥

---

१. मेवाड़पति रावल रणसिंह के समय इस वंश से एक शाखा राणावत अलग होकर सीसोदे की जागीरदार हुई । अलाउद्दीन खिलजी द्वारा रावलों से चित्तौड़ छीन लिए जाने पर सीसोदे के राणा हमीरसिंह ने उस पर अधिकार कर लिया और तब से मेवाड़ नरेश राणा तथा सिसौदिए कहलाए । (उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० ४४७)

गुरु मिलिया रैदासजी दीन्हीं ज्ञान की गुटकी।
राजकुल की लाज गमाई साधाँ के सँग में भटकी।
नित उठ हरिजी के मंदिर जास्याँ नाच्याँ दे दे चुटकी।
जेठ वहू की काण न मानूँ घूँघट पड़ गइ पटकी ॥१५॥
गोविंद सूँ प्रीत करत तवहिं क्यों न हटकी ॥१६॥
साँप टिपारो राणाजी भेज्यो द्यो मेणतणी गल डार।
हस हँस मीरा कंठ लगायो यो तो म्हारे नौसर हार।
विप को प्यालो राणाजी मेल्यो दयो मेड़तणी ने प्याय।
कर चरणामृत पी गई रे गुण गोविंद रा गाय ॥१७॥
अव मीरा मान लीज्यो म्हारी हाँजी थाँ ने सइयाँ वरजे सारी।
राजा वरजै राणी वरजै वरजै सव परिवारी।
कुँवर पाटवी सोभी वरजै और सहेल्याँ सारी।
घड़ा घराँ का छोरु कहावो नाचो दे दे तारी।
वर पायो हिंदुवाणो रो सूरज अव दिल में कहा धारी ॥१८॥
थाने वरज वरज मैं हारी भाभी मानो वात हमारी।
राणो रोस कियो ता ऊपर साधों में मत जा री।
वड़ा घरा थे जनम लियो छै नाचो दै दै तारी।
वर पायो हिंदवाणो सूरज थे काई मन धारी ॥१९॥
साँप पेटारा राणा भेज्या मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जव देखन लागी सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह वनाय।
न्हाय धोय जव पीवन लागी हो अमर अँचाय ॥२०॥
राणाजी अव न रहूँगी तोरी हटकी।
पीहर मेड़ता छोड़ा अपना सुरत निरत दोउ चटकी ॥२१॥
सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हाँरो कांई कर लेसी ॥२२॥
सती न होस्याँ गिरिधर गास्याँ म्हारो मन मोह्यो घण नामी।
जेठ वहू को नातो न राणाजी हूँ सेवक थे स्वामी।
गिरिधर कंथ गिरिधर धनि म्हाँ रे मात पिता वोई भाई ॥२३॥
सासु लड़े मेरी नणद खिजाये राणा रहा रिसाय।
पहरो भी राख्यो चौकी विठाग्यो ताला दियो जड़ाय ॥२४॥
राणाजी तैं जहर दियो मैं जाँणी।
लोक लाज कुल काण जगत की दइ वहाय जस पाणी।
अपने घर का परदा कर ले मैं अवला वौराणी ॥२५॥

सीसोद्या राणो प्यालो म्हाँने क्यूँ रे पठायो।
कनक कटोरे ले विष घोल्यो दयाराम पंडो लायो।
अठी उठी तो मैं देख्यो कर चरणामृत पायो।
मेड़तियाँ घर जन्म लियो है मीराँ नाम कहायो ॥२६॥
राणाजी म्हाँरी प्रीत पुरबली मैं क्या करूँ?
विष का प्याला पी गई जी भजन करे राठौर।
थाँरी मारी ना मरूँ म्हाँरो राखणहारो और।
पेयाँ वासक भेजिया जी ये है चंदनहार।
नाग गले में पहिरिया म्हाँरो महलो भयो उजार।
राठौड़ाँ की धीयड़ी जी सीसोद्या के साथ ॥२७॥
थे बेटी राठौड़ की थाँने राज दियो भगवान।
लाजै पीहर सासरो माइतणो मोसाल।
सबही लाजै मेड़तिया जी थाँ सूँ बुरा कहे संसार ॥२८॥
ईडरगढ़ का आया ओलंबा।
भाभी मीरा लाजे गढ़ चित्तौड़।
राणोजी लाजे गढ़ रा राजवी ॥२६॥
भाभी मीरा लाजे लाजे थाँरा माय न बाप।
पीहर लाजे जी थाँरो मेड़तो ॥३०॥
राणाजी मैं साँवरे रँगराती।
मेरा पिया मेरे हृदय बसत है यह सुख कह्यो न जाती।
झूठा सुहाग जगत का री सजनी होय होय मिट जासी।
मैं तो एक अविनासी वरूँगी जाहे काल नहिं खासी ॥३१॥
आरंभ—क्षत्री वंस जनम मम जानो, नगर मेड़ते वासी।
नरसी को जस वरनि सुणाऊँ नाना विधि इतिहासी॥
को नरसी सो भयो कौन विध, कहो महिराज-कुँवारी।
ह्वै प्रसन्न मीरा तब भाख्यो सुन सखि मिथुला नामा।
नरसी की विध गाय सुनाऊँ सारे सबही कामा॥
अंत—यो माहरो सुनैरु गुँनिहै, वाजे अधिक वजाय।
मीराँ कहै सत्य करि मानो, भक्ति मुक्ति फल पाय ॥३२॥
(नरसीजी का मायरा)

पेड्या वासक भेजिया ने दीयो मीरा ने हाथ।
हार गलामां नाड्यो ने मेहेल भयो उजास।
विखना प्याला भेजिया रे दो मीरा ने हाथ।

करि चरणामृत पी गयां म्हारा रामतणे विश्वास।
राठोड़ाँ नी दीकरी ने सीसोदा ने साथ ॥३३॥
कुँवरबाई नां जेदी मामेरां पूर्यां तेदी
छाव भरी ने वहेला आवो रे ॥३४॥

मेरो मन हर लीनो राजा रणछोड़
राजा रणछोड़ प्यारा रँगीला रणछोड़।
आसपास रत्नाकर सागर गोमतीजी करे कलोल।
धजा पताका बहुत्यां फरके झालर करत झकझोल।
सब भकत के भाग्य ही प्रकटे नाम धर्यो रणछोड़ ॥३५॥

मंत्र ने जंत्र कछुए न जाणूं वेद पढ्यो न गै काशी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर चरण कमल की हुँ दासी ॥३६॥

राणोजी कागळ मोकले रे दे राणी मीरां ने हाथ।
साधु नी संगत छोड़ी द्यो तम वसो ने अमारे साथ॥
मीराबाई कागल मोकले रे देजो राणाजी ने हाथ।
राजपाट तमे छोड़ी राणाजी वसो साधु ने साथ।
विपनो प्यालो राणे मोकल्यो रे देजो मीरां ने हाथ।
अमृत जाणी मीराँ पी गयां जेने सहाय श्रीविश्वनो नाथ।
साँढवाला साँढ शणगार जेरे जावुं सो सो रे कोश।
राणाजी ना देश मां मारे जलरे पीवानो दोष।
डाबो मेल्यो मेवाड़ रे मीरां गई पश्चिम मांय ॥३७॥

हाँ रे चालो डाकोर मां जई वसिये हां रे
मने लेहे लगाड़ी रंग रसिये रे।
हाँ रे प्रभात ना पहोर मां नोबत वाजे हाँ रे
अमे दरशान करवा जइये रे ॥३८॥

मीराबाई की रचनाओं के उक्त उद्धरणों से उनके इतिवृत्त के विषय में बहुत कम ज्ञात होता है पर जितना ज्ञात होता है वह उनके परिचय के लिए कम नहीं है। लिखती हैं कि वह मेड़ता-निवासी क्षत्रिय वंश के राजकुल में उत्पन्न हुई थीं क्योंकि अपने को मिथुला नाम की सखी से महराज कुँवरि कहलाया है। (उ० नं० ३२) मेड़ता को अपना पीहर कई बार लिखा है तथा यह भी बराबर लिखा है कि ससुराल में वह मेड़तणीजी कहलाती थीं। अपने को 'राठोड़ाँ की धीयड़ी' या 'राठोड़ाँ री दीकरी' कहा है, इसलिए मेड़ता का यह क्षत्रिय-राजकुल राठोड़ था,

यह निश्चय हो गया। ससुराल के विषय में राणाजी, पाटवी राजकुँवर, सिसोद, हिंदुआँरा सूरज, चित्तौड़ तथा मेवाड़ नाम दिए हैं जो शब्द ही मेवाड़ के सिसौदिया राजवंश को स्पष्टतः बतला रहे हैं। इसी वंश के युवराज पाटवी राजकुँअर कहलाते हैं तथा महाराणाजी की मुख्य पदवी हिंदुआँरा सूर्य है। यह वंश सीसोद या सिसोदिया कहलाता है। इस प्रकार इनके पीहर तथा ससुराल के राजवंशों का निश्चय हो जाता है।

यह अत्यंत पतिव्रता थीं (उद्ध० नं० २) तथा शीघ्र ही इनका 'जगत का झूठा सुहाग मिट गया और इस पर इन्होंने 'एक अविनासी को बरा, जिसे काल नहीं खाता।' इनकी एक ननद ऊदाबाई तथा एक सखी मिथुला का नाम भी आया है। ऊदाबाई कहती हैं कि 'ईडरगढ़ का आया ओलंबा' (उ० नं० २९)। इस ईडर के राजा रायमल[1] से राणा साँगा की पुत्री अर्थात् मीराबाई की ननद का विवाह हुआ था। इस संबंध से वहाँ से उपालंभ आया होगा, जिसका उल्लेख उक्त पद में किया गया है। एक पद में कहा है कि 'राणाजी, रानी, राजपरिवार, पाटवी कुँअर, सहेली आदि सभी मना करती हैं कि बड़े घर की लड़की होकर तथा हिंदुवाणो सूरज वर पाकर भी ताली दे देकर नाचती गाती हो।' यह उनके सौभाग्यवती रहने के समय का पद है। सभी उन्हें महाराज कुँवरि तथा राजपुत्र-वधू होने के कारण राजमर्यादा का उल्लंघन न करने को कहते हैं और यह कथन मीराबाई ने अपनी ननद ऊदाबाई द्वारा अपने प्रति कहलाया है। उ० नं० १० में कहा है कि 'और लोग उसे बावली कहते हैं तथा उसके बाप उसे कुलबोरन कहते हैं'। इससे ज्ञात होता है कि इनके सौभाग्यकाल के बीतने पर ही जहर आदि देने का प्रयास हुआ था, पहले नहीं।

ऐसा कहा जाता है कि पति की मृत्यु पर मीरा से सती होने के लिए कहा गया था पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। श्वसुर को संबोधन कर कहती हैं कि 'मैं सती न हूँगी, गिरिधर का गुण गाया करूँगी क्योंकि वही

---

१. ईडर के राजा सूरजमल की मृत्यु पर उसका भाई भीम गद्दी पर बैठा क्योंकि सूरजमल का पुत्र रायमल्ल अल्पवयस्क था और यह निश्चय हुआ था कि भीम की मृत्यु पर यही गद्दी का मालिक होगा। परंतु भीम के मरने पर उसका पुत्र भारमल्ल गद्दी पर बैठ गया तब राणा साँगा की सहायता से रायमल ने उसे हटाकर गद्दी पर अधिकार कर लिया। भारमल्ल गुजरात की मुसलमानी सेना के साथ ईडर आया और उसे छीन लिया। इस पर राणा साँगा ने चढ़ाई कर पुनः ईडर ले लिया और अहमदनगर विजय कर तथा कई स्थान लूटकर लौट आए।

मेरे पति, माता, पिता, भाई सब कुछ हैं और आपसे अब ज्येष्ठ पुत्र-वधू का संबंध ही कहाँ रह गया, अब मैं सेवक मात्र रह गई हूँ।' (उ० सं० २३) वास्तव में इनके भजन कीर्तन तथा साधु-सत्संग से इनके ससुराल-वाले इनसे रुष्ट थे ही और पति की मृत्यु हो जाने पर साधारणतः प्रचलित नियमानुसार यह कुलक्षणी मान ली ही गई होंगी, ऐसी अवस्था में इनसे त्राण पाने का ऐसा सुअवसर कैसे छोड़ा जाता! सती की प्रथा प्रचलित ही थी, इसलिए इन्हें सती होने की सम्मति दी गई पर जो भक्त मोक्ष की भी इच्छा नहीं रखते वह स्वतः जीवन समाप्त कर भजन कीर्तन के लाभ से अपने को कैसे वंचित करते। यही मीराबाई ने भी किया।

कई उद्धरणों में राणाजी को संबोधन करके कहा है कि मुझसे बैर क्यों रखते हो, मैं तो गोविंद गिरिधर के प्रेम में मस्त रहती हूँ, मैंने तो गहना पहिरना, काजल टीका लगाना, जूड़ा बाँधना, चूड़ी तक पहिरना छोड़ दिया है, जो सौभाग्य के लक्षण हैं और ऐसा इसलिए किया कि अब 'पूरो बर गिरिधर नागर पायो छै।' इससे मीराबाई की हार्दिक व्यथा प्रकट होती है कि जब उसने सभी सांसारिक सुख वैभव छोड़ दिए तब क्यों राणा उससे वैमनस्य रखता है। इसके अनंतर ताला में बंद करना, चरणोदक कहकर जहर का प्याला तथा शालिग्राम कहकर विषधर सर्प भेजना आदि मीरा को मारने का प्रयास किया गया। जब वह इस सबसे बच गईं तब शस्त्र से मारना अनुचित समझ कर मीरा को मायके भेज देना निश्चय किया गया। तभी मर्माहत होकर इन्होंने कहा है कि 'राणाजी ना देश माँ म्हारे जल रे पीवानो दोष'। इस पर यह मेवाड़ से निकल कर मायके चली गईं।

मेड़ते से मीराबाई द्वारिकाजी गईं। वहाँ उन्होंने रणछोड़जी के मंदिर में भजन-कीर्तन करते हुए जीवन बिता दिया। आस-पास के समुद्र का, गोमती तीर्थ का तथा मंदिर का वर्णन किया है। डाकोरजी में भी कुछ दिन निवास किया था, इसका भी उल्लेख किया है।

जयमल

भक्तमाल (छप्पय ११७) में जयमलजी के विषय में लिखा है कि इन्होंने मेड़ता में भक्तों का बहुत पोषण किया था। टीका के दो कवित्तों में लिखा गया है कि यह मेड़ता के राजा थे और किस प्रकार यह मानसी पूजन करने में समर्थ हुए थे तथा इनकी स्त्री को भगवान के दर्शन हुए थे। छप्पय ५२ में लिखा है—"सैनन के जुधि माँहि अश्व चढ़ि आपुन मार।" इसकी टीका है कि मेड़ता के राजा पर किसी भाई बंद ने उस

समय चढ़ाई की जब यह ठाकुरजी के पूजन में लगे थे। समाचार मिलने पर भी यह पूजा अधूरी छोड़ नहीं उठे और कहा श्री हरि अच्छा ही करेंगे। यह देख श्री भगवान ने स्वयं वीर वेश धारण कर इन्हीं के घोड़े पर सवार होकर कुल शत्रु सेना समाप्त कर दी। इन्हें यह वार्ता एक घायल शत्रु से ज्ञात हुई जब वह उपासना के बाद युद्धस्थल में गए। छप्पय १५५ में जयमल राठौड़ के भाई जसवंतसिंह का उल्लेख है जिन्होंने 'जसवंत भक्ति जयमाल की रूषा राखी राठवड़।'

इ. दंतकथाएँ

मीराबाई तथा गो० तुलसीदास का पत्र-व्यवहार

यह दंत-कथा प्रसिद्ध है कि मीराबाई ने सत्संग तथा हरिकीर्तन के कारण अपने ससुराल में राणा विक्रमाजीत के समय विशेष कष्ट पाया था और इससे संतप्त होकर उन्होंने गोस्वामी तुलसीदासजी को एक पत्र लिख-कर अपना कर्तव्य उनसे पूछा था। बा० वेणीमाधवदास कृत मूल गोसांई-चरित में इस विषय में इस प्रकार लिखा है—

तब आयो मेवाड़ ते विप्र नाम सुखपाल।
मीराबाई पत्रिका लायो प्रेम प्रवाल॥
पढ़ि पाती उत्तर लिखे गीत कवित्त बनाय।
सब तजि हरि भजिबो भलो कही दिय विप्र पठाय॥

समय निश्चित करने के लिए इसके पहिले का कुछ अंश नीचे दिया जाता है—

सोरह सै सोरह लगे कामद गिरि ढिग वास।
सुचि एकांत प्रदेश महँ आए सूर सुदास॥

लिखते हैं कि इन सूरदास को गोकुलनाथजी ने कृष्ण-प्रीति देकर भेजा था पर गोसांईजी ने ज़रा नजर फेरकर चित्त की चातुरी छीन ली। सूर ने अपना सागर दिखलाया, दो पद गाकर सुनाए, गोसाईं के चरण-कमल पर सूरसागर रखकर तथा सिर नाय के कहा कि ऐसी आशीष दीजिए कि श्याम हम पर कृपा करें और हमारी यह कीर्ति चारों ओर फैले। यह सुन गोसांई ने 'सुदाद' दिया और पुस्तक पैर पर से उठाकर हृदय में लगाया। सात दिन सत्संग करने के अनंतर जाते समय सूर ने फिर गोसाईंजी का चरण-कमल पकड़ा तब उन्होंने हाथ पकड़ कर इनका प्रबोधन किया तथा गोकुलनाथ को पत्र देकर 'सूर कवि' को बिदा किया। इसीके बाद सुखपालजी मेवाड़ से आए।

मीराबाई की पत्रिका इस प्रकार कही जाती है—

'श्री तुलसी सुख-निधान दुखहरन गुसाईं।
बारहिं बार प्रनाम करूँ हरो सोक-समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई॥
बालपने ते मीरा कीन्हीं गिरिधरलाल मिताई।
सो तौ अब छूटै नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात-पिता के सम हौ हरि-भगतन सुखदाई।
हम कूँ कहा उचित करिबो है सो लिखियो समुझाई॥'[1]

इसके उत्तर में गोसांईजी ने यह पद लिख भेजा—

'जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषन बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितन भे सब मंगलकारी॥
नातो नेह राम सों मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँख जो फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रान तें प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद एतो मतो हमारो॥'[2]

वेणीमाधवदास के वर्णन का ऐतिहासिक अंश इस प्रकार हुआ कि सं० १६१६ वि० के लगते ही संडीले से आकर कामदगिरि के पास एकांत प्रदेश में गोस्वामी तुलसीदासजी ठहरे। चित्रकूट पर्वत ही कामदगिरि कहलाता है। यहीं श्रीसूरदासजी गोस्वामीजीसे मिलने के लिए गोस्वामी गोकुलनाथजी द्वारा प्रेरित होकर आए। पर दोनों महात्मा की जो बातचीत तथा व्यवहार वेणीमाधवदास ने दिखलाया है उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि

---

१. यह पत्र रीवानरेश रघुराजसिंह कृत भक्तमाल में उद्धृत है।

२. रीवा नरेश रघुराजसिंह ने स्वरचित भक्तमाल में निम्नलिखित सवैया भी इस पद के बाद दिया है और तुलसीदासजी के पत्र का अंश बतलाया है—

सो जननी सो पिता सोइ भाई सो भामिनि सो सुत सो हित मेरो।
सोइ सगो सो सखा सुत सेवक गुरु सो सुरसाहब चेरो॥
सो तुलसी प्रिय प्राण समान कहाँ लौं बनाय कहौं बहुतेरो।
जो तजि देह को गेह को नेह, सनेह सों राम को होय सबेरो॥

गोसांईजी बहुत बड़े सिद्ध हैं, जिनके पैर पर सूरसागर रख कर सूरदास भक्ति तथा कीर्ति की भिक्षा माँग रहे हैं और सिद्धजी प्रदान कर रहे हैं। यह विनय-शील तुलसीदासजी का माहात्म्य बढ़ाने का अत्यंत ओछा प्रयास है या इस कथा में कोई सार नहीं है। सूरदासजी की जीवनी देखने से ज्ञात होता है कि उनका जन्मकाल सं० १५४० के लगभग निश्चित है। यह श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्य्यजीके शिष्य थे और इनका शरीरपात सं० १६२० के लगभग हुआ था। गोसाईं-चरित के लेखक के अनुसार गोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म सं० १५५४ में हुआ था और इन्होंने रामचरित-मानस का आरंभ सतहत्तर वर्ष की अवस्था में सं० १६३१ में किया था। अब विचार कीजिए कि ६२ वर्ष के तुलसीदासजी, जिन्होंने तबतक कुछ चमत्कार दिखलाने के सिवा रचनाओं के नाते प्रायः कुछ भी नहीं लिखा था, ७६ वर्ष के विख्यात भक्त सूरदासजी का तथा उनके प्रसिद्ध सूरसागर का इस प्रकार ओछेपन से सत्कार करेंगे, जिनकी विनम्रता तथा विनय की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं।

श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्यजी का जन्म सं० १५३५ में और निधन सं० १५८७ में हुआ था। इनके पुत्र गोस्वामी विठ्ठलनाथजी का जन्म सं० १५७२ में और निधन सं० १६४२ में हुआ था। इनके सात पुत्र हुए, जिनमें चतुर्थ गोकुलनाथजी का जन्म सं० १६०८ में और देहावसान सं० १६९० में हुआ था। सं० १६१६ में श्री विठ्ठलनाथजी गद्दी पर आप ही विद्यमान थे और अपने पिता के समय के चार तथा अपने समय के चार उत्कृष्ट भक्त-कवियों को चुनकर अष्टछाप नियत कर चुके थे। अब यदि सूरदासजी का तुलसीदासजी से मिलने के लिए चित्रकूट जाना मान भी लिया जाय तो उनका गोस्वामी विठ्ठलनाथजी द्वारा प्रेरित होकर जाना माना जायगा न कि उनके अष्टवर्षीय पुत्र द्वारा। इनसे तीन भाई और भी बड़े थे और सभी एक से एक बढ़कर विद्वान तथा एक एक गद्दी के स्वामी हुए थे। साथ ही छिहत्तर वर्ष के वृद्ध सूरदासजी का आँखों के अभाव में वृंदावन से चित्रकूट जाना संभव नहीं है और वह भी तुलसीदासजी से केवल मिलने, जो स्वयं कुछ ही मास पहिले वृंदावन घूमते फिरते जाकर कई महीने तक वहाँ रह चुके थे। सूरदासजी की जीवनी से यह भी ज्ञात नहीं होता है कि वह वृंदावन छोड़कर कभी चित्रकूट आदि स्थानों को गए थे। वे रमते राम नहीं थे प्रत्युत् अपने इष्ट के मंदिर में नित्य कीर्तन करनेवाले भक्त थे। यदि यह कहीं जाते भी तो गोस्वामी विठ्ठलनाथजी के साथ ही जाते थे। यह दंतकथा किसी अंध भक्त की

निर्मित हो सकती है पर किसी का आँखों देखा विवरण कभी हो नहीं सकता।

अब मीराबाई के पत्र व्यवहार को लीजिए। मीराबाई का विवाह प्राचीन अनिश्चित मत से राणा कुंभकर्ण के साथ और नवीन निश्चित मत से राणा साँगा के पुत्र कुँअर भोजराज के साथ हुआ था। राणा कुंभकर्ण सं० १५२५ वि० में पैंतीस वर्ष राज्य कर अपने पुत्र उदयसिंह द्वारा मारे गये थे। मृत्यु के समय इनकी अवस्था पचास वर्ष के लगभग थी और इस प्रकार यदि मीराबाई राणा कुंभ की स्त्री रही हों तो यह पत्र व्यवहार एकदम असंभव ही है। अब दूसरा मत लिया जाय। राणा सांगा का जन्म सं० १५३९ में हुआ, सं० १५६६ में वह गद्दी पर बैठे और सं० १५८४ में उनकी मृत्यु हुई। इनके प्रथम पुत्र पाटवीकुमार भोजराज इनकी मृत्यु के कई वर्ष पहिले ही स्वर्ग सिधारे थे अर्थात् मीराबाई सं० १५७५ वि० के लगभग विधवा हो चुकी थीं। राणा सांगा तथा उनके पुत्र राणा रत्नसिंह के समय तक, जो सं० १५८८ वि० में मारे गए थे, इन्हें कोई कष्ट नहीं था पर इसके बाद जब विक्रमाजीत गद्दी पर बैठा तब इन्हें उसने बहुत कष्ट दिया था। विक्रमाजीत सं० १५९३ में मारा गया। अब इन्हीं दो संवतों के बीच मीराबाई का तुलसीदासजी को पत्र लिखना उचित ज्ञात होता है। अन्य आधारों पर भी यह निश्चित हो चुका है कि इसी बीच यह मेड़ते गईं और वहाँ से भी सं० १६०० वि० के पहिले ही विदा होकर वृंदावन पहुँच गई थीं। इसके अनंतर वह यहाँ से द्वारिका चली गईं जहाँ अंत तक रहीं। इनकी मृत्यु भी स० १६०३ के लगभग हो चुकी थी। इस प्रकार यह कथानक कि वि० सं० १६१६ में चालीस पैंतालीस वर्ष तक वैधव्य भोगने के अनंतर प्रायः साठ वर्ष की अवस्था में और स्यात् मृत्यु के बाद यह पत्र सुखपाल पंडित द्वारा मेवाड़ से, द्वारिका से नहीं, भेजा गया था, अनर्गल बकवादमात्र है। महाराणा उदयसिंह द्वारा, जो सं० १५९५ में चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे थे, मीराबाई को द्वारिकाजी से पुनः लौटाने का विशेष प्रयास हुआ था तब इनके समय उनका गृहत्याग कैसे संभव हो सकता था। उदयसिंहजी सं० १६२४ में परलोक सिधारे थे। अब यदि यह विचार किया जाय कि सं० १५८८–१५९३ के बीच या दो वर्ष का बनवीर का राज्य-काल भी ले लें तो १५९५ तक यह पत्र व्यवहार हो सकता था। अब तुलसीदासजी की उक्त जीवनी देखिए। उसमें लिखा है कि सं० १५८३ में तुलसीदासजी का विवाह हुआ और पाँच वर्ष गृहस्थ रहने पर सं० १५८९ में 'हम तो

चाखा राम रस पत्नी के उपदेश।' इसके बाद प्रयाग होते अयोध्या में चातुर्मास व्यतीत कर पुरी गए। वहाँ कुछ दिन व्यतीत कर रामेश्वर होते द्वारिकाजी गए। यहाँ से बद्रीनाथजी जाकर चारों धाम की यात्रा पूर्ण की। इसके अनंतर मानसरोवर आदि स्थानों में सत्संग करते 'चौदह बरिस मास दस सतरह दिवस' बिताया। तात्पर्य यह कि सं० १६०४ तक यह गृहजंजाल छोड़ने पर यात्रा तथा हिमालय में भ्रमण करते रहे और इस बीच पत्र-व्यवहार का होना संभव नहीं है। अस्तु, इन कुल विचारों पर ध्यान देते हुए यही निष्कर्ष निकलता है कि मीराबाई तथा गोस्वामीजी का पत्र-व्यवहार भंडकथामात्र है।

एक सज्जन लिखते हैं कि 'जिनके प्रिय न राम वैदेही' पद का विनयपत्रिका में होना इस कथानक को पुष्ट करता है। क्या सुंदर प्रलाप है? इस पद को तुलसीकृत मानने में किसे इनकार है? भगतजी ने स्यात् इस पद को देखकर ही इस कथा की कल्पना कर ली है और इसी प्रकार की विचारशैली वालों ने हाँ में हाँ मिला दिया। बस दंतकथा चल निकली। कृपाकर मीरा के पत्र की भाषा तथा उनके पदों की भाषा को ही मिला देखते तो कुछ समझ पड़ता। विनयपत्रिका का रचनाकाल भी सं० १६३५ के लगभग है और तथा कथित पत्र-व्यवहार के समय के बीस वर्ष बाद की रचना है।

एक बात और विचारणीय है। मीराबाई के इष्टदेव श्रीकृष्ण थे और उनकी उपासना के प्रधान प्रचारकों तथा प्रसिद्ध भक्तों की उनके समय में वृंदावन में कमी न थी तब उन्हें क्या पड़ी थी कि चमत्कार दिखलानेवाले रामभक्त वैरागी के पास पत्र भेजकर उपदेश माँगती, क्योंकि उस समय तक तुलसीदासजी मानसकार नहीं हो चुके थे। मीराबाई स्वतः वृंदावन जाकर जीव गोस्वामी से मिली भी थीं। चौरासी वैष्णवों की वार्ता से ज्ञात भी होता है कि वृंदावन से मेवाड़ पत्र आते जाते थे।

मीराबाई तथा महाराणा कुंभ

यह दंतकथा भी प्रचलित है कि मीराबाई का विवाह मेवाड़ के अधीश्वर महाराणा कुंभकर्ण से हुआ था और उन्हीं के द्वारा वे पीड़ित की गई थीं तथा उन्हीं के कारण उन्हें गृह-त्याग करना पड़ा था।

मीराबाई ने स्वकृत 'नरसी का मायरा' में लिखा है कि वह मेड़ते के एक क्षत्रियराजवंश की कन्या थीं और उनके अन्य पदों से यह भी ज्ञात होता है कि वह राठौड़ क्षत्रिय थीं तथा उनका विवाह मेवाड़ के महाराणा के वंश में हुआ था। अब यह देखना चाहिए कि मेड़ता में राठौड़ क्षत्रियों का

राज्य कब था। जैसा अन्यत्र लिखा जा चुका है, मेड़ता में राव जोधाजी के पुत्र राव दूदाजी ने सं० १५१८ में राज्य स्थापित किया था और उसका अंत सं० १६११ में हुआ था। इस प्रकार केवल ९३ वर्ष तक मेड़ता में इस राठौड़ राजवंश का अधिकार रहने के बाद वह जोधपुर के अधीन हो गया। इसके पहिले मेड़ता पर बहुत दिनों तक मुसलमानों का और उसके पहिले प्रतीहार आदि क्षत्रियों का अधिकार था। अतः सं० १५१८ के पहिले की मेड़ता की निवासिनी राठौड़ क्षत्रिय-राजवंश की कन्या मीराबाई हो नहीं सकती, अन्य कोई इस नाम की रही हों तो उससे इन कवयित्री से कोई संबंध नहीं। सं० १५१८ से सं० १६११ के बीच में पैदा होने तथा मृत्यु-मुख में जानेवाली मीरा सं० १५२५ में मरनेवाले महाराणा कुंभकर्ण की अर्धांगिनी नहीं हो सकतीं।

महाराणा कुंभकर्ण के इष्टदेव मेवाड़ के नाते श्री एकलिंग जी थे पर वह विष्णु भगवान के परम भक्त थे। इसका पता उनके बनवाए हुए अनेक मंदिरों से स्पष्टतः ज्ञात होता है। इन मंदिरों में इन्होंने अपने विचारानुसार अनेक प्रकार की विष्णु मूर्तियाँ स्थापित कराई हैं। इन्होंने गीतगोविंद की रसिक प्रिया नाम की टीका लिखी है। इनके बनवाए हुए कुंभस्वामी या कुंभश्याम के प्रसिद्ध मंदिर के पास एक छोटा मंदिर आदि वाराह का है।[1] लोगों ने यह कथा गढ़ ली थी कि बड़ा मंदिर महाराणा कुंभ का है तथा छोटा मंदिर मीराबाई का है और इसलिए ये दोनों पति-पत्नी थे। इन मंदिरों पर तथा कीर्तिस्तंभ आदि पर राणा कुंभ के अनेक शिलालेख मिले हैं। उनसे तथा गीतगोविंद की टीका से इनकी दो रानियाँ कुंभलदेवी तथा अपूर्वदेवी का नाम मिलता है। भाटों की ख्यातों से इनकी चार रानियों के नाम प्यार कुँवर, अपरमदे, हर कुँवर और नारंगदे ज्ञात होते हैं।[2] इनमें कहीं मीराबाई का नाम तक नहीं आया है। इन्हीं मीराबाई की गीतगोविंद की टीका पर लिखी व्याख्या प्रसिद्ध है। ऐसी प्रसिद्ध विदुषी तथा भक्त रानी का नाम परम वैष्णव महाराणा कुंभ रचित कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में न होवे यह संभव नहीं है क्योंकि वह भी

---

१. कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति से—

मर्यादां निकषोपमं मुकुटयन्नग्री चित्रकूटाचले।
कुंभस्वामिन आलयं व्यरचयन्नग्री कुंभकर्णो नृपः॥
अकारयच्चादिवराह गेहमनेकधा श्रीरमणस्य मूर्तिः।

२. ओझाजी राजपूताने का इतिहास खंड २, पृ० ६३४।

उसी गोविंद के भक्त थे। अतः इससे भी मीरा का कुंभकर्ण की पत्नी न होना ही पुष्ट होता है।

महाराणा मोकल की पुत्री तथा कुंभकर्ण की बहिन लालाँदे का विवाह गागरूनगढ़ के राजा अचलदास से हुआ था, जिसके भाई प्रसिद्ध भक्त पीपाजी थे और जिनका उल्लेख मीराबाई के पदों में हुआ है। यह सं० १४७५ से १५२० के लगभग वर्तमान थे और मीराबाई के पूर्ववर्ती थे अतः इससे भी यही ज्ञात होता है कि मीराबाई पीपाजी के अग्रज अचलदासजी की पत्नी के भाई के बहुत बाद हुई थीं।

राव जोधाजी की पुत्री शृंगारदेवी का विवाह राणा कुंभ के पुत्र रायमल से हुआ था तब ऐसी अवस्था में राव जोधा की प्रपौत्री मीरा का विवाह राणा कुंभ से बतलाना बिलकुल बे-सिर पैर की बात है। अस्तु, पूर्वोक्त विचारों से यह निश्चयपूर्वक मानना पड़ता है कि मीराबाई तथा कुंभकर्ण के दांपत्य संबंध की दंतकथा में कुछ भी सार नहीं है।

जे० एन० फर्कुहर इसी दंतकथा के आधार पर लिखता है कि जोधपुर के अंतर्गत मेड़ता की राजकुमारी मीराबाई का विवाह मेवाड़ के युवराज से हुआ था, जो अपने पिता प्रसिद्ध राणा कुंभ के सन् १४६९ में मारे जाने के पहिले मर गया था। विधवा होने तथा अपने देवर के कुव्यवहार से, जो गद्दी पर बैठा था, इन्होंने चित्तौड़ त्याग दिया और रामानंदी रैदास की शिष्या हुईं तथा तब यह कृष्ण की भक्त हुईं।[1] परंतु यह भी भ्रम मात्र है

अकबर-तानसेन तथा मीराबाई

अकबर का जन्म सं० १५९९ में (१४ शाबान सन् ९४९ हि०, २३ नवम्बर सन् १५४२ ई० गुरुवार को) अमरकोट में हुआ था। जन्म के कुछ ही दिन बाद यह पिता के साथ भारत के बाहर चला गया और सन् १५५४ ई० के अंत में भारत आया। सं० १६१२ में (२७ जनवरी सन् १५५६ ई० को) हुमायूँ की मृत्यु हुई और १४ फरवरी को कलानौर में अकबर गद्दी पर बैठा। उस समय इसकी अवस्था तेरह वर्ष ढाई महीने की थी। राज्य के सातवें वर्ष सं० १६१९, सन् १५६२ ई० में अकबर ने तानसेन को राजा रामचंद्र बघेला के यहाँ से बुलाकर अपने दरबार में रखा।[2] अकबर इसके बाद ही तानसेन को लेकर मीराबाई से मिलने

१. 'एन आउटलाइन आव द रिलिजस लिटरेचर आव इंडिया' पृ० ३०६।

२. मआसिरुल् उमरा हिंदी भा० १ पृ० ३३०।

जा सकता था, इतना अवश्य ही निश्चित है परन्तु इसी वर्ष तानसेन के दरबार पहुँचने के पहिले अकबर ने मेड़ता विजय कर लिया था।[1] पाँच वर्ष बाद चित्तौड़ दुर्ग चार महीने के घेरा पर टूटा। जयमल २३ फरवरी सन् १५६८ ई० मंगलवार को इसी घेरे के समय अकबर द्वारा मारा गया था। चित्तौड़ के इस शाका में अकबर ने जो बर्बरता तथा उद्दंडता दिखलाई थी वह तैमूर तथा हलाकू ही के कोटि की थी और राजपूतों के प्रति उसकी चित्तवृत्ति कैसी थी, यह इससे स्पष्ट हो जाता है।

अब दोनों ही मत से विचार करने पर यह दंतकथा असत्य ठहरती है। राणा कुंभकर्ण की स्त्री की सं० १६१९ में कम से कम १२५ वर्ष की अवस्था होनी चाहिए, जो असंभव है। मीराबाई के इतने दीर्घजीवी होने का कहीं उल्लेख नहीं है। भोजराज की स्त्री होने पर भी सं० १६१९ में इनकी अवस्था साठ वर्ष के लगभग होनी चाहिए और इसके बहुत पहिले मीराबाई अपना देश छोड़कर द्वारिका चली गई थीं तथा वहीं अपना शरीर भी छोड़ चुकी थीं। अकबर का द्वारिका जाकर इनसे भेंट करने का भी उल्लेख नहीं मिलता और वह पहिले पहिल गुजरात सं० १६२९ में गया था। अतः यह निश्चय है कि यह केवल काल्पनिक कथा मात्र है।

रैदास

मीराबाई के विषय में दंतकथा है कि संत रैदास उनके गुरु थे। उनके प्रसिद्ध पद 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई' के तीन पाठ मिलते हैं जिनमें एक में एक पंक्ति इस प्रकार है—

गुरु म्हारे रैदास सरनन चित सोई।

दूसरे पाठ में इसके स्थान पर है—

भगति देखि राजी हुई जगति देखि रोई।

तीसरे पाठ में पूर्व पंक्ति ही नहीं है। एक अन्य पद 'मीरा मन मानी सुरत सैल असमानी' में आया है कि

खोजत फिरौं भेद वा घर को कोइ न करत बखानी।
रैदास संत मिले मोहि सतगुरु दीन्ह सुरत सहदानी॥

इस पद में मीराबाई अपनी प्रेम-पीर वर्णन करती हुई कहती हैं कि—

---

१. अकबरनामा जिल्द २ पृष्ठ २२६ और २९५ पर लिखा है कि अकबर छद्मवेश में तथा साधारण रूप में इधर उधर घूमता था और दूसरे पृष्ठ पर मथुरा होते आगरा जाने का भी उल्लेख है।

ऐसा वैद मिले कोई भेदी देस बिदेस पिछानी।
तासों पीर कहूँ तन केरी फिर ना भरमों खानी॥

एक अन्य पद में मीरा उपनाम-युक्त पंक्ति के बाद दो पंक्ति है—

गुरु रैदास मिले मोंहि पूरे धुर से कलम भिड़ी।
सतगुरु सैन दई जब आके जोत में जोत अड़ी॥

इसके सिवा एक पद में और लिखा है कि—

झाँझ पखावज वेणु वाजियाँ झालर नो झनकार।
काशी नगर ना चौक माँ मने गुरू मिला रोहीदास॥

रैदासजी को रविदास तथा रोहीदास भी कहते थे। इससे यह भी बात मालूम होती है कि काशी के चौक में मीराबाई से और रैदास से भेंट हुई थी। काशी का चौक अभी हाल का बना हुआ है। प्रायः दो शताब्दि पहिले वहाँ तक महाश्मशान समाप्त होता था और अब भी स्मशान-विनायक फाटक के पास मौजूद ही हैं। मुगल-काल में वहाँ अदालत स्थापित हुई थी, जो महाल अब भी पुरानी अदालत कहलाता है। चाँदनी चौक का छोटा रूप चौक भी मुगल काल से प्रचलित हुआ है। साथ ही मीराबाई के काशी आने का भी कहीं उल्लेख नहीं मिलता। उन्होंने स्वयं एक पद में लिखा है कि 'मंत्र न जंत्र कछुए ना जाणुँ वेद पढ्यो न गै काशी।' अतः ये पंक्तियाँ विश्वास के योग्य नहीं हैं।

मीराबाई के दो पदों से यह भी ज्ञात होता है कि उनके सतगुरु वही हैं जिनके प्रेम की पीर में वह सदा दिवानी रहीं। कहती हैं—

री मेरे पार निकस गया सतगुरु मारया तीर।
बिरह भाल लगी उर अंतरि व्याकुल भया सरीर॥
इत उत चित चलै नहिं कबहूँ डारी प्रेम-जंजीर।
कै जाणे मेरो प्रीतम प्यारो और न जानै पीर॥१॥

सतगुरु म्हारी प्रीत निभाज्यो जी।
मैं तो दासी जनम जनम की म्हारे आँगण रमता आज्यो जी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी बेड़ो पार लगाज्यो जी॥२॥

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'मीराबाई श्रीगिरिधरजी को अपना गुरु भी समझती थीं। अन्यत्र दिखलाया गया है कि वह राम, रमैया, जोगिया आदि से भी उन्हीं इष्टदेव को संबोधित करती थीं।

मीराबाई की उपासना माधुर्य-भाव लिए साकार की थी। उन्होंने कहा ही है कि 'मीरा भक्ति करे परगट की'। इधर रैदासजी के उपास्यदेव का आकार देखिए। कहते हैं—

कहु रैदास मैं ताहि को पूजूँ जाको ठाँव नाँव नहिं होई ॥१॥
निरंजन, निराकार, निरलेपी, निरविकार, निसासी ॥२॥

इन्होंने राम तथा माधव को संबोधन कर भी पद कहे हैं, अद्वैतवाद भी कुछ लाए हैं अर्थात् इनमें भक्ति के सिवा ज्ञान का भी काफी पुट है। उधर मीराबाई में भक्ति ही सब कुछ है और वह भी श्रीगिरिधर-लालजी में। इनकी भक्ति के विषय में अन्यत्र लिखा गया है। इस प्रकार विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि रैदासजी इनके गुरु नहीं थे, केवल उनके शिष्यों ने उनका महत्व दिखलाने को कुछ पंक्तियाँ प्रक्षिप्त कर यह दंतकथा प्रचलित कर दी है।

मीराबाई के पहिले रामानंदजी ने सीताराम का तथा उनके शिष्य कबीर ने निर्गुण भक्ति का प्रचार किया था। सगुण उपासना के श्रीरामानुज, निंबार्क, माध्व तथा श्रीचैतन्य संप्रदाय प्रतिष्ठित हो चुके थे। वल्लभाचार्यजी का मत प्रचलित हो रहा था। श्रीरामानुज संप्रदाय में श्रीलक्ष्मीनारायण का और अन्य में राधाकृष्ण का पूजन अर्चन होता था। इनमें भी श्रीचैतन्य संप्रदाय में हरिनाम कीर्तन तथा श्रवण प्रधान साधन माना गया है। मीराबाई की उपासना श्रीराधाकृष्ण-कीर्तन तथा श्रवण ही में अधिक प्रगट है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने छ गोस्वामियों को वृंदावन भेजा था कि वहाँ के लुप्त तीर्थस्थानों का उद्‌घाटन करते हुए हरिनाम-कीर्तन का प्रचार करें। ये छहों आचार्य उद्भट विद्वान तथा परम भक्त थे। इनमें एक श्रीरघुनाथदासजी थे, जिनकी मीराबाई शिष्या कही जाती हैं। मीराबाई का एक पद है, जिसमें वह श्रीचैतन्य को इंगित कर कहती हैं कि—

अब तो हरी नाम लौ लागी।
सब जग को यह माखनचोरा नाम धर्‌यो बैरागी॥
कहँ छोड़ी वह मोहन मुरली कहँ छोड़ी सब गोपी।
मूँड़ मुड़ाइ डोरि कटि बाँधी माथे मोहन टोपी॥
मातु जसोमति माखन कारन बाँध्यो जाको पाँव।
श्याम किशोर भए नव गोरा चैतन्य जाको नाँव॥
पीताम्बर को भाव दिखावै कटि कोपीन कसे।
दास भक्त की दासी मीरा रसना कृष्ण बसे॥[1]

उक्त छ गोस्वामियों में रघुनाथ नाम के दो भक्त थे और इसी कारण श्रीरघुनाथदासजी दास-भक्त या दास गोस्वामी के उपनाम ही से प्रसिद्ध

---

१. रागकल्पद्रुम १ भाग पृ० ५५५।

थे। श्री आनंदशंकर ध्रुवजी ने अपने 'नरसिंह अने मीरा' लेख में लिखा है कि 'हमें मीरा का चैतन्य-संप्रदाय के साधुओं के साथ समागम होने की विशेष संभावना ज्ञात होती है।'

वृंदावन पहुँचने पर मीराबाई का विशेष आग्रह कर श्रीजीव गोस्वामी से भेंट करना भी यही बतलाता है क्योंकि उस समय श्री चैतन्य संप्रदाय के मुख्य विद्वान यही वहाँ थे। ये उक्त संप्रदाय के सप्त गोस्वामियों में परिगणित हैं।

श्री जीव गोस्वामी तथा मीराबाई

श्री रूप गोस्वामी तथा श्री सनातन गोस्वामी के छोटे भाई वल्लभजी के पुत्र श्री जीव गोस्वामी का जन्म रामकेलि ग्राम में सं० १५६८ ई० में हुआ माना जाता है। यह बाल्यकाल ही से श्रीकृष्णजी के भक्त थे और खिलवाड़ में भी श्रीकृष्णजी के खिलौने की पूजा आदि किया करते थे। इनकी माता ने भी इनके पितृव्यों की विरक्ति, भक्ति आदि की कथा कह कहकर इनमें भी उसी बात की प्रेरणा की। स्थानीय पाठशाला में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की तथा वेदांतादि गहन विषय पढ़ने के लिए यह नवद्वीप गए। वहाँ से यह श्री नित्यानंद की आज्ञा से काशी आए, जहाँ श्री मधुसूदन वाचस्पति से चार वर्ष तक अध्ययन किया। यहीं श्री चैतन्य महाप्रभु के वैकुंठ-धाम जाने का समाचार पाकर सं० १५९२ में यह चौबीस वर्ष की अवस्था में श्री वृंदावन गए। यहीं यह अंत तक रहे तथा आबाल ब्रह्मचारी बने रहे।

वृंदावन आने पर आरंभ में यह श्री रूप गोस्वामी के साथ रहते थे। भक्ति-रसामृतसिंधु ग्रंथ के समाप्त होने पर उन्होंने इन्हें श्री राधा-दामोदर की मूर्ति स्वतंत्र रूप से पूजन करने के लिए दी। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रेरित होकर वृंदावन में आकर निवास करते हुए सात गोस्वामियों में यही एक मात्र युवा तथा कर्मठ रह गए थे। श्री रूप-सनातन वैकुंठवासी हो चुके थे तथा अन्य चार अति वृद्ध होकर काल की प्रतीक्षा कर रहे थे अतः श्रीजीव ही वहाँ प्रधानकर्ता रह गए थे। यह उस समय के वृंदावन के भक्तों के प्रायः मुखपात्र हो रहे थे। सं० १६३० में अकबर वृंदावन आया था और उसने श्री जीव गोस्वामी से भेंट की थी। इन्हीं की प्रेरणा से उसने मंदिर बनवाने तथा गोहत्या बंद करने की आज्ञा दी थी। जीव गोस्वामी ने पचीस मुख्य ग्रंथ लिखे थे। इनके सिवा छोटे मोटे और भी अनेक थे।

महाजन था, जिसकी सलाह से हलाहल विष का प्याला मीराबाई के पास दयाराम नाम के किसी पंडा के हाथ भेजा गया। उसने ड्योढ़ी पर पहुँच कर कहलाया कि राणाजी ने यह चरणामृत भेजा है। मीराबाई ने चरणामृत सुनकर उसे पी लिया पर उस विष का भी उन पर असर नहीं हुआ। कहते हैं कि जिस समय मीराबाई ने विषपान किया था, उस समय द्वारिकाजी में श्री रणछोड़जी की मूर्ति के मुख से झाग निकलता दिखलाई पड़ा था। कुछ लोगों का कथन है कि इस विष से मीराबाई का शरीरपात हो गया और मृत्यु-समय इन्होंने बीजावर्गी महाजन को श्राप दिया था कि तेरे कुल में संतान होगी तो धन का अभाव रहेगा और धन होगा तो संतान न होगी। यह श्राप अब तक इस जाति में प्रसिद्ध है और इन पर से लोगों का विश्वास भी उठ गया है। यह कहावत प्रसिद्ध है—

बीजाबरगी बानियो दूजो गूजर गौड़।
तीजो मिले जो दाहमो करे टापरो चौड़॥

अर्थात् बीजावर्गी वणिक, गूजर गौड़ तथा दाहमा ब्राह्मण तीनों मिल जावें तो घर चौपट कर दें।

वास्तव में मीराबाई को इस विष से कोई हानि नहीं पहुँची। इसी मेवाड़ के राजवंश में द्वितीय बार राजकुमारी कृष्णा को भी विष दिया गया था। प्रथम बार कृष्णाबाई पर विष का असर नहीं हुआ तब द्वितीय बार अत्यंत तीव्र विष का प्रयोग किया गया था, जिससे उसकी मृत्यु हो गई थी। यद्यपि मीराबाई की मृत्यु नहीं हुई पर उनका हृदय इन व्यवहारों से अत्यंत व्यथित हो उठा और इसी समय अपने पितृव्य राव वीरमदेव द्वारा

श्री जीव गोस्वामी ने यहाँ से बहुत से ग्रंथों को श्री निवास, नरोत्तमजी तथा श्यामानंदजी को सौंपकर बंगदेश भेजा कि वे उड़ीसा, विहार तथा बंगाल में हरिकीर्तन का प्रचार करें। इन तीन आचार्यों ने भी इस कार्य में कमी नहीं की और जीव गोस्वामी से बराबर पत्र व्यवहार भी होता रहता था। श्री जीव गोस्वामी वृद्ध आचार्यों के एक एक कर अंतर्हित होने पर वृंदावन में केंद्र रूप होकर वैष्णवता का प्रचार करते हुए पौष शुक्ल ३ सं० १६५२ वि० को वैकुंठवासी हुए।

कहते हैं कि जब मीराबाई तीर्थाटन करती हुई वृंदावन आईं तब इन महात्मा गोस्वामी की भक्ति का वृत्तांत सुनकर उन्होंने इनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। जीव गोस्वामी ने उत्तर में कहलाया कि वह बाल-ब्रह्मचारी हैं, इस कारण प्रकृति का मुख नहीं देखते। मीराबाई ने इसपर कहलाया कि 'महाराज, आप अभी तक प्रकृति-पुरुष के भेद में पड़े हुए हैं, आपको समदर्शी होना चाहिए था।' इस पर पर्दे की ओट में बैठकर मीरा से बातचीत आरंभ हुई। मीरा ने कहा—

वासुदेव पुमानेकः स्त्रीमयमितरज्जगत्।

ऐसा श्रीमद्भागवत में लिखा है, अब आप भी अपने को पुरुष कहते हैं। श्री गिरिधर जी के सिवा व्रज में अन्य पुरुष भी है यह मुझे आज ज्ञात हुआ।' यह सुनकर श्री जीव गोस्वामी मीराबाई की अपूर्व भक्ति से अत्यंत चमत्कृत होकर उनसे बड़े प्रेम से मिले और हरिकथा-कथन और श्रवण से बहुत आनंदित हुए। यह मिलन सं० १५९२–१६५२ के बीच ही हो सकता है।

श्री रूप स्वामी सं० १५७६ में वृंदावन आए तथा सं० १६१३ में अंतर्हित हुए थे। कहीं कहीं जैसे भक्त प्रकाश में ऐसा भी लिखा मिलता है कि उक्त बातचीत श्री रूप गोस्वामी से हुई थी। यदि ऐसा हो तो वह उक्त दोनों संवतों के बीच हो सकता है।[1]

भक्तमाल छप्पय ९२ तथा कवित्त ४६७ में और नागरीदास के पद-प्रसंगमाला में जीव गोस्वामी ही का नाम है। गुजराती कवि दयाराम ने

---

१. बंगला भाषा में 'मीराबाई जीर कड़चा वा श्रीरूप गोस्वामीर शिक्षातत्व' नामक एक छोटा सा काव्य मालदा-निवासी श्रीहाराधनदास कृत मिला है, जो चालीस पचास वर्ष पहिले का बना है। इसमें मीराबाई द्वारा श्री रूप गोस्वामी को प्रेमतत्व की शिक्षा दिलाई गई है तथा उनकी स्त्रीजाति के प्रति उदासीनता का निवारण कराया गया है।

भी 'जीव गुसाईं ने शिष्याय' लिखा है। वियोगी हरिजी ने इन्हीं को मीराबाई का गुरु माना है पर यह ठीक नहीं है। वह भक्तदास रघुनाथदास की शिष्या थीं।

मीराबाई को राणा द्वारा कष्ट

मीराबाई के पदों तथा प्रियादासजी की नाभादासजी के छप्पय पर टीका से इतना निश्चय ज्ञात होता है कि मेवाड़पति राणाजी ने मीराबाई को मारने के लिए विष तथा सर्प भेजा था और उनके महल में स्वयं शस्त्र लेकर मारने गए थे पर उन सबका फल उल्टा हुआ था। अब पहिले यह विचार करना है कि यह राणाजी कौन थे। उनके पति भोजराज हो नहीं सकते क्योंकि वह राणा होने के पहिले कुमारावस्था ही में काल-कवलित हो चुके थे। मीराबाई का पति-प्रेम तथा वैधव्य के कुछ कष्ट का उल्लेख उनके दो तीन पदों से प्रगट भी होता है; इसलिए यह हत्या-प्रयत्न उनका हो नहीं सकता। साथ ही यह भी निश्चय है कि भोजराज के जीवन-काल में भी ये प्रयास नहीं हुए। मीराबाई के जितने पदों में इन प्रयासों का उल्लेख हुआ है उनमें कहीं भी यह ध्वनि नहीं निकलती कि उनके पति का उसमें हाथ था। दो तीन पद्य में 'जेठ बहू को नातो न राणाजी, हूँ सेवक थे स्वामी!' आया है, जिससे स्पष्टतः उलाहना, क्षोभ तथा वैधव्य-व्यथा परिलक्षित होती है। महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र की पत्नी होने के कारण उनकी पुत्रवधुओं में यह सब से ज्येष्ठ थीं पर पति की मृत्यु हो जाने के कारण वह उस उच्चपद से गिर गई थीं, ज्येष्ठ बहू का नाता ही कहाँ रह गया था। वह तो एक साधारण निस्संतान विधवा मात्र रह गई थीं, राजराणी होना दूर राजमाता होना तक उनके भाग्य में नहीं था। इन्हीं विपत्तियों के कारण उनकी जो स्थिति हो गई थी, उसे व्यक्त करते हुए कहा है कि अब पहिले का उनका उच्चपद रह नहीं गया है और वह केवल उस परिवार में दासी के समान रह गई हैं। राणाजी उन पर, उन्हें बड़ा न मानकर, मालिक के समान हुक्म चला रहे हैं। एक पद में इन कष्टों के पाने पर चित्तौड़-त्याग के समय मीराबाई ने क्षुब्ध होकर यहाँ तक कह डाला है—

गोविंदा प्राण अमारो रे।
सांढ वाला सांढ शणगार जे रे जावुं सो सारे कोष।
राणाजी ना देशमां मारे जल रे पीवानो दोष॥

उन्हें यहाँ तक कष्ट मिला था कि उन्हें मेवाड़ राज्य में जल पीना भी दूभर हो गया था। निस्संतान हिंदू विधवा की भारत के सर्वप्रथम परिवार

में ईश्वरभक्ति करने के कारण क्या दुर्दशा हुई थी, यह हृदय-स्पर्शी गाथा है। यह उन सतियों में थीं जिनके लिए 'सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं।'

अस्तु, इतना तो अवश्य ही निश्चय है कि इनको कष्ट देनेवाला इनके पति का अनुज ही था क्योंकि उक्त पदों के राणाजी से महाराणा साँगा का अर्थ नहीं निकाला जा सकता। वे तो मीराबाई के श्वसुर थे और उनके लिए स्वामी-दासी संबंध का उपालभ किसी प्रकार नहीं दिया जा सकता था। राणा साँगा स्वयं एक महावीर पुरुष थे, जिनके शरीर पर युद्ध के अस्सी घावों के चिह्न वर्तमान थे। इन्होंने अनेक युद्धों में दिल्ली, मालवा तथा गुजरात के सुल्तानों को पूर्णतया परास्त किया था और अंतिम काल में कन्हवा में युद्ध के मध्य में घायल हो बेहोश हो जाने से परास्त हुए थे। यह पुनः युद्ध की तैयारी कर रहे थे क्योंकि इनका प्रण था कि बिना बाबर को परास्त किए चित्तौड़ में पैर न रखूँगा कि इसी बीच इनकी मृत्यु हो गई। इनके जीवन का विशेष अंश युद्ध-स्थल ही में बीता था और इस प्रकार सभी पूर्वापर विचार करने से इनके द्वारा प्रिय पुत्र की विधवा पत्नी को किसी प्रकार का साधारण कष्ट पहुँचाना भी सत्य नहीं जान पड़ता। अतः अब भोजराज के एक-एक छोटे भाई को, जो मेवाड़ की गद्दी पर बैठे थे, लेकर विचार करना चाहिए।

महाराणा साँगा के अट्ठाइस विवाह हुए थे, जिनसे केवल सात पुत्र तथा चार पुत्रियाँ हुई थीं। इनमें से भी चार पुत्र इनके सामने ही मर गये थे। एक आधार पर भोजराज, कर्णसिंह तथा रत्नसिंह राव जोधाजी की प्रपौत्री राणी धनकुँवर के पुत्र माने जाते हैं पर एक अन्य आधार में केवल अंतिम दो उसके पुत्र कहे गए हैं तथा प्रथम को सोलंखी रायमल की पुत्री कुँवरबाई का पुत्र बतलाया है। यदि ये तीनों भाई सहोदर थे तो बड़े भाई की विधवा पत्नी पर उनका स्वभावतः स्नेह रहा होगा। यदि ऐसा नहीं था और दूसरा ही आधार अधिक मान्य तथा महत्व का समझा जाय तब उस हालत में यद्यपि वे सहोदर नहीं रह जाते पर उस दशा में भी मीराबाई के पितृ-कुल का संबंध बना ही रहता था। धनबाई तथा मीराबाई दोनों जोधाजी की प्रपौत्री अर्थात् आपस में बहिनें थीं। स्वभावतः धनबाई का अपनी छोटी बहिन पर स्नेह रहा होगा तथा इस कारण इन्होंने अपने राजमातृत्वकाल में और रत्नसिंह ने इन दो संबंधों के कारण उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाया होगा। कर्णसिंह पिता के सामने ही मृत हो चुके थे और राणा रत्नसिंह सं० १५८४ के माघ में गद्दी पर बैठे तथा सं० १५८८ में मारे गए। केवल मात्र इस

चार वर्ष के राजत्वकाल में राणा रत्नसिंह ने मालवा तथा गुजरात के दोनों सुलतानों से युद्ध कर उन्हें परास्त किया और सूरजमल हाड़ा को मारने के प्रयत्न में आप भी मारे गए। अतः यह विचार ठीक ही है कि मीराबाई को इनसे कष्ट नहीं पहुँचा था।

अब भोजराज के अन्य बचे हुए दो भाई विक्रमाजीत तथा उदयसिंह को लेकर विचार कीजिए। ये दोनों हाड़ा राव नरबदसिंह की पुत्री करमेतण रानी के पुत्र थे, जिन पर राणा साँगा का विशेष प्रेम था। इसने अपने पुत्रों के लिए रणथम्भोर की भूमि जागीर में माँग ली थी और अपने भाई सूरजमल को उनका अभिभावक नियुक्त करा दिया था। इसके लिए राणा रत्नसिंह से, जो उस समय पाटवी कुमार हो चुके थे, इसकी स्वीकृति ली गई थी और उन्होंने पिता के सन्मुख नाहीं नहीं की पर हृदय से वह इसके विरुद्ध रहे। राणा होने पर उसी भारी जागीर के फेर लेने में रत्नसिंह तथा सूरजमल दोनों मारे भी गए। करमेतण राणी पहिले ही से विक्रमाजीत को राज्य दिलाने का प्रयास कर रही थीं और अब उनकी वह इच्छा पूरी हुई। प्रायः बीस वर्ष की अवस्था में उनका पुत्र विक्रमाजीत रणथम्भौर से आकर मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। यह अयोग्य तथा विषयी था और इस विरोध तथा विजय के कारण विक्रमाजीत न केवल राज-परिवार ही वरन् मेवाड़ के सभी मान्य सर्दारों के विरुद्ध हो गया था, क्योंकि वे सब राणा रत्नसिंह के पक्षपाती रहे थे। प्रायः सभी सर्दार इससे अलग होकर घर बैठ रहे। सं० १५८९ में चित्तौड़ पर बहादुरशाह गुजराती ने चढ़ाई की, पहिले संधि हुई और फिर दुबारा चढ़ाई कर उसने सं० १५९२ में उस पर अधिकार कर लिया। बाद को हुमायूँ द्वारा बहादुरशाह के परास्त होने पर चित्तौड़ पर विक्रमाजीत का पुनः अधिकार हो गया। इसका कुस्वभाव अब भी नहीं बदला था और यह अंत में दूसरे ही वर्ष राणा सांगा के बड़े भाई पृथ्वीराज के वर्णशंकर पुत्र बनबीर द्वारा मारा गया। बनबीर भी अपनी वर्णशंकरता के कारण राज-परिवार तथा राजपूत सर्दारों द्वारा घृणा की दृष्टि से देखा जाने से उनसे अच्छा वर्ताव नहीं करता था। यह चार वर्ष बाद ही गद्दी से हटाया गया। इसके अनंतर उदयसिंह गद्दी पर बैठे। अब यह स्पष्ट है कि यदि मीराबाई को भोजराज के किसी भाई से, जो चित्तौड़ का अधिपति भी रहा हो, कष्ट पहुँचा था तो यही विक्रमाजीत हो सकता है क्योंकि बनबीर को भाई की श्रेणी में बिठाना अनुचित है। हाँ वह कष्ट देनेवाला अवश्य हो सकता है।

उदयसिंह सं० १५९५ में कुंभलमेर में राजगद्दी पर बैठे और सं० १५९७ में चित्तौड़ पर इनका अधिकार हुआ। इनकी जयमल मेड़तिया पर विशेष कृपा थी। सं० १५८५ में राव मालदेव से बीरमदेव से वैमनस्य आरंभ हुआ और सं० १८९५ में उन्होंने मेड़ता छीन लिया। सं० १६०० में बीरमदेव का पुनः मेड़ता पर अधिकार हुआ और इस बीच वह बाहर ही बाहर रहे। उसी वर्ष बीरमदेव की मृत्यु पर जयमल मेड़ता के अधीश हुए पर राव मालदेव ने, इन पर चढ़ाई कर दी। कई बार जयमलजी विजयी हुए पर अंत में सं० १६११ में राणा उदयसिंह के समझाने से वह मेड़ता छोड़कर उनके साथ चले गए। जयमलजी ने पुनः एक बार बादशाही सहायता से उसपर अधिकार किया पर अकबर ने भ्रांति से इनपर शंका कर उसे जगमाल को दे दिया। इस प्रकार देखा जाता है कि जयमलजी के विचार से राणा उदयसिंह ने कभी मीराबाई के साथ कुव्यवहार न किया होगा और इन्होंने तो उन्हें चित्तौड़ लौटा लाने तक का प्रयत्न किया था तब यही उनके गृह-त्याग के कारण कैसे बन सकते थे। अस्तु, निष्कर्ष यही निकलता है कि राणा विक्रमाजीत तथा बनवीर के समय कष्ट पाकर सं० १५८८ से ९७ के बीच मीराबाई ने चित्तौड़ त्याग किया और मेड़ता चली गईं।

विक्रमाजीत का राज्यकाल सं० १५८८ से सं० १५९३ तक है और बनवीर का अधिकार चित्तौड़ पर सं० १५९७ तक रहा। इस प्रकार इन्हीं नौ वर्षों के भीतर मीराबाई ने चित्तौड़ त्याग दिया होगा। इन नौ वर्षों में भी आरंभ ही में इन्होंने चित्तौड़ का त्याग किया होगा क्योंकि उस समय इनकी अवस्था तीस वर्ष के लगभग थी और सं० १५८९ में चित्तौड़ पर गुजरातियों की चढ़ाई हो चुकी भी थी। अस्तु,

मीराबाई की भगवद्भक्ति का आरंभ इनके बाल्यकाल ही में हो चुका था और विवाहोपरांत भी यह भक्ति तथा सत्संग जारी रहा। यद्यपि इस सत्संग, साधु-सेवा आदि से इनके ससुराल वाले प्रायः सभी रुष्ट थे और इनके पति भी इसमें बाधा डालते थे पर यह उस सीमा तक नहीं पहुँचा था कि मीराबाई को हार्दिक कष्ट हो। वे सांसारिक मर्यादा को समझती थीं, उनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि वह विदुषी तथा प्रतिभावान थीं और राजस्थान के दो प्राचीनतम राजवंश की थीं। ये रुष्ट होनेवाले उन्हीं की भलाई के लिए उन्हें उपदेश देते थे क्योंकि उनका इनपर स्नेह था पर इनकी अपने श्रीगिरिधरजी की पूर्ण भक्ति उन सब उपदेशों की अवहेलना कराती रही। यह उनके प्रेम तथा स्नेह को मानती रहीं तथा

इसी कारण उनके उपदेशों से कभी व्यथित नहीं हुईं। विधवा तथा निस्संतान होने पर सांसारिक सुख को एक दम त्याग कर वह गिरिधरलाल की अनन्यभक्त हो गईं पर इन उपदेशों के कारण कभी गृह-त्याग की इच्छा इनके मन में नहीं उत्पन्न हुई। इसका बीजारोपण तब हुआ जब विक्रमाजीत ने इनके सतीत्व पर आक्षेप किया, इनपर कड़ा प्रतिबंध लगाया और इनके महल के आसपास जासूस नियत किए। यह साधु-सेवा से वंचित होते हुए श्री गिरिधरजी के सामने नृत्यगीत करतीं तथा उनसे इस प्रकार बातचीत करती थीं मानों उन्हें प्रत्युत्तर मिलता जा रहा है। एक रात्रि उस जासूस ने राणा को समाचार दिया कि मीराबाई के महल में किसी पुरुष के वर्तमान होने की संभावना है। राणा साहब तुरंत तलवार लेकर महल में पहुँच गए पर वहाँ किसी को न देख कर मीराबाई से क्रुद्ध होकर पूछने लगे कि अभी यहाँ कौन पुरुष आया था। वह किसी प्रकार मीराबाई को बदनाम करना चाहता था और इनके प्रति उसके हृदय में सम्मान या स्नेह न होकर वैमनस्य तथा कुविचार ही था। वह एक अवसर निकाल कर उन्हें अपने परिवार से दूर करना चाहता था। यह अवसर हाथ से निकलता देखकर तथा जिस कारण आए थे वह झूठ निकलता देख अपनी लज्जा छिपाते हुए क्रोधित हो उठा। मीराबाई ने उस प्रश्न का सीधा सरल उत्तर दिया कि जिससे बातचीत कर रही थी, वह सामने ही विराज रहे हैं। कहते हैं कि इसी समय राणाजी को मीराबाई के पलंग पर एक भयंकर जीव दिखलाई पड़ा, जिससे वह बेतरह डर गया और यह कहता चला गया कि तुम्हारे इष्टदेव तो बड़े भयकर हैं। तात्पर्य यह कि राणा-जी यहाँ से अपना सा मुँह लेकर चले गए पर उनके हृदय की प्रतिहिंसा और भी भड़क उठी।

इसके अनंतर विक्रमाजीत ने एक पिटारी में विषधर सर्प रखवाकर मीराबाई के पास भेजा कि इसमें शालिग्रामजी की बटी है। मीराबाई ने यह सुनकर बड़े प्रेम से उस पिटारी को ले लिया और वास्तव में जिस समय उन्होंने पिटारी खोला उस समय उसमें शालिग्रामजी ही के दर्शन हुए। लानेवाला भय तथा श्रद्धा से अपने होश में न रहा और सत्य बात कह दी। राणाजी ने इतने पर भी अपनी 'यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वम-विवेकता' सभी का संयोग हो जाने के कारण मीराबाई की अद्भुत भक्ति तथा उन पर ईश्वर की कृपा का संमान न कर सका और उनका प्राण लेने का दूसरा उपाय सोचने लगा।

कहते हैं कि विक्रमाजीत का एक मुसाहब बीजावर्गी जाति का एक-

महाजन था, जिसकी सलाह से हलाहल विष का प्याला मीराबाई के पास दयाराम नाम के किसी पंडा के हाथ भेजा गया। उसने ड्योढ़ी पर पहुँच कर कहलाया कि राणाजी ने यह चरणामृत भेजा है। मीराबाई ने चरणामृत सुनकर उसे पी लिया पर उस विष का भी उन पर असर नहीं हुआ। कहते हैं कि जिस समय मीराबाई ने विषपान किया था, उस समय द्वारिकाजी में श्री रणछोड़जी की मूर्ति के मुख से झाग निकलता दिखलाई पड़ा था। कुछ लोगों का कथन है कि इस विष से मीराबाई का शरीरपात हो गया और मृत्यु-समय इन्होंने बीजावर्गी महाजन को श्राप दिया था कि तेरे कुल में संतान होगी तो धन का अभाव रहेगा और धन होगा तो संतान न होगी। यह श्राप अब तक इस जाति में प्रसिद्ध है और इन पर से लोगों का विश्वास भी उठ गया है। यह कहावत प्रसिद्ध है—

बीजावरगी वानियो दूजो गूजर गौड़।
तीजो मिलै जो दाहमो करे टापरो चौड़॥

अर्थात् बीजावर्गी वणिक, गूजर गौड़ तथा दाहमा ब्राह्मण तीनों मिल जावें तो घर चौपट कर दें।

वास्तव में मीराबाई को इस विष से कोई हानि नहीं पहुँची। इसी मेवाड़ के राजवंश में द्वितीय बार राजकुमारी कृष्णा को भी विष दिया गया था। प्रथम बार कृष्णाबाई पर विष का असर नहीं हुआ तब द्वितीय बार अत्यंत तीव्र विष का प्रयोग किया गया था, जिससे उसकी मृत्यु हो गई थी। यद्यपि मीराबाई की मृत्यु नहीं हुई पर उनका हृदय इन व्यवहारों से अत्यंत व्यथित हो उठा और इसी समय अपने पितृव्य राव वीरमदेव द्वारा निमंत्रित होकर यह मेड़ते चली गईं।

मीराबाई के चित्तौड़ छोड़ते ही बहादुरशाह गुजराती ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। मेड़ते के राव वीरमदेव तथा अन्य सर्दारों ने पहिले का संबंध विचार कर चित्तौड़ की रक्षा में बड़ी बहादुरी दिखलाई पर हाड़ी रानी ने अपने अविवेकी तथा अल्पवयस्क पुत्र के विचार से संधि कर ली। बहादुरशाह उदयसिंह को साथ ले जाकर मुसलमान कर अपना युवराज बनाना चाहता था पर इसका पता पाकर लोग उन्हें हटा लाए इसपर उसने पुनः चढ़ाई कर चित्तौड़ ले लिया। हाड़ी राणी जौहर कर जल मरी। हुमायूँ से बहादुरशाह के हारने पर राणा का चित्तौड़ पर अधिकार अवश्य हुआ पर इसके एक वर्ष बाद बनवीर द्वारा विक्रमाजीत मारा गया।

ई. मीराबाई की जीवनी

इस प्रकार यथाशक्ति समग्र साधनों को लेकर विचार करने के अनंतर

अब यहाँ उनकी उतनी ही जीवनी दी जाती है, जो पूर्णतया निश्चित जान पड़ती है। मीराबाई का जन्म राठौड़ों की मेड़तिया शाखा के प्रवर्तक राव दूदा जी के वंश में हुआ था, जिन्होंने मेड़ता में सं० १५१८ में अपना राज्य स्थापित किया था। यह शाखा जोधपुर राजवंश से अलग होकर स्थापित हुई थी। राव दूदा जी ने अपने द्वितीय पुत्र रत्नसिंह को कुड़की, बाजोली आदि बारह गाँव गुजारे के लिये दिये थे, जहाँ वह रहते थे। इन्होंने रतनास नामक ग्राम बसाकर सं० १५६६ में रतनू नाम के एक चारण को दे दिया था, जो अब तक उक्त चारण के वंश में चला आता है। यहीं कुड़की में मीराबाई का सं० १५६० में जन्म हुआ था। इनकी अवस्था छोटी ही थी उसी समय इनकी माता का देहांत हो गया, जिस पर राव दूदा जी ने इनको अपने पास मेड़ता बुला लिया और वहीं अत्यंत स्नेह से इनका लालन पालन किया। सं० १५७२ में राव दूदा जी की मृत्यु पर उनके बड़े पुत्र वीरमदेव जी मेड़ता की गद्दी पर बैठे और दूसरे वर्ष बड़े समारोह के साथ मीराबाई का विवाह महाराणा साँगा के युवराज-कुमार भोजराज से कर दिया। वीरमदेव का राणा साँगा की बहिन से विवाह हुआ था, जिससे इनका वहाँ बहुत संमान था। इस दंपति ने मीराबाई का हिंदू मात्र में सर्वश्रेष्ठ संबंध निश्चित किया था क्योंकि राणा साँगा के बाद मेवाड़ की वही अधीश्वरी होतीं पर वैसा न हो सका। भोजराज की पिता के सम्मुख ही सं० १५७५ के लगभग मृत्यु हो गई। मीराबाई जन्मतः हरि भक्त थीं और इस आपत्ति काल में सांसारिक मोह त्याग कर अपने गिरिधरलाल जी की अनन्य भक्त हो उठीं जिन्हें वह साथ ससुराल ले गई थीं। वह दिवारात्रि श्री गिरधर जी की उपासना भजन आदि में रत रहती थीं। साधु सत्संग के कारण इनके परिवार वाले रोक टोक करते थे, जिससे इन्हें कष्ट होता था पर यह अपने मार्ग से नहीं हटीं।

सं० १५८३ से महाराणा साँगा कन्हवा युद्ध में बाबर से परास्त होकर उसके दूसरे वर्ष वीरलोक सिधारे और मीराबाई के पिता रत्नसिंह तथा पितृव्य रायमल जी भी उसी युद्ध में काम आए। महाराणा रत्नसिंह भी अपने भाई विक्रमाजीत के अभिभावक राव सूरजमल से लड़कर मारे गए और बीस वर्ष की अवस्था में विक्रमाजीत मेवाड़ पति हुआ। इनके द्वारा सताये जाने पर राव वीरमदेव ने सब कथा

सुनकर इन्हें मेड़ता बुला लिया, जहाँ यह सं० १५९५ तक सुखपूर्वक अपने भजन पूजन में लगी रहीं। कहते हैं कि इनके उपास्यदेव की मूर्ति अब भी चतुर्भुज जी के मंदिर में वर्तमान है।

राव वीरमदेव जी से मेड़ता छूटने पर सांसारिक वैभव की असारता देखकर मीराबाई पितृव्य से सहायता लेकर यात्रा को निकलीं और वृन्दावन तथा मथुरा में कुछ दिन निवास किया। यहाँ से यह द्वारिका जी को गईं जहाँ अंत तक रहीं। यह वहीं थीं जब सं० १६०० में मेड़ते पर राव वीरमदेव का पुनः अधिकार हो गया। इसके अनंतर मेड़ता से जयमल जी ने तथा मेवाड़ के अधिपति राणा उदयसिंह ने मीराबाई को अपने गृह लौट आने का संदेश भेजा पर उन्होंने उक्त तीर्थ स्थान को छोड़ना उचित नहीं समझा। वहीं उनका सं० १६०३ के लगभग शरीरांत हुआ।

९. मीराँ शब्द

'मीराँ' बाई शब्द पर यह शंका उठाई गई है कि यह कवियत्री का नाम है या उपनाम तथा यह शब्द संस्कृत से व्युत्पन्न है या फारसी से। स्वर्गीय डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने एक लेख में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं कि यह शब्द फारसी से लिया गया है तथा उपनाम मात्र है और फारस के सूफी संप्रदाय की कुछ भावनाओं को ग्रहण करने के कारण ही यह उपनाम धारण किया गया है। इसी निष्कर्ष के आधार पर दूसरे लेख में खींच तान कर उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि मीराबाई सगुण भक्ति संप्रदाय की न होकर वास्तव में निराकारवाद की पोषिका थीं। इसका समर्थन कबीर के दोहों से कराया गया है।

फारसी के कोषों में मीर शब्द अमीर का मुखफ्फफ अर्थात् छोटा रूप लिखा गया है और अमीर का अर्थ सर्दार है। मीर का बहुवचन मीरान् या मीराँ होता है। इससे अनेक शब्द बनते हैं, जैसे मीरक— छोटा मीर, मीरज़ादः या मीरज़ा—मीर का वंशज, मीर मजलिस— सभापति, मीर आखोर—अस्तबल का दारोग़ा आदि। मुसल्मानों में यह प्रमुख सैयदों का अल्ल भी होता है। मुगल दरबार में मीर मीरान् (मीरों का सर्दार) पदवी दी जाती थी और संमान के लिये एक मनुष्य को भी मीरान् जी कह कर संबोधित करते थे। अहमदाबादनिवासी सैयद अली मीराँ दातार कहे जाते थे। यह

गुजरात के सुल्तान मुहम्मद शाह के समय सन् ८९८ हि० में युद्ध में मारे गये थे और इनका मज़ार बन गया है। यह सब होते भी फारसी में यह शब्द स्वामी या परमेश्वर के लिए नहीं प्रयुक्त होता है।

कबीरदास जी के निम्नलिखित पदों में मीराँ शब्द प्रयुक्त हुआ है:—

१. कबीर चाल्या जाइ था आगैं मिल्या खुदाइ।
मीराँ, मुझसौं यों कह्या किनि फुरमाई गाइ॥

२. हज कावै ह्वै ह्वै गया केती बार कबीर।
मीराँ, मुझ मैं क्या खता मुखाँ न बोलै पीर॥

३. सुर, नर, मुनिजन, पीर, अवलिया, मीराँ पैदा कीन्हा रे।
कोटिक भये कहाँ लूँ बरनूँ सबनि पयाना दीन्हा रे॥

४. कहु कबीर न दूर करे जे मीरा। राम नाम लगि उतरे तीरा॥

इन सब से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि मीराँ शब्द किसी गुरु या सिद्ध फकीर के लिये प्रयुक्त हुआ है, खुदा या परमेश्वर के लिये नहीं। प्रथम दोहे में खुदा से मिलने के बाद मीराँ से खुदा की कही हुई बात दुहराई गई है। यदि मीराँ शब्द खुदा के लिए ही आया है तो वह व्यर्थ है और साथ ही यह भी विचारणीय है कि कबीर उस मिलन-घटना को किसी से कह रहे हैं, जो खुदा से भिन्न दूसरा ही हो सकता है। दूसरे दोहे में भी मीराँ से कह रहे हैं कि कितनी बार मैं हज्ज कर आया पर तब भी मेरे में क्या दोष है कि पीर मुझ से नहीं बोलते। कबीर के पीर, साहब, राम, रहीम आदि उनके परमेश्वर ही के भिन्न भिन्न नाम हैं और उन्हीं को प्रसन्न करना ध्येय रहा। तीसरे तथा चौथे पदांश में यह और स्पष्ट हो गया है। तात्पर्य यही है कि कबीर के मीराँ खुदा या परमेश्वर नहीं हैं प्रत्युत् किसी फकीर को या अपनी आत्मा को आदर से इस शब्द से संबोधित किया है। कबीर मीराबाई के प्रायः समकालीन थे।

अंग्रेजी के कोषों को देखने से ज्ञात होता है कि एंग्लो-सैक्सन शब्द मेअर (एम, ई, आर, ई) का अर्थ झील या ताल है। जर्मन तथा डच भाषाओं के 'मीर' (एम, ई, ई, आर), लैटिन के मेअर तथा फ्रेंच के 'मेर (एम, ई, आर) या मेअर' समानार्थी हैं। इन सब का अर्थ समुद्र है। उन कोषों में यह टिप्पणी भी है कि यह शब्द संस्कृत के मरु (रेगिस्तान) या म्रि (मरना) शब्दों

में से किसी से व्युत्पन्न है और इसी से मैराइन (समुद्री) तथा मार्श (दलदल) शब्द बने हैं।

संस्कृत में मीरः शब्द समुद्रवाची है। संक्षिप्त विलसन डिक्शनरी में इसका अर्थ महासमुद्र लिखा है, यह पुल्लिंग है और इसकी व्युत्पत्ति मी (फेंकना, फैलाना) रक् उणादि दिया है। आप्टे के कोष में मीरः शब्द का समुद्र, सीमा, पेय तथा पर्वत का एक मुख्य भाग अर्थ दिए हुए हैं। मीरः को आकारांत कर देने से वह स्त्रीलिंग हो जाता है और तब उसका अर्थ नदी या जल हो सकता है। मीरः के समान इरः का अर्थ क्षीर समुद्र है और यह पुल्लिंग है तथा 'इरा' शब्द स्त्रीलिंग है और इसका अर्थ पृथ्वी, सरस्वती, पेय, जल, सुरा, कश्यप की एक स्त्री आदि हैं। इरावती एक नदी का नाम भी है। इर् धातु का अर्थ जाना है। मि धातु का अर्थ फेंकना, देखना, नापना, स्थापित करना आदि हैं। मी धातु का अर्थ जाना, समझना आदि हैं। मी या मि+इरा=मीरा बनता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मीर या मीरा शब्द संस्कृत है और इसी से यूरोपीय भाषाओं में गया है।

वास्तव में मीरा नाम साधारणतः प्रचलित नहीं है और यही कारण है कि इस पर शंका उठाई गई है। मीराबाई के समय तक उनके पितृ तथा पति दोनों वंशों में कोई भी नाम ऐसा नहीं मिलता, जो फारसी शब्दों से बना हो, जैसा कि कई पीढ़ी बाद मिलने लगता है। इसलिए यह निश्चय है कि मीरा शब्द फारसी से नहीं व्युत्पन्न है क्योंकि मीर के सिवा इससे मिलता हुआ कोई भी अन्य शब्द उस भाषा में नहीं है। साथ ही यह ध्यान रखने योग्य है कि फारसी भाषा भी आर्य परिवार ही की है और उसकी शब्दावली की व्युत्पत्ति पर ध्यान देने से उसका मूल संस्कृत में मिलता है।

नाम अनेक प्रकार से पड़ जाते हैं। संस्कृत से शुद्ध मीरा शब्द कैसे बना है, इस पर विचार किया जा चुका है अब और भी प्रकार से विचार किया जाय। कभी कभी बड़े नाम का अंश मात्र पुकारने का नाम बन जाता है, जैसे कश्मीरा से मीरा। प्रमीला मीला तथा उपसर्ग प्र संयुक्त है और मीला से मीरा बन सकता है। तात्पर्य यह कि उक्त कवियित्री का यह नाम उनके यथाप्राप्त जीवनी से जन्मकाल से ही रखा हुआ ज्ञात होता है और इसे बाद को

उपनाम रूप में ग्रहण करने का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। हाँ, अब यह नाम अधिक प्रसिद्ध हो गया है। परंतु देखा जाता है कि कभी कभी अच्छे काम या नाम के नकलों को देखकर वे वदनाम कर दिए जाते हैं। जैसे सभी अंधे सूरदास कहे जाने लगे। उसी प्रकार राजस्थान में भक्तिमय भजनों की अच्छी गानेवाली को प्रशंसा में मीराबाई कहने लगे हैं, जिनमें वेश्याएँ भी होती हैं। पर ऐसा करने का फल यह निकला कि एक विदेशीय लेफटिनेंट-जेनरल सर जौर्ज मैकमन के. सी. वी., के. सी. एस. आई., डी. एस. ओ ने स्वरचित पुस्तक 'द अंडरवर्ल्ड आव इंडिया' में मीराबाई को इस प्रकार याद किया है।

'उसी शताब्दि में राजपुताना में मीराबाई हुई, जो कामलिप्सा तथा शक्ति की वैष्णव उपासिका थीं, संसार के आनन्दमय प्रेमी गोपीनाथ कृष्ण की कीर्ति की उत्साहपूर्ण गायिका थीं तथा लिंग-योनि के रहस्य की उपदेशिका थीं। वह वेश्याओं की गुणग्राहिका समझी जाती हैं, जो प्रायः यही नाम धारण करती हैं और जिस नाम को गांधी-गृह में प्रवेश करने पर मिस स्लेड को धारण करने की आज्ञा नहीं दी जानी चाहिए थी।'

जिस के मस्तिष्क में जो कुछ भरा रहता है वही येन केन प्रकारेण उसके मुख से निकल ही पड़ता है और ऐसे आक्षेप सदा उपेक्षणीय हैं।

मूता नैणसी की ख्यात भाग २ पृ० २१७ पर बारहठ बीठूजी का एक दोहा उद्धृत है, जिसमें 'मीराँ' शब्द आया है। यह पुस्तक सं० १४४५ वि० के लगभग की लिखी है। वह दोहा इस प्रकार है—

खंगड़ै किया खड़ाक सी लागा सुरताण सूँ।
मीराँ मीलक नूँ मार छोइयाँ उतरी छाक॥

ओझाजी कृत जोधपुर राज्य का इतिहास खं० १ पृ० ३२६ पर राव मालदेव की एक पुत्री का नाम मीराँ दिया है। मीराँबाई ने स्वयं लिखा है कि 'मेड़तिया घर जन्म लियो है मीराँ नाम कहायो।' बाई शब्द का अर्थ पत्नी लेना भ्रांति मात्र है। राजपुताना, गुजरात तथा महाराष्ट्र में सर्वत्र बाई शब्द का प्रयोग सम्मानवाची है और उसका अर्थ पुत्री लिया जाता है। पत्नी का कहीं किसी प्रकार नहीं लिया जाता। अवश्य ही उत्तरी भारत में बाईजी वेश्या के लिए प्रयुक्त होता है पर वह भी सम्मान के भाव से।

वीर शब्द का साधारण अर्थ बहादुर है। व्रजभाषा में इसे संबोधन रूप में भाई के अर्थ में लेते हैं, जैसे बलबीर अर्थात् बलरामजी के भाई श्रीकृष्ण। राजपुताने में इसका स्त्रीलिंग वीराँ होता है, जिसका अर्थ पुत्री होता है। चंद्रविंदु सहित आकारांत करने से स्त्रीलिंग बन जाता है। वीराँ नामकी एक कवियित्री का हाल महिला मृदुवाणी में (पृ० ३६) मुं० देवी प्रसादजी ने दिया है।

दलाल जेठालाल वाडीलाल लिखते हैं—

प्रेम लक्षणा भक्ति थी वश कीधा करतार।
धन धन मीराबाइ ने गिरिधारी शूँ प्यार॥

वह लिखते हैं कि मीरा के जन्म के समय अलौकिक प्रकाश का विंब दिखलाई पड़ा था, जिससे कुमारी का नाम मही+इरा अर्थात् मीरा रखा गया था। मही का अर्थ पृथ्वी और इरा का अर्थ तेज या प्रकाश हुआ। मीरा ने पृथ्वी पर निर्दोष प्रेम-भक्ति का प्रकाश फैलाया था और अपने पिता रत्नसिंह से प्रगट होने के कारण रत्न के प्रकाश के समान वह उज्ज्वल तथा निर्मल थीं।

१० रचनायें

मीराँबाई को मेड़ते ही में शिक्षा मिली थी और वहीं उन्हें काव्य-कला, संगीत आदि की भी शिक्षा मिली होगी। मेवाड़ का राजवंश भी इन सब विद्या तथा कलाओं में बहुत बढ़ा चढ़ा हुआ था, जिससे मीराँबाई को ससुराल में भी अनुकूल वातावरण के कारण अपनी योग्यता को विकसित करने का अवसर मिलता रहा। श्रीकृष्ण के प्रति इनकी श्रद्धा, प्रेम तथा भक्ति बाल्यकाल ही से थी जैसा कि इनकी जीवनी से ज्ञात है और इसके लिए इन्हें किसी से दीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी। इस प्रकार की नवधा भक्ति के लिए, आत्मनिवेदन आदि के लिए, गीति काव्य विशेष अनुकूल होता है और इसी कारण मीराँबाई संगीतमय पदों को रचकर उन्हें प्रेम तथा विरह वेदना से रसाप्लुत कर सकी हैं। इन पदों की भी उन्होंने रचना इसीलिए की है कि वे उन्हें गाकर अपने इष्टदेव को आत्म-समर्पण कर सकें।

मीराँबाई की रचनाओं के निम्नलिखित नाम मिलते हैं:—

१. नरसीजी रो माहेरो—यह ग्रंथ नरसी मेहता की पुत्री कुँवरबाई के सीमंत के अवसर पर मामेरा भेजने के संबंध में है। नरसी भक्त

का संक्षिप्त वृत्त लिखा जा चुका है और उसमें लिखा जा चुका है कि किस प्रकार निर्धन भक्त की सहायता भगवान् ने स्वयं आकर की थी। इसी कथा को लेकर मीराँबाई ने पदों में यह रचना की थी। यह पूरी रचना अभी अप्राप्त है पर कुछ अंश मिला है, जिसका उल्लेख किया जा चुका है।

२. गीतगोविंद की टीका—यह ग्रंथ अभीतक पूरा अप्राप्य है अतः ऐसी धारणा भी की गई है कि महाराणा कुंभकर्ण की टीका ही को मीराँबाई की टीका मान ली गई है। परंतु ऐसी भी जनश्रुति है कि महाराणा की टीका पर मीराँबाई ने व्याख्या की है। जो कुछ हो, जब तक ग्रंथ नहीं मिलता तब तक उस पर कुछ विशेष नहीं कहा जा सकता।

३. राग गोविंद—इस ग्रंथ के विषय में भी अभी संदेह है क्योंकि यह भी अप्राप्य है। हो सकता है कि यह मीराँबाई के पदों का कोई संग्रह रहा हो। इसी प्रकार *सोरठ के पद*, *मीराबाई की मलार* आदि ग्रंथों के नाम सुने जाते हैं पर ये सब भी इनके पदों के ऐसे संग्रह ग्रंथ हो सकते हैं, जिन्हें बाद में किसी ने संकलित किए हों।

४. स्फुट पद—मीराँबाई ने अधिकतर गेय पद ही बनाए हैं। इनकी संख्या अभी तक निश्चित नहीं है। इन्होंने राजस्थानी तथा ब्रजभाषा ही में अधिकतर पद रचे हैं परंतु द्वारिका में वास करने पर गुजराती में भी इन्होंने बहुत से पद बनाए थे। इस संग्रह में प्रायः साढ़े चार सौ पद दिए गए हैं, जो अनेक संग्रह-ग्रंथों से संकलित किए गए हैं। इनमें हस्तलिखित तथा मुद्रित दोनों प्रकार के संग्रह ग्रंथ हैं, जिनकी सूची पुस्तक के अंत में दे दी गई है। इन सब में पाठ भेद तथा भाषा तक के भेद गेय पद होने के कारण बहुत पड़ गए हैं और प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के अभाव में इनका पाठ-शोध संभव नहीं रह गया है। जयपुर के स्वर्गीय श्रीहरिनारायणजी पुरोहित, जोधपुर के कुँअर जगदीश सिंह गहलोत, बड़ौदा के श्रीमंजुलाल आर. मजूमदार आदि कई विद्वानों से इस विषय में लिखा पढ़ी हुई क्योंकि ये सभी सज्जन मीराँ के पदों के प्रेमी हैं और सभी इनकी रचनाओं के संग्रह प्रकाशित करने के उत्सुक हैं। इन सब ग्रंथों के प्रकाशित हो जाने पर ज्ञात होगा कि इस संग्रह ग्रंथ में पाठशोध की कहाँ तक आवश्यकता है।

प्राचीन सगुण उपासना की समयानुकूल कुछ परिवर्तित परंपरा के साथ नवीन परिस्थितियों के कारण एक सामान्य भक्तिमार्ग का भी प्रचार हुआ जिसकी दो शाखाएँ फूटीं। यह मुख्यतः एकेश्वरवाद था, जिसमें ईश्वर का कोई निश्चित स्वरूप नहीं माना गया। यह निर्गुण निराकार मार्ग ब्रह्मवाद तथा खुदावाद दोनों ओर ढलता था इसलिए इसमें जातिबंधन या नीच-ऊँच का विचार नहीं था और इस कारण सभी उस निराकार ईश्वर की भक्ति करने के समान अधिकारी थे। इसमें प्रतिमा-पूजन था नहीं, केवल नाम-जप प्रधान था। इनमें ब्रह्मज्ञान, अवतारवाद सभी का मिश्रण था। केवल मुख्य धर्मों की स्पष्ट विभिन्नताओं की, जैसे मूर्तिपूजा, रोज़ा-निमाज आदि की, असारता दिखलाते हुए सामान्य भक्ति पद्धति ग्रहण की गई थी। एक शाखा ब्रह्म-ज्ञान की थी और दूसरी सूफीमत की शुद्ध प्रेम की थी।

जिस प्रकार विनाशकारी महाभारत युद्ध के अनंतर चार्वाकमत प्रचलित हुआ था उसी प्रकार भारत के परतंत्र होने पर निर्गुण ज्ञानप्रधान अनेक पंथों का प्रचलन हुआ। मूर्तिखंडकों द्वारा मूर्तियों के तोड़े जाने पर चमत्कारप्रिय जनता ने उनपर अश्रद्धा प्रकट की और निर्गुण निराकार ब्रह्म की ओर झुक पड़ी। कंठी, जनेऊ, व्रत आदि का खंडन किया जाने लगा और धर्म का अत्यन्त साधारण रूप ग्रहण किया गया, जिसे सभी एक सा मान सकते थे। इन ज्ञानियों में भी कविता की अधिकता थी और सभी प्रवर्तकों ने अपने उपदेश कविता ही में दिए। अव्यवस्थित भाषा, कविकर्म की अनभिज्ञता, चर्वितचर्वण आदि की ही विशेषता रही पर इनमें कुछ प्रतिभावान कवि भी थे। मीराबाई के समय तक इस ज्ञान-प्रधान संत संप्रदाय में श्रीरामानंद के शिष्यगण ही हो चुके थे और उनमें से दो एक ही स्यात् इनके समसामयिक कुछ काल के लिए रहे होंगे परंतु निश्चय ही ये सब इनके पूर्ववर्ती थे। इनमें से पीपाजी, धन्ना आदि राजस्थान के थे। दादूपंथ प्रवर्तक दादूदयाल मीराबाई के प्रायः समसामयिक रहे। इन संतों के उपदेशों को साधु-सत्संग के कारण मीराबाई ने अवश्य ही सुना होगा पर उसका प्रभाव इन पर कहाँ तक पड़ा यह इसी से ज्ञात होता है कि उन्होंने स्वयं कहा है कि 'मीरा भक्ति करे परगट की।' वह कहती हैं—

प्रभुजी आज बंदी री सुण हो।
मों नुगुणी रा सुगुणा साहब अवगुणधारी रा गुण हो।

मीराबाई संतों की चाल पर सुरत, निरत सुषुम्ना नाड़ी आदि का कभी कभी उल्लेख कर देती हैं पर अंत में यही कहती हैं कि

जाऊँनी पीहरिये जाऊँनी सासरिये हरि सूँ सैन लगाती।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर हरि चरणाँ चित लाती॥

निर्गुणधारा की दूसरी शाखा प्रेमप्रधान है जिसमें लौकिक प्रेम को लेकर ही अलौकिक प्रेम प्राप्त किया जाता है। यह सामान्य नियम है पर इस शाखा में केवल सूफी संप्रदाय की प्रेम पद्धति का अनुसरण किया गया है और यही कारण है कि इसे लेकर केवल मुसल्मानों ही ने साहित्य-रचना की है। हिंदुओं की रचना प्रायः नगण्य सी है। इस संप्रदाय में ईश्वर निर्गुण, निराकार है और प्रेम का जबतक कोई आश्रय न हो उसका परिस्फुटित होना संभव नहीं इसी लिए लौकिक प्रेम के आख्यानों को लेकर ही इन कवियों ने अलौकिक प्रेम की व्याख्या की है। यदि जायसी को "पद्मावत" (पद्मिनी) रूपी साकार आश्रय न मिलता तो वह अलौकिक प्रेम की व्याख्या कुछ कर पाते इसमें शंका ही है। इस पद्धति में ईश्वर-प्रति अलौकिक प्रेम लेकर ही उसकी खोज की जाती है और विरहकाल में अर्थात् मिलन न होने तक 'प्रेम की पीर' उठाते 'अपनास' किया जाता है। इस शाखा के जिस कवि ने प्रेम की पीर की जितनी ही मार्मिकता तथा विह्वलता से व्याख्या की है वह उतना ही अपने ध्येय में ऊँचे उठा है। ऐसे ग्रंथ वास्तव में सभी धार्मिक द्वंद्वों से परे हैं और इसी कारण सभी धार्मिक रुचिवाले इन्हें पढ़ते हैं, जिनमें संसार के परोक्ष के कुछ रहस्य का संकेत मिल सकता है।

मीराबाई का समय प्रायः निश्चित रूप से सं० १५६०—१६०४ है और प्रथम आख्यानक काव्य मृगावती सं० १५५८ में लिखी गई। जायसी का पद्मावत सं० १५९७ के बाद समाप्त हुआ था। मंझन की मधुमालती भी प्रायः इसी काल की है और अन्य सभी इनके बाद की हैं। ऐसी अवस्था में यह मानना कि मीराबाई ने इनमें से कोई पढ़ा होगा और उनपर इनका प्रभाव पड़ा होगा, युक्ति संगत नहीं है। उनके किसी पद से भी ऐसा भान नहीं होता। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इस संप्रदाय में ईश्वर प्रियतमा माशूक माना जाता है और प्रेमी पुरुष होता है। फारसी तथा इसी कारण उर्दू में भी प्रेमी-पुरुष ही विरह कष्ट उठाता है, रोता है बिलबिलाता है और प्रेयसी निठुर, निर्दय आदि होती है। भारतीय प्रथा इसके

ठीक विपरीत है। तात्पर्य यह कि इस संप्रदाय का कोई प्रभाव मीराबाई पर नहीं है और न हो सकता था।

इस प्रकार देखा जाता है कि निर्गुण भक्ति धारा का प्रायः कुछ भी प्रभाव मीराबाई की भक्ति पर नहीं पड़ा है। अब सगुण वैष्णव संप्रदाय का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है, जिसके अंतर्गत मीराबाई थीं।

वैष्णवधर्म

सभ्य मानव-जगत ने जब किसी परमात्मा के होने को निश्चय रूप से मान लिया तब वह उसके स्वरूप-ज्ञान का तथा इस प्रत्यक्ष-सृष्टि के रहस्य समझने का, उसकी प्रार्थना तथा उपासना कर उसे प्रसन्न करने का और उसके प्रेम में अनन्यता से तल्लीन हो उसे पाने का अनेक रूप से प्रयत्न करने लगा। साध्य वस्तु सभी की एक थी पर उसके साधन के अनेक मार्ग देश, परिस्थिति, सभ्यता, बुद्धि आदि के अनुसार यत्र तत्र निकाले गए। अपने भारतवर्ष में तीन प्रधान मार्ग हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग। प्रथम में अनेक याग-यज्ञादि विहित कर्मों को कर ईश्वर को प्रसन्न किया जाता है। दूसरे में चिंतन तथा मनन कर ईश्वर के स्वरूप तथा उसके सृष्टि-रहस्य को समझकर उसे प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है पर तीसरे में अपने को भगवान का जन समझकर अपनी प्रेम-भक्ति के द्वारा उसके निकट पहुँचकर उसकी सेवा करने का सुअवसर प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। वैष्णव धर्म प्रधानतः भक्तियोग का है और इसमें परमात्मा परब्रह्म परमेश्वर का नाम विष्णु भगवान है इसलिए यह मार्ग वैष्णव धर्म कहलाता है। जब जब धर्म का ह्रास होने लगता है तब तब वह पृथ्वी पर अवतीर्ण होकर इसकी रक्षा करते हैं। इन अवतारों में दाशरथी रामचंद्र तथा वासुदेव कृष्ण प्रधान हैं।

भारत वैदिककाल में बहुदेवोपासक था। जिन प्राकृतिक शक्तियों का यहाँ के ऋषिगण प्रत्यक्षतः या अनुमानतः अनुभव करते थे उन्हीं के एक एक अधिष्ठातृ देवता को मानकर उनका प्रतिष्ठापन कर लेते थे। विष्णु भी इसी प्रकार के एक देवता मान लिए गए थे पर क्रमशः इनके नाम के अर्थ के अनुसार इनकी प्रधानता बढ़ती गई। तीन पाद विक्षेप द्वारा तीनों लोक नाप लेने के कारण

यह त्रिविक्रम कहलाए। सृष्टि के आरंभ में जल ही रहता है तथा उसी पर रहने के कारण यह नारायण कहलाए। इस प्रकार सब देवताओं में यह प्रमुख होते हुए परब्रह्म परमेश्वर मान लिए गए। उस काल तक इनकी आराधना कर्मयोग तथा ज्ञानयोग द्वारा होती थी, भक्ति द्वारा नहीं।

पौराणिक काल में भक्ति-प्रधान उपासना आरंभ हुई और महाभारत के अनुसार स्वयं भगवान ने नारदमुनि को इसमें दीक्षित किया था। श्रीमद्भगवद्गीता में इस धर्म की शिक्षा भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दी। यद्यपि पुराणों का निर्माणकाल अनिश्चित है किंतु यह धर्म ईसवी सन् पूर्व छ शताब्दि पहिले अच्छी प्रकार प्रचलित था, ऐसा शिलालेखों से ज्ञात होता है। श्रीकृष्ण वृष्णिवंश के थे और इस वंशवालों का उल्लेख पाणिनीय अष्टाध्यायी, कौटिल्य अर्थशास्त्र, शतपथ ब्राह्मण आदि में मिलता है। 'वासुदेवक' पद पाणिनि में मिलता है, जिसका अर्थ है वासुदेव का उपासक। उक्त सभी ग्रंथों का समय ईसवी पूर्व है। बौद्धधर्म के आरंभ के पहिले श्रीकृष्ण की आराधना प्रचलित थी, यह भी कई ग्रंथों से ज्ञात होता है और जैन ग्रथों से भी ज्ञात होता है कि यह ई० पू० नवीं शताब्दी के पहिले प्रचलित थी। बौद्धकाल में बौद्ध धर्म का राजाश्रय पाने से प्रचलन हो गया था और इस कारण यह भागवत धर्म दब गया था परंतु प्रथम के ह्रास पर पुनः इसका उत्कर्ष बढ़ा। गुप्त सम्राट्गण स्वयं अपने को परम भागवत कहते थे और उसके राज्याश्रय में इसका विशेष प्रसार हुआ। इस काल में रामावतार का कहीं शिलालेखों में नाम नहीं मिलता पर वासुदेव तथा लक्ष्मीनारायण की आराधना का उल्लेख है।

ऐसा ज्ञात होता है कि उत्तरी भारत में बौद्ध धर्म का प्राधान्य हो जाने के कारण भागवत धर्म दक्षिण की ओर चला गया और वहीं इस धर्म के संबंध में विशेष रूप से अनुशीलन होने लगा। यहाँ के बारह आलवारों ने भक्तिमार्ग तथा श्रीकृष्ण की आराधना पर विशेष जोर दिया। यद्यपि ये नारायण भगवान को सर्वेश्वर परब्रह्म मानते थे पर उनके अवतारों में श्रीकृष्ण ही को अपनी भक्ति का मुख्य आधार समझते थे। ये हरिकीर्तन, श्रीरंगपत्तन आदि में प्रतिष्ठित विष्णु की मूर्तियों की आराधना और उनके ध्यान ही को मुख्य समझते थे। इन आलवारों के नाम इस प्रकार हैं—

१. पोयगई　२. भूतत्तरं　३. पेय　४. तिरुमलिशई
५. नम्म या सद्गोप　६. मधुर कवि　७. कुलशेखर　८. पेरिय
९. आंदाल　१०. तोंडरडिप्पोडि　११. तिरुप्पाण　१२. तिरुमंगइ

अंतिम आलवार तिरुमंगइ ने चार सहस्त्र भजन बनाए थे और श्रीरंगम् में रहते थे। इनके बाद रामानुजाचार्य हुए। आलवारों के अनंतर कई आचार्य हुए, जिन्होंने वैष्णवधर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों पर विशेष रूप से मनन कर उन्हें अपनी रचनाओं द्वारा स्पष्ट किया है। इन्हीं में एक नाथमुनि हुए हैं, जिनके पौत्र यामुनाचार्य थे। इनका जन्म सं० ९७३ वि० में और देहावसान सं० १०९७ वि० में हुआ था। इन्हीं ने कई ग्रंथों की रचना कर शंकराचार्य के मायावाद का खंडनकर विशिष्टाद्वैत का विवेचन किया तथा रामानुजाचार्य को मृत्यु के समय इस धर्म का कार्य सौंपा था। रामानुजाचार्य ने श्रीसंप्रदाय प्रवर्तित किया, जिसमें विशिष्टाद्वैत मत का समर्थन किया गया है। प्रायः आठवीं शताब्दी में विष्णु स्वामी, बारहवीं शताब्दी में निंबार्काचार्य और तेरहवीं शताब्दी में मध्वाचार्य हुए। प्रथम के अंतर्गत श्री वल्लभाचार्य का और द्वितीय के अंतर्गत श्री चैतन्य महाप्रभु का संप्रदाय है। अब संक्षेप में उक्त चारों की विशिष्ट बातें एक तालिका के रूप में दे दी जाती है।

संख्या	देवी आचार्य	लौकिक आचार्य		संप्रदाय का नाम	उपासना का नाम	सिद्धांत या मार्ग	आचार
		नाम	समय				
१	लक्ष्मीजी	रामानुजाचार्य	११ वीं श.	श्री	दास्य	विशिष्टाद्वैत	भगवान विष्णु
२	सनक, सनंदन सनातन, सनत्कुमार	निंबादित्य या निंबार्काचार्य	१२ वीं श.	हंस	सख्य	द्वैताद्वैत	राधाकृष्ण
३	ब्रह्माजी	मध्वाचार्य (श्रीकृष्ण चैतन्य) १५४२-१५९०	१३ वीं श.	ब्रह्म	माधुर्य	द्वैत अचिंत्य भेदाभेद	राधाकृष्ण
४	महादेवजी	विष्णुस्वामी (वल्लभाचार्य) १५३५-१५८७	८ वीं श.	रुद्र	वात्सल्य	शुद्धाद्वैत	बालकृष्ण

इस प्रकार वैष्णव धर्म के विकास का अति संक्षिप्त परिचय जान लेने पर देखा जाता है कि हिंदी साहित्य में जिन संप्रदायों के भक्तों की रचनायें विशेष रूप से मिलती हैं वे श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की गधारमणी तथा श्रीवल्लभाचार्य की पुष्टि मार्गीय संप्रदाय हैं अतः इन दोनों महानुभावों का अति संक्षिप्त परिचय दे दिया जाता है।

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु का जन्म नवद्वीप में फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा सं० १५४२ वि० को हुआ था और इनका निधन अड़तालीस वर्ष की अवस्था में हुआ। इनका नाम वास्तव में विश्वंभर था पर स्नेह से घर के लोग निमाई कहते थे। यह अत्यन्त तीव्र बुद्धि तथा प्रतिभाशाली थे और सोलहवें वर्ष में अध्ययन समाप्त कर इन्हों-ने अपनी पाठशाला खोली। सं० १५६६ में २४ वर्ष की अवस्था में इन्होंने संन्यास ले लिया और तब यह श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु हो गए। इन्होंने हरि-कीर्तन तथा नाम-जप का प्रचार किया। यह जगन्नाथपुरी से दक्षिण गए और रामेश्वर होते हरिभजन का प्रचार करते पुनः जगदीश लौटे। यहाँ से यह वृंदावन गए और वहाँ के अनेक लुप्त तीर्थों का पता लगाया। वहाँ से लौटते समय प्रयाग, काशी आदि होते हुए जगदीश आए। यहीं यह अंत समय तक रहे और अड़तालीस वर्ष की अवस्था में अंतर्हित हो गए।

इन्होंने किसी संप्रदाय के चलाने का आग्रह नहीं किया। इन्होंने अनेक भक्त विद्वानों को भगवन्नाम का प्रचार करने, लुप्त तीर्थों का उद्धार करने तथा ग्रंथों का प्रणयन करने वृंदावन भेजा था, जिनमें श्रीगोपालभट्ट, रूप गोस्वामी, श्रीसनातन, श्रीजीव गोस्वामी आदि प्रमुख हैं। इन्हीं गोस्वामियों ने जो संप्रदाय चलाया वही इनका संप्रदाय कहलाया। इन्होंने द्वैत-अद्वैत के फेर में न पड़कर यही कहा कि यह भेदाभेद अचिन्त्य है और संकीर्तन ही को सर्वस्व माना। कहा है—

> चेतो दर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
> श्रेयः कैरवचंद्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
> आनंदांबुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतस्वादनं
> सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥
>
> (शिक्षाष्टकं)

इन्होंने यह भी उपदेश दिया कि कलियुग में हरिनाम ही एकमात्र साधन है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामेव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को स्वतः कोई सम्प्रदाय चलाने का आग्रह नहीं था और न उन्होंने कोई प्रवर्तित ही किया। इनके उल्लिखित भक्त शिष्यों ने इनका सम्प्रदाय चलाया जो गौड़ीय या श्रीराधारमणी कहलाया और इन्हीं गोस्वामियों के वंश परम्परा में इस संप्रदाय के गुरु होते आये हैं। यही कारण है कि इस संप्रदाय में गुरुओं को वह महत्त्व नहीं प्राप्त है, जो वल्लभ सम्प्रदाय में है। वल्लभ संप्रदाय में ही यह शंका उठ सकती है कि 'गुरु गोविंद दोनों खड़े काके लागौं पाँव'। यहीं गुरुजी का कीर्तन गोविंद का कीर्तन मान लिया जाता है। योग्य गुरु से दीक्षा लेना नितान्त आवश्यक है क्योंकि बिना मार्ग प्रदर्शक के भटकना भर हाथ लगता है। श्रीहरि भक्ति विलास में लिखा गया है—

कृपया कृष्ण देवस्य तद्भक्तजन-संगतः ।
भक्तेर्माहात्म्यमाकर्ण्य तामिच्छन् सद्गुरुं भजेत् ॥
अत्रानुभूयते नित्यं दुःख श्रेणी परत्र च ।
दुःसहा श्रूयते शास्त्रात्तितीर्षेदपि तां सुधी ॥

देवाधिदेव श्रीकृष्ण के अनुग्रह से उनके भक्तों का सत्संग कर भक्ति-माहात्म्य सुने और उसे प्राप्त करने की इच्छा होने पर सद्गुरु का आश्रय ग्रहण करे। संसार में दुःखों का नित्य अनुभव होता है और शास्त्रों ने भी इन्हें दुःसह कहा है इसलिए सुधी पुरुष दुःख सागर को पार करने के लिए गुरु रूपी नौका का आश्रय लें। इस प्रकार सद्गुरु का आश्रय लेने पर उनके उपदेशानुसार भक्ति-मार्ग पर अग्रसर होने से भटकने का भय नहीं रहता। दीक्षा लेने का तात्पर्य ही यही है कि

तत्र श्रीवासुदेवस्य सर्वदेव शिरोमणेः ।
पादाम्बुजैकभागैव दीक्षा ग्राह्या मनीषिभिः ॥
(वैष्णव तंत्र)

सभी देवताओं के शिरोमणि श्रीवासुदेव के चरण कमल की सेवा के इच्छुक भक्त ही को दीक्षा लेनी चाहिए।

माध्यसंप्रदायांतर्गत पुष्टिमार्ग के प्रतिष्ठापक श्रीवल्लभाचार्यजी हुए, जिनका जन्म वैसाख कृष्ण १५ सं० १५३५ वि० को हुआ था और इनका निधन आषाढ़ शुक्ल ३ सं० १५८० को हुआ। इन्होंने अणु भाष्य, श्रीमद्भागवत की सुबोधिनी टीका तथा अन्य कई ग्रन्थ लिखे और शुद्धाद्वैत मत का प्रतिपादन किया। जीव तथा ब्रह्म की एकता मानते हुए शांकर अद्वैत के मायावाद को अलग कर उसे शुद्धाद्वैत बतलाया। कहते हैं—

माया संबंधरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः।
कार्यकारणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम्॥

इस मार्ग को पुष्टिमार्ग भी कहते हैं क्योंकि रसेश श्रीकृष्ण का अनुग्रह ही भक्ति-मोक्ष आदि का साधन है। पुष्टि का अर्थ पोषण है। श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध के अध्याय १० का ४ था श्लोक है कि

स्थितिर्वैकुंठविजयः पोषणं तदनुग्रहः।
मन्वन्तराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः॥

इन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की रसेशरूप में पर वात्सल्य भावना से उपासना करने की प्रथा चलाई अर्थात् ब्रज के कृष्ण को इष्ट भगवान् माना। वल्लभाचार्यजी को दो पुत्र श्रीगोपीनाथ तथा श्रीविट्ठलनाथजी थे। यद्यपि यह दाक्षिणात्य थे पर पुण्यभूमि काशी ही में यह अवतीर्ण तथा अंतर्हित हुए थे तथा वृंदावन में अपनी मुख्य गद्दी स्थापित की थी, जो श्रीकृष्ण की लीला भूमि थी। इन्होंने समग्र भारत में पर्यटन कर अपने संप्रदाय का प्रचार किया तथा अनेक स्थानों में गद्दियाँ स्थापित कीं।

वल्लभाचार्यजी के बड़े पुत्र गोपीनाथ का जन्म आश्विन शुक्ल १२ सं० १५६७ को अरैल में हुआ था और उनका युवावस्था ही में निधन हो गया। गोस्वामी विट्ठलनाथजी का जन्म पौष कृष्ण ९ सं० १५७२ वि० को हुआ और माघ कृष्ण ७ सं० १६४२ वि० को शरीरपात हुआ। इन्हें सात पुत्र थे जिनमें प्रथम शुद्धाद्वैतमार्तंड श्रीगिरिधरजी का जन्म कार्तिक शुक्ल १२ सं० १५९७ वि० को हुआ था। इनके अन्य पुत्रों का नाम क्रमशः श्रीगोविन्दजी (कार्तिक व० ८ सं० १५९९), श्रीबालकृष्णजी (भादो व० १३ सं० १६०६), श्रीगोकुलनाथ (मार्गशीर्ष शुक्ल ७ सं० १६०८), श्रीरघुनाथजी (कार्तिक शुक्ल १२ सं० १६११), श्रीयदुनाथजी (चैत्र शुक्ल ६

सं० १६१३) तथा श्रीघनश्यामजी (कार्तिक व० १३ सं० १६२८) थे। प्रत्येक पुत्र वल्लभाचार्यजी की स्थापित सात गद्दियों में से एक एक के स्वामी हुए।

गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने अपने पिता के चार शिष्य प्रसिद्ध भक्त सुकवियों को तथा अपने वैसे ही चार शिष्यों को चुनकर अलग किये थे जो अष्टछाप के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके नाम क्रमशः सूरदास, परमानन्ददास, कुंभनदास, कृष्णदास, नंददास, चतुर्भुजदास, गोविन्द-स्वामी तथा छीत स्वामी थे।

मीराँ की भक्ति-भावना

वन्दे मुकुंदमरविंद दलायताक्षं
कुन्देन्दु शङ्खदशनं शिशुगोपवेषम्।
इंद्रादिदेव गणवन्दितपादपीठं
वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम्॥

मीराँबाई के सारे लौकिक जीवन में, अथ से इति तक, एक प्रबल आकांक्षा निरन्तर हरि-मिलन की बनी रही और सारे सांसारिक ऐश्वर्य को त्यागकर तथा सच्चे सत्याग्रह के साथ सारी बाधाओं को कुचलकर वह इसी प्रयत्न में लगी रहीं। इन्होंने साधु-सत्संग किए, अपने इष्टदेव के अनेक धामों का पर्यटन किया और सैकड़ों पद बनाकर उनमें अपने हृदयस्थ उद्गारों को प्रकट किया। उनकी आकुल आकांक्षा, उत्कट इच्छा, नित्य स्मरण, विरह की व्याकुलता आदि इनके एक एक पद से स्पष्ट है अतः इन सबके तारतम्य पर कुछ विचार करते हुए इनके पदों का कुछ विवेचन करना उचित है।

प्रायः देखा जाता है कि मधुकर गुञ्जन करता हुआ पुष्पों पर तल्लीन हो मँड़राता रहता है, पर वह ऐसा किस कारण करता है। वह किसी आकांक्षा ही से ऐसा करता है और उस आकांक्षा की कुछ-कुछ पूर्ति होती रहती है, इसी से वह उसमें बराबर लगा रहता है। उसके आस्वाद्य वस्तु का उसे आस्वादन मिलता है और इसी से उसको आकांक्षा होती है। जिसका आस्वादन मिल ही नहीं सकता वह आस्वाद्य नहीं और उसके लिए किसी को आकांक्षा भी नहीं हो पाती। मधुकर तीव्र गंध चम्पा की आकांक्षा नहीं करता क्योंकि वह उसके लिए आस्वाद्य नहीं है। मधुर सुगंधि युक्त पुष्पों ही पर वह मँडराता है क्योंकि वह उनका आस्वादन करता है अतः उनकी आकांक्षा

करता है। मानव-प्रकृति भी जहाँ सौंदर्य देखती है, चाहे वह प्राकृतिक शोभा हो, मानव-कृति हो, सुन्दर स्त्री-पुरुष हों, वहीं वह लुब्ध हो उसे देखती रहती है। यह सौन्दर्य-पिपासा सभी में कम अधिक मात्रा में वर्तमान रहती है और उसके लिए सभी चञ्चल रहते हैं। जो वस्तु जिसे अच्छी लगती है उसे पाकर वह आनन्द का अनुभव करता है, यह सत्य है पर यदि उससे भी अच्छी वस्तु मिलती है तो उसे अधिक आनन्द मिलता है और मनुष्य क्रमशः उससे अधिक-तर अच्छी वस्तु की खोज करता है। इस कारण वह तृष्णा कभी शान्त नहीं होती। जितनी ही सुन्दर से सुन्दर इच्छित वस्तु मिलती है उतनी ही यह तृष्णा, पिपासा, आकांक्षा आगे को बढ़ती है। इस लोक में मनुष्य जितना ही अधिक सुख, आनन्द, मन-वांछित ऐश्वर्य, सौंदर्य आदि पाता जाता है उतनी ही उसकी तृष्णा बढ़ती है। मोह के कारण उसकी तृप्ति नहीं होती, वह सदा उस पूर्ण सौन्दर्य, पूर्ण आनन्द की ओर दृष्टि लगाये रहता है, जिसके आगे और कुछ नहीं है। वही अनुभाव्य, आस्वाद्य तथा आकांक्षा की सीमा है।

परन्तु क्या वह पूर्ण सौन्दर्य प्राप्य है और यदि है तो कहाँ है? इसके देश, काल आदि के अनुसार अनेक आदर्श हो सकते हैं पर क्या सभी आदर्श एक से होंगे या हो सकते हैं? समय के साथ इन आदर्शों की कल्पना में बहुत कुछ भिन्नता भी आ सकती है और विभिन्न रुचिर्हि लोकः, जो एक को सुन्दरतम लगता है वही दूसरे को वैसा नहीं ज्ञात होता। ऐसी अवस्था में किसी पूर्ण सौंदर्य के आदर्श की कल्पना का प्रश्न नहीं उठता पर तब भी वह अनु-भाव्य है। सौंदर्य का अनुभव होता ही है और यह भी निश्चय है कि ऐसा पूर्ण सौंदर्य नहीं प्राप्य है, जहाँ सौंदर्य की सीमा समाप्त हो जाती हो। उत्तरोत्तर सौंदर्य-विकास के आस्वादन से अतृप्त आकांक्षा के बनी रहने पर भी पूर्ण सौंदर्य आस्वाद्य या अनुभाव्य हो जाता है। आरम्भिक आस्वादनकाल ही योग या मिलन था तथा बाद की अतृप्त आकांक्षा ही वियोग या विरह है। पर ध्यान रखना चाहिए कि यह चिरंतन वियोग नहीं है, इसके मूल में योग है और यही कारण है कि पुनर्मिलन के लिए उत्कट आकांक्षा बनी रहती है। जो मिलन आस्वाद्य या अनुभाव्य ही न होगा उसके लिए आकांक्षा, विरह या पुनर्मिलन की इच्छा ही क्यों होगी? अवश्य ही यह कह सकते हैं कि वह योग, उसकी अनुभूति, उसकी स्मृति अस्पष्ट होती है।

पर लिखा जा चुका है कि पूर्ण सौंदर्य देश या काल विशेष
बद्ध नहीं होता अतः पूर्ण सौन्दर्य वृत्तियों का विषय नहीं हो
। मनोवृत्ति देश या काल में सीमित होती है और इसी से
आंशिक सौंदर्य ही में लिप्त रह जाती है। वृत्तिज्ञान द्वारा
सौंदर्य का बोध होता है वह सापेक्ष, देश-कालांतर्गत, क्रमिक
कसनशील होता है पर पूर्ण सौंदर्य इन सबसे परे है। दोनों एक
ते भी भिन्न हैं। न इन्हें एक कहा जा सकता है और न भिन्न
। वास्तव में पूर्ण सौंदर्य की आकांक्षा होते भी उसका बोध स्पष्ट
रूप में नहीं होता और इसी के लिए सभी की इच्छा होती है। कभी
कभी स्पष्टता का आभास मिल जाता है पर वृत्तियाँ उसे ग्रहण नहीं
कर पातीं और इसी से अतृप्ति, वियोग बना रह जाता है। ऐसा
ज्ञात होता है कि हृदय पर एक आवरण सा है, जो एक दम उसे
वेष्ठित नहीं किए हुए है और इसी से स्पष्टता का आभास मिलकर
अस्पष्टता बनी ही रह जाती है। इसी आवरण का हटना ही
अस्पष्टता को दूर करना है पर यह हो कैसे ?

यह तो कहा जा सकता ही है कि किसी आगंतुक कारण विशेष
से ऐसा हो सकता है और ऐसा, विशेषकर, बाह्य पदार्थों के स्वरूप
ज्ञान से होता है। स्वच्छ श्वेत शीशे पर जिस प्रकार विभिन्न रंगों
के सन्निधान से विभिन्न रंगों का आभास होने लगता है उसी प्रकार
अनेक वस्तुओं के साक्षात् से चित्त उन्हीं वस्तुओं की वृत्तियाँ धारण
करता है। प्रत्येक वस्तु का रूप, सौंदर्य आदि भिन्न होने से
उनकी सत्ता विभिन्न होती है, उनका ज्ञान तथा आस्वादन भिन्न
होते हैं और भिन्न होती है उनकी अनुभूति। पर तब भी सत्ता
ज्ञान तथा आस्वादन और अनुकूल अनुभूति एक ही है, समष्टि रू
में। इसी ज्ञान से आनन्द की उत्पत्ति होती है क्योंकि मनोनुकू
ज्ञान या अच्छा लगना ही आनन्द या सौन्दर्य-बोध है और इ
प्रतिकूल ज्ञान ही दुखद है। सत्ता ही जब ज्ञान है तब वह नित्य
है और जब ज्ञान आनन्द है तब वह नित्य संवेद्यमान आनन्द है।
नित्य संवेद्यमान आनन्द ही रस है। यह रसास्वादन अखंड तथ
अनुभूति का स्वरूप है, वृत्ति न होकर रसस्फूर्ति है।

इस प्रकार देखा जाता है कि सत्ता तथा ज्ञान रस
नहीं है प्रत्युत उनका रस में अन्तर्निवेश है। तब रस
भी अनेक है, सामान्य होते भी विशिष्ट है। प्रत्येक वस्तु

सत्ता है और एक का अभाव दूसरा पूरा नहीं कर सकता अतः रस भी बहुत हैं क्योंकि स्फूर्ति तथा आस्वादन की विशिष्टता बहुत हैं। इसीलिए अलंकार शास्त्रियों ने रसों को शास्त्र के व्यवहार-सौकर्य के निमित्त श्रेणीबद्ध किया है। जैसे खाद्य पदार्थों के रसों में जातिगत भेद बने हैं उसी प्रकार यह श्रेणी विभाजन भी है। शर्करा, ईख, अंगूर, शहद आदि सभी के स्वाद विभिन्न हैं पर ये सब मधुर रस के अन्तर्गत माने जाते हैं किंतु निमक, मिर्च को इसमें स्थान नहीं मिल सकता, ये अन्य रसों में परिगणित होंगे। तात्पर्य यही है कि जिस प्रकार प्रयोजनवश भिन्न भिन्न स्वादवाली अनेक वस्तु एक जाति के अन्तर्गत मान ली जाती हैं, उसी प्रकार सत्ता, ज्ञान आदि विशेषताओं युक्त अनेक रस एक ही रस में परिगणित कर लिए जाते हैं। इस तरह रस अनन्त होते भी शास्त्रीय निर्दिष्ट संख्यक हैं और इस प्रकार कहा जा सकता है कि वे मूलतः एक ही है।

असंख्य रसों में से शास्त्रकारों ने कुछ ही का रस होना निर्दिष्ट किया है, ऐसा क्यों? सूक्ष्मतः विचार करने से देखा जाता है कि कुछ रस ऐसे हैं जो स्वतः शुद्ध भाव से रस कहे जा सकते हैं पर अधिकतर ऐसे हैं जो अन्य में मिल जाते हैं इसलिए वे रस न होकर रसाभास कहे जाते हैं। रसों में भी कुछ का आस्वाद स्थायी तथा कुछ का अस्थायी होता है पर उन आस्वादनों में कोई तारतम्य नहीं होता। जैसे किसी सौंदर्य पर रीझना यह एक विशिष्ट सौंदर्य का आस्वादन मात्र है पर इसमें वह आत्मविस्मृति जब तक न हो कि अन्य सभी विषयांतर को भूलकर एकमात्र अपने को उसी विशिष्ट सौंदर्य में लीन करदे तब तक वह मलिन ही रहता है, गम्भीर नहीं होता। दोनों अवस्थाओं में आस्वादन वही रहता है, कोई नई विशेषता नहीं आती पर आत्मविस्मृति होने पर वह निर्मल तथा गम्भीर अवश्य हो जाता है। अनन्यता, एकनिष्ठा तथा एकाग्र-बुद्धि हो जाने से रस स्फूर्ति हो जाती है, सामान्य रस के साथ विशिष्ट रस भी व्यक्त हो उठता है। भोक्ता तथा भोग्य एकाकार हो जाते हैं। अब यह देखना है कि यह अवस्था स्थायी है या पुनः लौटकर वही पूर्वावस्था आ सकती है। योग के उपरांत वियोग या मिलन के बाद विरह। वास्तव में वियोग विरह योग तथा मिलन के साथ साथ ही लगे रहते थे पर अप्रच्छन्न रूप में। यह एक संस्कार ही है पर क्या इसे काटा जा सकता है? यदि ऐसा हो सके तो वह निर्मल

गंभीर रसास्वाद अबाधित रूप में चिरकाल तक स्थायी बना रहे। पर यह तो हुई है कि सामान्य तथा विशिष्ट में भेद नहीं है, वे विरोधी नहीं हैं, एक दूसरे के अनुकूल हैं।

ऐसा भी कहा जाता है कि रससामान्य में विशिष्टता आरोपित भेद मात्र है, स्वगत नहीं और केवल उपाधि भेद से आगन्तुक भेद भासित होते हैं परन्तु यह सिद्धान्त यथार्थ नहीं ज्ञात होता। रस एक है, यह भी सत्य है और बहुत से रस हैं, यह भी मिथ्या नहीं है। विभाव, अनुभाव आदि के वैचित्र्य ही से यह अनेकता आती है पर ये सब भी तो मूलतः रस ही के अंग हैं। इनके बिना रस की कल्पना ही कैसे हो सकती है? यह अवश्य है कि विशिष्ट रस के आस्वादन के बिना सामान्य रस का ज्ञान नहीं हो सकता और जब विशिष्ट रसस्फूर्ति होती है तब साथ ही सामान्य रस का स्फुरण होता है अतः रसस्फूर्ति में दोनों ही मिले होते हैं। यदि इनमें विशेष का निषेध हो जाय तो सामान्य ही रह जायगा। जैसे सुवर्ण सामान्य है, आभूषणादि विशिष्ट हैं और यदि इनकी विशेषताएँ दूर कर दी जायँ तो सामान्य ही रह जायगा। तात्पर्य यह कि सामान्य का आश्रय लेने पर ही विशिष्ट का स्फुरण हो सकता है। आधार के होने ही से आधेय और उपादान के आश्रय ही से कार्य हो सकता है। इसके विपरीत मत ठीक नहीं है। तब भी इनका वस्तुभेद अवश्य ही होता है क्योंकि विशेष ही के कारण एक रस अनेक रस हो जाते हैं। यही विशेषता उपाधि है, जिसे साधारणतः बाह्य तथा अनित्य कहेंगे परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है क्योंकि यह सामान्य में अंतरंग भाव से लगा हुआ है। इसलिए रस एक होते भी अनेक है और प्रत्येक विलक्षण तथा विशिष्ट। विशिष्ट ही अधिक स्वाभाविक है पर किसी बाह्यकारणसम्बन्ध से नहीं. और यह बाह्यत्व तभी तक है जब तक रस की अभिव्यक्ति नहीं होती।

अब देखना चाहिए कि यह उपाधि अनित्य क्यों नहीं है। यों तो संसार की सभी वस्तु उपाधि स्वरूप हैं और यदि इन सब को अनित्य तथा असत् न माना जाय तो यह प्रश्न स्वतः उपस्थित हो जाता है। पर यदि ऐसा न माना जाय तो असत् या अनित्य से तात्पर्य क्या होता है? यही कि जो एक बार अभिव्यक्त हुआ या देखा गया वह पुनः उसी रूप में नहीं देखा जाता अर्थात् निरंतर परिवर्तन होता रहता है। यह भी हो सकता है कि जिसके द्वारा

देखा जाता है वही चित्तवृत्ति क्रमशः बदलती रहती है या दोनों का द्वन्द्व हो। यदि किसी उपाय से चित्तवृत्ति में स्थिरता आसके तो रूप में भी स्थिरता आ जाय या रूप के स्थिर होने पर वृत्ति भी स्थिर हो जाय। सारांश यह कि एकाग्रता होने पर जो रूप प्रतिभासित होगा वह अचंचल तथा अपरिवर्तनशील होगा। जब तक यह एकाग्रता रहेगी, ऐसा ही होगा और यदि वह स्थायी हो तो वह भी स्थायित्व प्राप्त कर लेगा। अस्थिर चित्त के लिए ठीक इसके विपरीत होता रहेगा पर स्थिर चित्त पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता। एकाग्रता भंग हो सकती है पर वह भी चित्त ही के कारण होगी परन्तु जब रजोतम का अभाव होने से सत्व शुद्ध रह जायगा तब वह नित्य या इच्छानुसार स्थितिशील हो जायगी। संसार के यावत् रूप उस महाप्रकाश की विशिष्ट प्रकाश रश्मियाँ मात्र हैं। यदि एकाग्रता भंग होने से वह रूप तिरोहित हो जाय तो भी उसे पुनः उद्भासित किया जा सकता है क्योंकि वह महाप्रकाश के लिए तिरोहित नहीं हो सकता। इस प्रकार यह निश्चित है कि उपाधि नित्य तथा सत्य है और जिस अवस्था में वह रूप इच्छानुरूप प्रकाशमान हो वह बाह्य नहीं है, प्रकाश ही का अंग स्वरूप अर्थात् अनन्य रूप में अवस्थित है।

इस प्रकार उपाधि जब नित्य ही अन्तरंग भाव से प्रकाशमान है तब अनंत विशिष्ट रस भी अभिव्यक्त ही है। वह नित्यसिद्ध है, साध्य नहीं। तब हम उसे वृत्ति के अधीन बतलाकर उसे अव्यक्त कहते हैं और अभिव्यंजक साधन उस आवरण को हटाकर नित्यसिद्ध रस को उद्बुद्ध कर देता है तथा स्वतः उसी के अन्तर्गत हो जाता है। अतः विशिष्ट रस भेद तथा संख्या में सदा ही अनंत है पर उसकी स्थिति दो प्रकार से है। प्रथम में सामान्य रस में विशिष्ट अन्तर्लीन भाव से रहता है और द्वितीय में परिस्फुट भाव से। यदि कहा जाय कि रसमात्र विशेषात्मक हैं, सामान्य नहीं तो वह समीचीन नहीं क्योंकि, जैसा कहा जा चुका है कि, सामान्य के अभाव में विशेष हो नहीं सकता। तात्पर्य यह कि रस में, एक होते भी, अनंत वैचित्र्य शक्ति है जो कभी कभी प्रस्फुटित होती है चाहे वह उस शक्ति को प्रस्फुटित करे या प्रस्फुट वैचित्र्य को अपने में अंतर्लीन करले। यही शक्ति या उपाधि रस का शरीर है, जो सूक्ष्म रूप से उसी में लगा रहता है या स्थूल भाव से प्रकट।

इसमें तुम के भाव का आश्रय लेकर भक्त अपना उद्‌गार प्रगट कर रहा है। कहीं कहीं अहं का भाव लेकर उद्‌गार प्रगट किया जाता है।

कभी कभी साधारण मनुष्य-जीवन में ऐसा शुभ अवसर आ जाता है कि अहं का भाव अतिक्रमण करके उसमें कुछ पूर्णाहंता का आभास आ जाता है और तब वह संसार की सभी वस्तु को, अपने को भी, विस्मयविमुग्ध होकर देखता है, सभी वस्तु उसे अपूर्व सुषमा से मंडित दिखलाई पड़ती हैं। सुख दुःख, स्तुति-निन्दा, अच्छा-बुरा सभी एक से माधुर्यपूर्ण समझ पड़ते हैं। अन्तर-बाहर सर्वत्र एकसा माधुर्य प्रवाहित होता ज्ञात होता है और यही पूर्ण रसबोध की अवस्था है। इसमें मिलन में भी आनन्द और विरह में भी आनन्द।

जो मैं वही तुम और जो तुम वही जगत् तब जो आत्मप्रेम है उसी का दूसरा पक्ष भगवत्प्रेम है और इसी प्रकार भगवत्प्रेम का दूसरा पक्ष जीव एवं जगत् के प्रति दयाभाव है। मूल वस्तु एक है तथा अद्वितीय है। पूर्ण रस के उद्‌बुद्ध होने ही पर इस एक तथा अखंड प्रेम का विकास होता है। परन्तु भेद दृष्टि से जीव, जगत् तथा परमेश्वर में स्वरूपगत विलक्षणता भी है और पूर्ण रसास्वादन के समय यह भी अवश्य स्पष्ट होता है, नहीं तो आस्वदन की पूर्णता असिद्ध हो जायगी।

इस प्रकार पूर्ण रसानुभूति के समय एक जीव जो आनन्द प्राप्त करता है वही आनन्द अन्य जीव भी उसी अवस्था को पहुँचने पर करेगा क्योंकि दोनों ही पूर्ण अहं की अवस्था में होने के कारण वस्तुतः आस्वदन कर्त्ता के रूप में एक ही हो जाते हैं। यही नित्य-सिद्ध ब्रह्मानन्द है पर इतना ही कहने से काम नहीं चलेगा। प्रत्येक जीव का स्वभाव भिन्नता लिए हुए होता है और जिस आनन्द का एक जीव जिस प्रकार आस्वादन लेता है वैसा ही दूसरा नहीं ले सकता, यह मानना ही होगा। तब आस्वादन के अनंत भेद होंगे। ब्रह्मानंद प्राप्त होने पर भी प्रत्येक जीव की आनन्द प्राप्ति की संभावना में कमी नहीं होती। इस स्थिर आनन्द से नित्य नए अपरूप आनंद प्रस्फुटित होते रहते हैं। इसी विशिष्ट आनंद को लेकर भगवान् के साक्षी जीवं का रहस्यमय संबंध होता है और यही संबंध रससाधना की सार्थकता है। यही कारण है कि रसिकजन विशिष्टता

रहित सामान्यात्मक ब्रह्मानंद की प्राप्ति को रसचर्चा का परमफल नहीं मानते—स्वायंभुव आगम में कहा है—

ब्रह्मानंदरसादनंतगुणितो रम्यो रसो वैष्णवः।
तस्मात् कोटिगुणोज्ज्वलश्च मधुरः श्रीगोकुलेन्दो रसः॥

ब्रह्मानंद रस से अनंत गुण अधिक रम्य वैष्णव रस है और उससे भी कोटि गुणा उज्ज्वल श्रीगोकुलेंदु का मधुर रस है। तात्पर्य यह कि ब्रह्मानंद रस में माधुर्य नहीं है, यहाँ तक कि वैष्णव रस में अर्थात् क्षीरसागर शायिन् परमात्मानंद रस भी शांत तथा दास्य से आगे नहीं बढ़ता, उनमें माधुर्य की सम्भावना नहीं। माधुर्य तो भगवदानंद रस ही में है, सख्य तथा वात्सल्य रसों का अतिक्रम करके इस उज्ज्वल रस में ही माधुर्य की पराकाष्ठा है।

प्रत्येक व्यक्ति के साथ सामान्य का एक गूढ़ आंतरिक संबंध है और व्यक्ति उस सामान्य को सामान्यभाव से पाकर तृप्त नहीं होता प्रत्युत् विशिष्टभाव से अनंतकाल तक के लिए पाना चाहता है। यदि पाजाता है तो वही यथार्थ रसिक है। सामान्य का प्रत्येक व्यक्ति के साथ ऐसा मिलन अत्यन्त गुप्त स्थान में होता है। उस जनहीन कुञ्ज में और किसी को जाने का अधिकार नहीं है, वहाँ सामान्य उसी एक व्यक्ति का है, अन्य का नहीं। यों तो प्रत्येक व्यक्ति ही सामान्य से कह सकता है कि तुम हमारे ही हो और यह सत्य भी है पर यह भी तो सत्य है कि सामान्य सभी का समान रूप से है, किसी का निजी नहीं है। श्रीकृष्ण जिस प्रकार राधावल्लभ हैं उसी प्रकार सभी गोपियों के वल्लभ हैं पर इसमें भी एक रहस्य है। जब तक श्रीकृष्ण गुप्त स्वधाम में रहते हैं और कोई वहाँ नहीं जा सकता तब तक तुम हमारे हो यह कहा जा सकता है और यही भाव राधा-भाव कहलाता है। जो गोपी इस महाभावमय भाव में प्रतिष्ठित है वही राधा हैं।

रस ही आनन्द है, रस ही प्रेम है और यही भगवान् की स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति का सारांश है। इसीसे वैष्णव आचार्यों ने प्रेम को आनन्द चिन्मय रस कहा है। रसस्फूर्ति के समय अलौकिक त्रिपुटी—भोक्ता, भोग्य तथा भोग में पृथकता का आभास नहीं रहता क्योंकि वैसा होने ही पर रसस्फुरण हो सकता है। 'भोक्तैव भोगरूपेण सदा सर्वत्र संस्थितः'। ये तीनों एकात्मक हैं केवल त्रिपुटी के अनुरोध से तीनों का प्रयोग मात्र किया जाता है। वास्तव में

पूर्ण अहं ही नित्य अपना ही आस्वादन करता है। यह आस्वादन शुष्क ज्ञान नहीं है, भावमय अनुभूति है। अतः प्रेम का आलम्बन उसीसे नित्य संलग्न रहता है। आलंबन आश्रय तथा विषय भेद से दो प्रकार का होता है। आश्रय या भोक्ता के संबंध में कुछ कहना नहीं है पर विषयालंबन सौंदर्य है। जो अच्छा लगे वही सौंदर्य है और अच्छा लगना ही प्रेम है अतएव दोनों तत्वतः अभिन्न होते भी रसस्फुरण के विचार से नित्य संबंधित हैं।

साधारणतः भी देखा जाता है कि जो जिसे अच्छा लगता है वह उसे सुन्दर ही प्रतीत होता है चाहे वह असुन्दर ही क्यों न हो और जो प्रत्यक्ष ही सुन्दर है वह आपही आप अच्छा लगने लगता है। दोनों ही पक्ष का संबंध स्वतः होता है। ऐसी अवस्था में रसानुभूति किस ओर से है स्पष्ट नहीं कहा जा सकता अतः दोनों पक्ष समानरूपेण सत्य हैं। या यों कहें कि प्रेम तथा सौंदर्य दोनों का पारस्परिक संबंध है, कौन पूर्व है और कौन पर है, इसका उत्तर ही नहीं है।

जिस प्रकार सौंदर्य तथा सुन्दर एक है उसी प्रकार प्रेम तथा प्रेमी एक है। उपाधि भेद से सौंदर्य भले ही अनन्त हो पर सुन्दर एक ही है वैसे ही उपाधि भेद से प्रेम अनन्त होने पर भी प्रेमी एक ही है। प्रेमी अहं है तो सुन्दर तुम है। संसार का जितना सौंदर्य है सभी जब एक सौंदर्य है तब तुम अद्वितीय सुन्दर है और जब सभी प्रेम मूलतः एक है तब एकमात्र अद्वितीय प्रेमी अहं है। तुम्हारा अनन्त सौंदर्य, हमारा अनन्त प्रेम, यही हमसे तुमसे नित्य लीला है। अवश्य ही इस लीला की स्फूर्ति तभी संभव है जब हम तुम स्वरूपतः भिन्न रहें। रसेश भगवान् श्रीकृष्ण ही रस के विषय तथा आश्रय हैं और वस्तुतः भक्त तथा भगवान् अभिन्न हैं। केवल लीलारस के आस्वादन के लिए ही अभेद में रूपभेद आ-जाता है। लीला अनन्त, धाम अनन्त, आस्वादन भी अनन्त। इसी-से पूर्ण सौन्दर्य चिरपुरातन होते भी भक्त रसिक के लिए नित्य नूतन ज्ञात होता है। यही सौंदर्य या प्रेयः प्रेम का एकमात्र विषय उसी प्रकार है, जिस प्रकार सत्य श्रद्धा का और निश्रेयस ज्ञान का है।

प्रेम तथा सौंदर्य की उपमा प्यास तथा जल से दी जा सकती है। प्यास ही विरह है, यही मिलन की अस्पष्ट स्मृति का उद्दीपक तथा मिलन का संघटक भी है। प्यास का अर्थ ही जल की इच्छा

है अतः जल का स्मरण करने से उसकी प्राप्ति होती है। 'ध्यानादिभावं स्मृतिरेव लब्ध्वा चिंतामणिस्त्वद्विभवं व्यनक्ति' अर्थात् स्मृति ही चिंतामणि है जो सर्वसिद्धिप्रदान करनेवाली है। स्मृति तथा अनुभव में केवल कालगत भेद है क्योंकि स्मृति अस्पष्ट अनुभव है और अनुभव स्पष्ट हुई स्मृति है। जिस वस्तु के पाने की तीव्र इच्छा, आकुल आकांक्षा उठती है वही प्राप्त भी होती है और स्मृति का अवलंबन न करने से इच्छा के उदय होने की संभावना भी नहीं है। इच्छा जितनी ही उत्कट होती है उतनी ही शीघ्र कहीं न कहीं प्राप्ति होती है। जैसे,

दरस बिन दूखण लागै नैन।
जब के तुम बिछुरे प्रभु मोरे कबहुँ न पायो चैन ॥
कल न परत पल हरि मग जोवत भई छमासी रैन।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे दुख मेटण सुख दैन ॥

कितनी आकुल आकांक्षा उत्कट इच्छा दर्शन के लिए इस पद से प्रगट होती है! यह भी इससे स्पष्ट है कि यह आकांक्षा आस्वाद्य है, कभी इसका आस्वादन मिल चुका है और इसीलिए यह दर्शन-पिपासा इतनी तीव्र है कि वह एक एक शब्द से स्पष्ट होरही है। उसीकी स्मृति उद्दीपक का कार्य कर रही है और वही मिलन के अनुभव को भी स्पष्ट करेगी। और भी—

तनक हरि चितवौ जी मोरी ओर—
हम चितवत तुम चितवत नाहीं दिल के बड़े कठोर ॥
मेरी आसा चितवन तुमरी और न दूजी दौर।
अँखियाँ श्याम मिलन को प्यासी।
आप तो जाय द्वारिका छाये लोक करत मेरी हाँसी ॥

यह ध्यान रखना होगा कि मीरा अपने को एक गोपी मानती थीं और यह कि भगवान् ने पूर्वजन्म में वचन दिया था कि इस जन्म में मिलेंगे। यही स्मृति इनकी तीव्र इच्छा का कारण थी—

माई मैं तो लियो रमैयो मोल।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर पुरब जनम को कौल।
मेरे प्रीतम प्यारे राम कूँ लिख भेजूँ री पाती।
स्याम सनेसो कबहुँ न दीन्हों जान बूझ गुझ बाती ॥
मीराँ कहे प्रभु कबरे मिलोगे पूरब जनम के साथी।

इसी उत्कट मिलन इच्छा के कारण ही वह आशा भरे स्वर में कह उठती हैं कि,

म्हाँने चाकर राखोजी गिरधारी लाला, म्हाँने चाकर राखोजी।
चाकरी में दरसण पाऊँ, सुमिरण पाऊँ खरची।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बाताँ सरसी॥
मीराँ के प्रभु गहिर गँभीरा सदा रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसण दैहैं प्रेम नदी के तीरा॥

अन्त में सर्वसिद्धिप्रदायिनी चिंतामणि रूपी स्मृति अपना नाम सार्थक करती है और तब मीराबाई कहने लगती हैं कि—

सहेलियाँ साजन घरि आया हो।
बहोत दिनाँ की जोवती बिरहण पिव पाया हो॥ २८८॥
म्हारा ओलगिया घर आया जी।
तन की ताप मिटी सुख पाया हिलमिल मंगल गाया जी।
मगन भई मिलि प्रभु अपणा सूँ भौ का दरद मिटाया जी॥
मीराँ बिरहणि सातल होई दुख दुँद दूरि न्हसाया जी॥२८९॥

मिलन होने पर भी सांसारिक अनस्थिरता पर दृष्टि रखते हुए कहती हैं कि—

साजन सुधि ज्यों जाणौं त्यों लीज्यो जी।
म्हे तो दासी जनम जनम की कृपा रावरी कीज्यो जी।
राति दिवस मोहि ध्यान तिहारो आपही दरसन दीज्यो जी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर मिलि बिछुरन मति कीज्यो जी॥२९०॥

मीरा की प्रेमभक्ति साधारण नहीं है, जन्म जन्म की वह अपने को भगवान की दासी समझती है और उसे दिन रात्रि दर्शन पाने का ध्यान बना रहता है। अवश्य ही इससे मीरा का सामान्य (श्रीकृष्ण) से आंतरिक गूढ़ संबंध ज्ञात होता है और वह विशिष्ट भाव से अनंतकाल के लिए 'मिलि बिछुरन मत कीज्यो जी' उन्हें प्राप्त करना चाहती है। यह तो स्पष्ट ही है कि यदि भगवान् अपने भक्त पर कृपा करते हैं तो उसे दर्शन अवश्य देते हैं पर क्या वह ऐसा 'तमाशा' बनाकर करेंगे? मीरा के पदों से ज्ञात होता है कि उन्हें भगवान से मिलने का अवश्य संयोग हुआ था, चाहे स्वप्न में या प्रत्यक्ष पर संसार की दृष्टि से परे हुआ था। परंतु ऐसे मिलन से तृप्ति नहीं होती, वह भगवान का निरन्तर दर्शन चाहती हैं। उस पूर्ण सौंदर्य का दर्शन

कर मीरा उसका नित्य निरन्तर दर्शन करती रहना चाहती हैं। इसी बात की प्रार्थना वह बार बार अनेक पदों में करती हैं।

माई मैं तो गोविंद सों अटकी।
चकित भये हैं दृग दोउ मेरे लखि शोभा नट की॥
'मीराँ' प्रभु के संग फिरेगी कुंज कुंज लटकी।
बिनु गोपाल लाल के सजनी को जानै घट की॥

मीराँ की भक्ति या जिसे वह स्वयं 'बालपना की प्रीति' कहती हैं क्रमशः बढ़ती रही। भक्ति नव प्रकार की कही गई है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
वंदनं अर्चनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्॥

पुराणों से यह ज्ञात होता है कि कौन कौन भक्त किस किस प्रकार की भक्ति के लिए प्रसिद्ध हो गए हैं।

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षितरभूत् वैयासिकी कीर्तने
प्रह्लाद स्मरणे तदंघ्रि भजने लक्ष्मीः पृथु पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवंदने च हनुमान् दास्ये च सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कैवल्यमेषां पदम्॥

श्रवण भक्ति परीक्षित ने, कीर्तन नारदादि ने, स्मरण प्रह्लाद ने, पादसेवन लक्ष्मी ने, वंदन अक्रूर ने, दास्य हनुमान ने, सख्य अर्जुन ने और आत्मनिवेदन बलि ने किया था। इन सबने कैवल्य पद प्राप्त किया। इन नव प्रकार की भक्ति में उस प्रेम-भक्ति का उल्लेख नहीं हुआ है जिसमें भक्त कहता है कि 'तुम हमारे ही हो'। इसीमें भक्त अपने को भगवान से भिन्न मानते हुए भी अभिन्न रहना चाहता है। 'भक्तानुकंपितधियेह गृहीत मूर्तेः' महामहिमशाली परब्रह्मपरमेश्वर ही जो आदर्शचरित्र करते हैं, उन्हीं का गान, ध्यान, स्मरण आदि कर मानव समस्त सांसारिक कष्टों से मुक्ति पाता है। आत्मदर्शन ही जीवन की सर्वोच्च कामना है और इसका श्रेष्ठतम उपाय उपासना ही है परंतु जब इस इच्छा से जीव उसके चरण-कमलों की शरण लेता है तो वह उसे भूलकर उन्हीं श्रीचरणों की ओट में रहने का इच्छुक बन जाता है। आत्मदर्शन से इष्ट-दर्शन की आकांक्षा विशेष तीव्र हो पड़ती है और यही प्रेमभक्ति है।

भक्ति को अनुराग भी कह सकते हैं और जब यह पराकाष्ठाको पहुँचती है अर्थात् अपने इष्टदेव के दर्शन की लालसा तीव्रतम हो-जाती है तभी मिलन की संभावना होती है। इसी भक्ति के सब भेदों

होकर सांसारिक मोहपाश में बँधे हुए कविगण हैं, जिनका ध्येय उदर पोषण के लिए अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करना मात्र है। जिन कवियों के हृदय भक्ति से उमड़ रहे हैं वे ही ईश्वरीय लीला से मुग्ध होकर भक्ति तथा प्रेम के उद्‌गार अपनी कविता में वास्तविक रूप में प्रकट कर सकते हैं, जिसे पढ़कर या सुनकर भक्तगण के हृदय रसस्निग्ध होकर ईश्वर के प्रति आकर्षित होते हैं और भगवान् के दिव्य स्वरूप का अनुभव करते हैं। यही भक्ति कविता है।

शृंगार ही रसराज है और जैसा लिखा जा चुका है कि मूलतः रस एक ही है पर उसके अनेक विभाग सुविधा के लिए कर लिए गये हैं। भक्ति भी एक रस है जो शृंगार ही के अन्तर्गत माना जाता है परन्तु शृंगार का स्थायी भाव जब रति है तब भक्ति का श्रद्धा है और दोनों भावो में बहुत विभिन्नता है। प्रथम के वर्णन में सांसारिक प्रेम ही का वर्णन होता है, उसमें श्रद्धा-भक्ति का पूर्ण अभाव होता है परन्तु द्वितीय में सारा वर्णन श्रद्धा-भाव पर अवलम्बित रहता है, उसमें प्रेम, शृंगार, केलि आदि किसी का भी वर्णन क्यों न हो। ऐसी कविता के पठन-श्रवण या कीर्तन से अधिकारी श्रोता या भक्त के हृदयों में भक्ति ही का उद्रेक होता है परन्तु अनाधिकारियों के हृदयों पर केवल उसके वाह्य सांसारिक रूप ही का प्रभाव पड़ता है और श्रद्धा के अभाव में वे उसके ईश्वरीय प्रेम या भक्ति के अंश से प्रभावान्वित नहीं हो पाते। ऐसे ही लोग इस प्रकार की कविता में अश्लीलता का घोर दोष देखा करते हैं और मनमाना बकते हैं।

श्रीकृष्णलीला में ऐश्वर्य के होते भी माधुर्य ही की अधिकता है और श्रीराम लीला में माधुर्य के साथ ऐश्वर्य का आधिक्य है। प्रथम में गोकुल-वृंदावन के गोपाल या गोपीकृष्ण ही की लीलाओं का प्राधान्य है जैसे दानलीला, रासलीला, फागलीला, आदि का। कारण यह कि इस संप्रदाय के प्रवर्तकों तथा भक्तों ने श्रीकृष्ण के बाल तथा कैशोर रूप ही की उपासना की प्रथा चलाई और उनके मथुरा, द्वारिका या महाभारत के युवा तथा प्रौढ़ रूपों का ग्रहण नहीं किया। इसीसे इनके लीलावर्णन में वात्सल्य तथा माधुर्य ही की प्रमुखता है। श्रीरामलीला में श्रीरामचन्द्र की शक्ति, शील तथा ऐश्वर्य ही के विवरण अधिक लिए गए हैं अतः उसमें माधुर्य की कमी है।

गोपियों ने भक्ति की एक निजी प्रेम पद्धति चलाई थी, जिसके आगे बड़े बड़े ऋषि मुनि ज्ञानियों ने हार मानी थी और उसी पद्धति को मीराबाई ने अपनाया था। इन्हें न किसी से दीक्षा लेनी थी और न इन्हें किसी गुरु की आवश्यकता पड़ी। न इन्होंने किसी संप्रदाय में दीक्षित होने का प्रयास किया और न किसी से अपने प्रेमभक्ति मार्ग के लिए प्रोत्साहन प्राप्त किया। इनकी भक्ति स्वभावजा थी जो जन्म ही से इन्हें प्राप्त थी। यह अपने को पूर्व जन्म की गोपी मानती थीं और उपास्य देव श्रीकृष्ण की पतिभाव से भक्ति करती थी। कहती हैं—

रास रच्यो वंसीबट जमुना तादिन कीनो कोल रे।
पूरब जन्म की मैं हूँ गोपिका अधबिच पड़ गयो झोल रे॥
तेरे कारन सब जग त्याग्यो अब मोहें कर सो लोल रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर चेरा भई बिन मोल रे॥

माई म्हाँने सुपने में बरी गोपाल।
राती पीती चुनडी ओढ़ी मेंहदी हाथ रसाल॥
म्हारी बालपना की प्रीति न माज्यो रैना।
जमुना के तीराँ तीराँ धेनु चरावै वंसी बजावै गावै ताना॥

यह कांत भाव की उपासना क्रमशः बढ़ती गई और यह सत्संग तथा संकीर्तन भी करने लगीं। इस पर मना करने पर कहती हैं—

गोविंद सूँ प्रीत करत तबहिं क्यों न हटकी।
अब तो बात फैल परी जैसे बीज बट की॥
जल की घुरी गाँठ परी रसना गुन रट की।
अब तो छुड़ाय हारी बहुत बार झटकी॥

इस प्रकार मीराँ का श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग इतना बढ़ा कि वह केवल उन्हें ही एकमात्र अपना आश्रय समझने लगीं और उनका किसी अन्य पर विश्वास तक नहीं रह गया—

हरि मेरे जीवन प्रान-अधार।
और आसरो नाँही तुम बिन तीनूँ लोक मँझार॥

अतः मीराबाई ने श्रीकृष्ण में पतिभाव रखकर उसी प्रकार भक्ति आरम्भ की जिस प्रकार सूरदास ने सख्य भाव, तुलसीदास ने दास्य भाव, श्रीवल्लभाचार्य ने वात्सल्य भाव तथा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने प्राणेश्वर भाव से की थी। वह बालिका होते तथा वयः प्राप्त होने पर भी समझती थीं कि सांसारिक जीवन में तो उन्हें यहाँ के

सभी जंजाल सहन करने पड़ेंगे ही पर साथ ही वह अपनी अडिग भक्ति पर भी सदा दृढ़ रहीं। उनके कुछ पद लेकर साधारण अनधिकारी लोगों ने उन पर आक्षेप किए हैं और उनके पातिव्रत्य के सम्बन्ध तक में निंदा की है। जैसे एक पद है—

श्री गिरिधर आगे नाचूँगी।

नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊँ प्रेमीजन को जाचूँगी।
प्रेम प्रीति को बाँधि घूँघरू सुरत की कछनी काछूँगी॥
लोक लाज कुल की मर्जादा या में एक न राखूँगी।
पिव के पलँगा जा पौढूँगी मीरा हरि रँग राचूँगी॥

ऐसे पदों पर विशेष आक्षेप हुए हैं पर ध्यान देने की बात है कि क्या यह श्रीगिरिधर कोई सांसारिक पुरुष थे, जिन्हें लेकर ऐसा भद्दी बातें कही गई हैं। यह तो केवल एक मूर्ति मात्र है, जिसमें भक्त अपने इष्टदेव का आरोप कर उसके सम्मुख भजन कर रहा है। इस कार्य में बाधक किसी प्रकार की सांसारिक मर्यादा, लोक-लज्जा आदि की वह उपेक्षा करता है और अन्त में कहता है कि वह अवश्य अपने इष्टदेव को प्राप्त कर लेगा। आक्षेप कर्त्ताओं ने यह भी न सोचा कि मीराबाई अपने 'पिय' श्रीगिरिधर मूर्ति के वित्तेभर की पलंगड़ी पर किस प्रकार जा पौढ़ेंगी। यह तो मिलन की भावना मात्र है। भक्ति मार्ग में शारीरिक सम्बन्ध का, चाहे वह पति-पत्नी भाव हो, स्वामी-दास भाव हो या सखा भाव हो, तो कोई ध्यान ही नहीं होता वह तो अभेद भाव रखकर आत्मा का समर्पण मात्र होता है। पति-पत्नि भाव संबंध अन्य संबंधों से मिलन के लिए अत्यन्त प्रबल होता है और जितनी उत्कट आकांक्षा इसमें होती है, यदि सत्य प्रेम हो, तो वैसी किसी अन्य में नहीं होती, यह नित्य अनुभूत है।

मीराबाई का समय पर सांसारिक श्रेष्ठतम वर से विवाह हुआ और अपने श्वसुरालय भी गईं पर दैवयोग से वह थोड़े ही दिनों बाद विधवा हो गईं। अब हिंदू विधवा के लिए, जिसके आगे सन्तान भी न हो, सिवा ईश्वर के भजन में जीवन व्यतीत करने के और क्या रह जाता है और यही मीरा ने किया भी। इन्होंने सारे सांसारिक वैभव तन-मन सब कुछ भगवान् को अर्पण कर दिया। कहती हैं—

राणा जी मैं साँवरे रँगराती ।
मेरा पिया मेरे हृदय वसत है यह सुख कह्यो न जाती ॥
झूठा सुहाग जगत का री सजनी होयहोय मिट जासी ।
मैं तो एक अविनासी वरूँगी जाहे काल न खासी ॥

इस प्रकार एक अविनाशी परमेश्वररूप श्रीकृष्ण का वरण कर सच्चे दृढ़ सत्याग्रह के साथ मीरावाई उनके प्रति भक्ति करती रहीं और जिस प्रकार पत्नी सारे संसार को त्याग कर भी अपने पति को नहीं त्यागती वैसाही इन्होंने भी किया । सारा संसार रूठे या प्रसन्न रहे, इसका ध्यान पतिव्रता पत्नी को नहीं रहता—

म्हारे हिरदे लिख्यो जी हरि नाम अब नाहीं बिसरूँ ।
एक आड़ी गुरु गोविंद खड़ा एक आड़ी सब संसार ।
कैसे तोड़ूँ राम सों म्हारो भो भोरो भरतार ॥
संसारी निंदा करे रूठो सब परिवार ।
भक्तिहीन पापी घणा राणाँ के दरबार ॥

मीराँबाई के श्रीगिरिधर प्रीतम कैसे थे ? उनकी प्रेम-भक्ति क्या थी ? स्वयं कहती हैं—

मेरे मन राम नाम बसी ।
तेरे कारन स्याम सुंदर सकल लोगाँ हँसी ।
कोई कहे मीराँ भई बावरी कोई कहे कुल नसी ।
कोई कहे मीराँ दीप आगरी नाम-पिया सूँ रसी ।
खाँड़ धार भक्ति की न्यारी काटिहै जमफँसी ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर सबद सरोवर धँसी ॥

मीराँ नाम-पिया से प्रेम कर रही है और इसीसे समझदारों ने तो उन्हें दीपआगरी कहा पर जो वैसे नहीं है वे ही उन्हें बुरा भला कहते हैं । वह तो स्पष्ट कहती हैं कि 'मेरा पिया मेरे हीय वसत है ना कहुँ आती जाती ।', 'गिरिधर कंत गिरिधर धनि म्हाँरे, मात-पिता वोह भाई ।' वही गिरिधर तो मीरा के जीवन-सर्वस्व हैं । आक्षेपकर्ताओं को इस प्रकार आक्षेप करते समय ध्यान रखना चाहिए कि मीराबाई 'रणबंका राठौड़' से उच्च राजकुल की क्षत्रियाणी थीं और उससे भी अधिक प्रतिष्ठित कुल सीसोदिया राजवंश की पुत्रवधू थीं । वह सत्यमार्ग से कभी भी विचलित नहीं हो सकती थीं । 'असूर्यम्पश्या' राजकुल रमणी का वंशपरंपरा की मर्यादा के विरुद्ध भक्ति-भाव तथा साधु-सत्संग करने के कारण ही उनके घर के लोग उन्हें उपदेश देने

तथा समझाने लगे कि वह ऐसा न करें। परन्तु मीराँ की भक्ति कच्ची न थी, उनका बाला-हठ अपूर्व था और उन्हीं का सत्याग्रह सच्चा था। उन्होंने सांसारिक मान-अपमान, राजवैभव, मर्यादा सभी को भार समझकर त्याग दिया और गाने लगीं—

प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनो रे, मने लागी कटारी प्रेमनी रे।
जल जमुना माँ भरवा गया ताँ हती गागर माथे हमनी रे।।
काँचे ते ताँत तो हरि जीये बाँधी जेम खेंचे तेम तेमनी रे।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर शामली सुरत शुभ एमनी रे।।

आत्मसमर्पण का कैसा सुन्दर भाव इसमें भरा है। प्रिय कच्चे सूत से बाँधकर उन्हें जिस प्रकार चाहता है नचाता है। ऐसे विराग-पूर्ण प्रेमभक्ति की मतवाली मीरा को भी अपने जीवनकाल ही में अपने लोगों की इस प्रकार की कटूक्तियाँ सुननी पड़ी थीं और उन्होंने केवल यही कहा कि

भली कहो कोई बुरी कहो मैं सब लई सीस चढ़ाय।

और साथही कैसा सुन्दर मार्मिक उपालम्भ भी दिया है कि

मीराँ गिरिधर हाथ बिकानो, लोग कहैं बिगड़ी।

मीराबाई ने जिस प्रकार की भक्ति का अपने पदों में वर्णन किया है उसे कुछ लोग शृङ्गारिक कहते हैं पर यदि वे सूक्ष्मरूप से उनपर विचार करेंगे तो जान पाएँगे कि वैसा वर्णन दिखावट मात्र है और उसके अन्तर में भक्ति ही भरी हुई है। उपास्यदेव के शृङ्गार, आरती, झूलन, राधाकृष्ण-विलास आदि लीलाओं का प्रेम भाव से गायन करने की प्रथा ही चल पड़ी थी और है। उन लीलाओं के पदों का श्रवण-भजन करते-करते तथा स्वयं पद बनाकर गाते गाते मीराबाई स्वयं एक गोपी बनगईं और उसी प्रकार इष्टदेव श्रीकृष्ण के मिलन की आशा तथा न मिलने के विरह में विरहाकुला गोपियों के समान जीवन भर कातर बनी रहीं। मिलन होना दूर दर्शन तक मिलना सम्भव नहीं रह गया—

दरस बिन दूखण लागे नैन।
जब के तुम बिछुरे प्रभु मोरे कबहुँ न पायो चैन।।
कल न परत पल हरि मग जोवत भई छमासी रैन।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे दुख मेटण सुख दैन।।

प्रतीक्षा करते करते आँखे दुखने लगीं, क्षण भर के लिए भी चैन नहीं मिला पर वह क्या करे, मिलन की आशा लगाए उसने

अपना एकाकी जीवन बिता दिया। 'कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी कठिन बिरह की धार' होते भी वह उसे झेल गईं। छमासी रात्रि में आँखें लग जाने से स्वप्न में मीराबाई को श्रीकृष्ण के जो दर्शन एकाएक मिल गए तो

मैं जु उठी प्रभु आदर देण कूँ जाग पड़ी पिउ ढूँढि न पाए।
और सखी पिउ सूति गमाए मैं जु सखी पिउ जागि गमाये।

विरह में न जागने में चैन, न सोने में सुख और मीराबाई की आशा भी क्या ?

मेरे आसा चितवनि तुमरी और न दूजी दौर।
तुम से हमकूँ एक होजी हमसी लाख करोर॥

पर इस आशा की भी कहाँ पूर्ति होती थी ? वह घबड़ाकर कहती है—

सखी मेरी नींद नसानी हो।
बिनि देख्याँ कल नाहिं पड़त जिय ऐसी ठानी हो।
अंग छीन व्याकुल भई मुख पिय पिय बानी हो॥
अन्तर वेदन बिरह की वह पीड़ न जानी हो।
'मीराँ' व्याकुल विरहिणी सुध बुध बिसरानी हो॥

विरहाकुला मीरा पपीहा की बोली पर कुढ़कर कहती है कि

पिव मेरा मैं पीव की रे तू पिव कहै सु कूँण।
मीराँ दासी व्याकुली रे पिव पिव करत बिहाय।
वेगि मिलो प्रभु अन्तरजामी तुम बिन रह्यो न जाय।

गोपी-प्रेमपद्धति को अपनाती हुई प्रेममग्ना, विरहविधुरा मीरा स्वयं एक गोपी बन गई और गोपियों के समान प्रेम-निवेदन, विरह, उपालम्भ आदि सभी का अपने पदों में वर्णन किया। कहा है—

तुम बिन मेरी कौन खबर ले गोवरधन गिरिधारी।
मोर मुकुट पीताम्बर शोभे कुंडल की छवि न्यारी॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर चरन कमल बलिहारी।

जब जीव को संसार में किसी का आश्रय नहीं रह जाता तभी वह सर्व आशामय भगवान ही को एकमात्र अपना आश्रय मान लेता है और किसी भी भाव से उसी को अपना समझकर आत्मनिवेदन किया करता है। अपने प्रिय श्रीकृष्ण को जोगी तथा अपने को योगिनी मानकर मीरा कहती है—

जोगी मत जा मत जा मत जा।
पाँइ परूँ मैं चेरी तेरी हौं, जोगी मत जा मत जा मत जा।
प्रेमभगति को पैंड़ो ही न्यारो हम कूँ गैल बता जा।
अगर चँदण की चिता बनाऊँ अपने हाथ जला जा।
जल बल भई भस्म की ढेरी अपने अंग लगा जा।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर जोत में जोत मिला जा॥

प्रेमभक्ति का मार्ग ही निराला है, जिसे प्रिय ही बतला सकता है और इसी से उसी से प्रार्थना की गई है। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि यदि सीधा मार्ग नहीं है तो कम से कम इतनी ही सहायता करो कि मैं अपने शरीर को भस्मकर देती हूँ तो उस भस्म को अपने शरीर में लगा लो क्योंकि योगी हुई हो और विभूति की तुम्हें आवश्यकता रहती ही है। इस प्रकार हमारी आत्म-ज्योति परमात्म-ज्योति में मिल जायगी। श्रीमद्भागवत के ध्यानयोग का ४५ वाँ श्लोक इसी भाव का है, जो नीचे दिया जाता है।

एवं समाहितमतिर्मामेवात्मनमात्मनि।
विचेष्ट मयि सर्वात्मन् ज्योतिर्ज्योतिषि संयतम्।

प्रियतम से मिलन की इतनी प्रबल आकांक्षा थी कि यदि इस शरीर से न हो सके तो आत्मा ही का मिलन हो जाय। वह अपने प्रियतम में इतनी तन्मय हो गई थीं कि उन्हें किसी अन्य का भान तक नहीं रहता था। इन्होंने लीला-सम्बन्धी भी बहुत से पद कहे हैं पर उन सब में भी इनकी निजी अनुभूति की छाया पड़ती रही है। तन्मयावस्था का वर्णन इन्होंने एक गोपी की ओट में इस प्रकार कहा है।

एक गोपी दूध दही बेंचने के लिए निकली और 'दधि लेलो, दूध लेलो' कहती हुई ब्रजबीथिओं में घूमने लगी। मार्ग में श्रीकृष्ण मिल गए। गोपी का हृदयस्थ प्रेम उद्वेलित हो पड़ा और इसका गोपी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह यह भूल गई कि वह क्या बेंचने निकली है और दूध दही के बदले में उसके मुख से प्रियतम श्याम सलोना का नाम निकलने लगा। कहती हैं—

या ब्रज में कछु देख्यो री टोना।
लै मटुकी सिर चली गुजरिया आगे मिले बाबा नंद जी के छौना॥
दधि को नाम बिसरि गई प्यारी 'ले लेहु री कोई श्याम सलोना।'

वृन्दावन की कुंजगलिन में आँख लगाय गयो मनमोहना ॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर सुन्दर स्याम सुघर रसलोना ॥

उक्त भाव को सूर ने भी प्रकट किया है।

कोऊ माई लैहै री गोपालहि।

दधि को नाम स्यामसुन्दर, धन मुख चढ्यो ब्रजबालहिं।
मटुकी सीस फिरत ब्रजवीथिन बोलत वचन रसालहिं ॥
उफनत तक्र चहूँ दिसि चितवत चित लाग्यो नँदलालहिं ॥
हँसत रिसात बुलावत बरजत देखो उलटी चालहिं ॥
सूरश्याम बिनु और न भावत या विरहिन ब्रजबालहिं ॥

साहित्य-पारखी ही समझेंगे कि सूरदासजी के पद से मीरा का पद भाषा तथा भाव दोनों ही दृष्टि से ऊँचे उठ गया है। मीराँ स्त्री-हृदय अधिक पहिचान सकी हैं और ऐसा सांगोपांग वर्णन किया है कि मानों उन्होंने उस गोपी के साथ रहकर उसके चित्त के हेरफेर को देखा है या स्वयं उनकी ही अनुभूति है। उस दृश्य को देखकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है और वह कह उठती है कि अरे इस ब्रज में यह कैसा टोना है कि केवल स्वरूप दिखला कर, आँखें लगा कर ऐसा वश कर लिया कि वह और सब भूल गई तथा केवल श्री-कृष्ण का नाम अपना नित्य कार्य करते हुए भी जपने लगी। इसके बाद एक पंक्ति में श्रीकृष्ण के मनोमोहक रूप का भी उल्लेखकर दिया। इसके विपरीत सूर आरंभ करते हैं 'कोऊ माई लैहै री गोपालहिं।' एकाएक इसे पढ़तेही ऐसा ज्ञात होता है कि कोई वास्तव में गोपाल को दे देने की इच्छा ही से कह रही है, वह उसके लिए भार हो रहे हैं। सूरदासजी किसी को इस प्रकार कहते सुनकर आगे की पंक्तियों में उसकी टिप्पणी करते हैं और उसे विरहिनी ब्रजबाला मान-कर शास्त्रोक्त विरह दशा का पूरा विवरण उपस्थित कर देते हैं। है भी वास्तविक बात। मीरा गोपी बनकर श्रीकृष्ण को पति मानती हैं इसलिए ऐसे भाव को जिस प्रकार वह कह सकती हैं वैसा एक सखा किस प्रकार से कह सकता है क्योंकि प्रथम अनुभूत कहेगी तो दूसरा सुनी सुनाई। मीरा ने सरल स्पष्ट भाषा में पूरे चित्र का वर्णन दे दिया है और प्रत्येक शब्द से वही भाव झलक रहा है पर सूरदासजी में वह बात नहीं है।

दोनों ही प्रायः समकालीन हैं, अतः एक ने दूसरे का भाव लिया

नहीं है पर यह भाव इसके पहिले विल्वमंगलजी के दामोदर स्त्रोत्र के एक श्लोक में आया है।

विक्रेतुकामाखिल गोपकन्या
मुरारि पादार्पित चित्तवृत्तिः।
दध्यादिकं मोहवशात् अवोचत्
गोविंद दामोदर माधवेति ॥

विल्वमंगलजी ने केवल तथ्य मात्र को श्लोक बद्ध कर दिया है। परमानंददासजी भी इस भाव को यों व्यक्त करते हैं—

सखी री कोऊ लेती हौ नँदलाल।
गोरस नाम बिसरि गयो ग्वालिन परी प्रेम के जाल ॥
अनकत अकत रही सी डगरत बोलत वचन रसाल ॥
उछलत दही गिरत भुव माहीं रसबस होगई बाल ॥
लोक लाज कुल की मरजादा जात रही ततकाल।
कुंजन कुंज फिरत बावर सी टूटी मोतिन माल।
'परमानंद' रसी मग ग्वालिन चलत मत्त गज चाल ॥

मीरा का रहस्यवाद

मीराबाई की जीवनी पढ़ने से ज्ञात होता है कि इतने उच्च वंशों की पुत्री तथा पुत्रवधू होने पर भी उनका जीवन विषादमय ही रहा। अल्पावस्था ही में इनकी माता का देहान्त हो गया और विवाह होने के कुछ ही समय के भीतर इनके पितामह, पिता, पितृव्य, पति, श्वसुर आदि का क्रमशः देहावसान होगया। इसी बीच इनके पितृकुल के राज्य में बड़ा उथल पुथल मचा और अंत में वह नष्ट भी होगया। पतिकुल के राज्य में अनेक उपद्रव हुए और इन सब का प्रभाव मीराबाई पर ऐसा पड़ा कि वह सभी सांसारिक ऐश्वर्य, सुख आदि से विरक्त हो गईं। जैसा लिखा जा चुका है कि इनकी श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति स्वभावजा थी और बाल्यकाल ही से यह उनकी पूजा-अर्चा में लगी रहती थीं। उनका अनुरागमय हृदय सांसारिक कष्टों के मिलने से उस भक्ति में दृढ़तर होता गया तथा संसार के प्रति विरक्ति भी उसी प्रकार बढ़ती गई। कहती हैं—

भजु मन चरण कँवल अविनासी।
जेताइ दीसे धरण गगन विच तेताइ सब उठि जासी ॥

कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हें कहा लिये करवत कासी।
इस देही का गरब न करना माटी में मिल जासी॥
यो संसार चहर की वाजी साँझ पड्याँ उठ जासी।
कहा भयो है भगवा पहर्याँ घर तज भये संन्यासी॥
जोगी होय जुगति नहिं जाणी उलटि जनम फिर आसी।
अरज करूँ अबला कर जोरें स्याम तुम्हारी दासी॥
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर काटो जम की फाँसी।

संसार में जो कुछ दिखलाई पड़ता है वह सभी समय आने पर उठ जाता है, सभी नश्वर हैं इसलिए इस शरीर का गर्व कभी न करना चाहिए। सन्यासी या योगी होने से क्या लाभ है यदि हृदय शुद्ध न हो। अन्त में वह अपने परमेश्वर श्रीकृष्ण ही से प्रार्थना करती हैं कि वही एकमात्र उसके आश्रय हैं जो इन झंझटों को दूर कर सकते हैं।

निर्गुण सम्प्रदाय की भी बहुत सी बातों का, विशिष्ट शब्दावली का, मीराबाई ने अपने पदों में समावेश किया है। कहती हैं—

त्रिकुटी महल में बना है झरोखा तहाँ से झाँकी लगाऊँ री।
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ सुख की सेज बिछाऊँ री॥

फिर कहती हैं कि—

मीरा मनमानी सुरत सैल असमानी।
जब जब सुरत लगे वा घर की पल पल नैनन पानी॥
ज्यों हिये पीर तीर सम सालत कसक कसक कसकानी।

तात्पर्य यह कि सुरत, निरत, निरंजन, ज्ञान की गुटकी, भरम-किवारी आदि बहुत से ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है पर अपने सगुण प्रेम-भक्ति का साधन ही बनाकर किया है, किसी विशेष आस्था के कारण नहीं।

मीराबाई की प्रेमभक्ति माधुर्य भाव की थी और वह श्रीकृष्ण की पति-भाव से उपासना करती थीं। माधुर्य भाव में आध्यात्मिक रहस्य आवश्यक है क्योंकि यह प्रियतम कोई साधारण सांसारिक जीव नहीं है। मीराबाई अपने इष्टदेव को सम्बोधन कर रही हैं—

तुम आज्यो जी रामा, आवत आस्याँ सामा।
तुम मिलियाँ मैं बहु सुख पाऊँ सरै मनोरथ कामा॥
तुम बिच हम बिच अन्तर नाहीं जैसे सूरजघामा।
मीराँ के मन और न मानै चाहे सुन्दर स्यामा॥

उन्होंने पदावली की रचना नहीं की। यही कारण है कि उनमें काव्य के कलापक्ष की उपेक्षा और भावपक्ष की प्रधानता है। मीराबाई ने वियोग तथा संयोग, प्रेममार्ग की दुर्गमता, विरक्ति आदि सभी का अत्यन्त मर्मस्पर्शिनी भाषा में वर्णन किया है और किया है स्वानुभूति के आधार पर। इसीसे इनके पदों का हृदय पर जितना प्रभाव पड़ता है उतना मस्तिष्क पर नहीं।

मीराँ-माधुरी

विनय के पद

हरिचरण-वंदना

राग तिलंग

मन रे परसि हरि के चरण।
सुभग सीतल कँवल-कोमल, त्रिविध ज्वाला-हरण॥
जिण चरण प्रहलाद परसे, इंद्र-पदवी-धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी शरण॥
जिण चरण ब्रह्मांड भेंट्यो, नख सिखाँ सिरी धरण।
जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गौतम-घरण॥
जिण चरण कालिनाग नाथ्यो, गोप-लीला-करण।
जिण चरण गोबरधन धार्यो, इंद्र को ग्रब-हरण[1]॥
दासि 'मीराँ' लाल गिरिधर, अगम तारण-तरण॥ १॥

तुलसीजी की स्तुति

नमो नमो तुलसी महराणी, नमो नमो हरि की पटरानी।
जाके दरस परस अघ नासै, महिमा वेद पुराण बखानी॥
शाखा पत्र मंजरी कोमल, श्रीपति-चरण-कमल लिपटानी।
धनि तुलसी पूरब तप कीन्हों, शालिगराम भई पटरानी॥
शिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक खोजत फिरे महामुनि ज्ञानी।
छप्पन भोग धरे हरि आगे, बिन तुलसी प्रभु एक न मानी॥
धूप, दीप, नैवेद्य, आरती पुष्पन की वर्षा वर्षानी।
प्रेम प्रीति करि हरि बस कीन्ही, साँवरि सुरत हृदय हुलसानी॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर भक्ति दान मोहिं दियो महरानी[2]॥२॥

---

१. पाठा०--गर्व मघवाहरण। २. आरती के समय बंगाली गायक कीर्तन में गाते हैं।

वृंदावन-माहात्म्य

आली म्हाँ ने लागे वृंदाबन नीको ।
घर घर तुलसी ठाकुर - पूजा दरसण गोविंदजी को ।
निरमल नीर बहत जमना में भोजन दूध दही को ।
रतन - सिंघासण आप बिराजै मुगट धर्‌यो तुलसी को ।
कुंजन कुंजन फिरति राधिका सबद सुणत मुरली को ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर भजन बिना नर फीको ।।३।।

यमुनाजी

चालो मन गंगा - जमना - तीर ।
गंगा - जमना निरमल पाणी सीतल होत सरीर ।
बंसी बजावत गावत कान्हो संग लियाँ बलबीर ।।
मोर मुगट पीतांबर सोहै कुंडल झलकत हीर ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरण - कँवल पै सीर ।। ४ ।।

शिवजी

शिव मठ पर सोहैं लाल ध्वजा ।। टेक ।।
कौन के सोहै हरी पीरी चुरियाँ, कौन के सोहै भसम गोला ।।
गौरी के सोहैं हरी पीरी चुरियाँ, शिव के सोहै भसम गोला ।
कौन शिखर पर गौरि विराजैं, कौन शिखर पर बम भोला ।।
उत्तर शिखर पर गौरि विराजैं, दक्षिण शिखर पर बम भोला ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, हरि के चरण पर चित मोरा ।। ५ ।।

शिव के मन मांहिं वसी कासी ।। टेक ।।
आधी काशी ब्राह्मण वनिया, आधी काशी संन्यासी ।
काह करन को ब्राह्मण वनिया, काह करन को संन्यासी ।।
नेम धरम को ब्राह्मण वनिया, तप करने को संन्यासी ।
कौन शिखर पर गौरि विराजैं, कौन शिखर पर अविनाशी ।।
उत्तर शिखर पर गौरि विराजैं, दक्षिण शिखर पर अविनाशी ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, हरि के चरण पर मैं दासी ।।६।।

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु-स्तुति

अब तो हरी नाम लौ लागी ।
सब जग को यह माखनचोरा नाम धर्‌यो वैरागी ।।

कहँ छोड़ी वह मोहन मुरली कहँ छोड़ी सब गोपी।
मूँड़ मुँड़ाइ डोरि कटि बाँधी माथे मोहन टोपी॥
मातु जसोमति माखन कारन बाँध्यो जाको पाँव।
श्याम किशोर भए नवगोरा चैतन्य जाको नाँव॥
पीतांवर को भाव दिखावै कटि कोपीन कसे।
दास भक्त की दासी 'मीराँ' रसना कृष्ण वसे[1]॥७॥

श्रीहरि-विनय

राग ललित

हमारो प्रणाम बाँके विहारी को।
मोर मुगट माथे तिलक विराजै, कुंडल अलकाकारी को॥
अधर मधुर पर वंशी बजावै, रीझ रिझावै राधा प्यारी को।
यह छवि देख मगन भई 'मीराँ' मोहन गिरवरधारी को॥८॥

निपट बंकट छवि अटके, मेरे नैना निपट०॥ टेक॥
देखत रूप मदनमोहन को पियत पियूख न मटके।
बारिज भवाँ अलक टेढ़ी मनो अति सुगंध रस अटके॥
टेढ़ी कटि, टेढ़ी कर मुरली, टेढ़ी पाग लर लटके।
'मीराँ' प्रभु के रूप लुभानी, गिरिधर नागर नट के॥९॥

भजु मन चरण - कँवल अविनासी।
जेताइ दीसे धरण - गगन - विच, तेताइ सब उठि जासी॥
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिये करवत कासी।
इस देही का गरव न करना, माटी में मिल जासी॥
थो संसार चहर की बाजी, साँझ पड़्याँ उठ जासी।
कहा भयो है भगवा पहर्याँ, घर तज भये सन्यासी॥
जोगी होय जुगति नहिं जाणी, उलटि जनम फिर जासी।
अरज करूँ अवला कर जोरें, स्याम तुम्हारी दासी॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर काटो जम की फाँसी॥१०॥

भज ले रे मन गोपाल गुणा।
अधम तरे अधिकार भजन सूँ जोइ आये हरि की सरणा।
अविस्वास तो साखि बताऊँ अजामेल, गणिका, सदना।
जो कृपालु तन, मन, धन दीन्हो नैन, नासिका, मुख, रसना।

---

१. श्रीचैतन्य महाप्रभु को लक्ष्य कर कहा गया है और दासभक्त से श्रीरघुनाथदासजी गोस्वामी से तात्पर्य है।

वृंदावन-माहात्म्य

आली म्हाँ ने लागे बृंदाबन नीको ।
घर घर तुलसी ठाकुर - पूजा दरसण गोविंदजी को ।
निरमल नीर बहत जमना में भोजन दूध दही को ।
रतन - सिंघासण आप बिराजै मुगट धर्‌यो तुलसी को ।
कुंजन कुंजन फिरति राधिका सबद सुणत मुरली को ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर भजन बिना नर फीको ॥३॥

यमुनाजी

चालो मन गंगा - जमना - तीर ।
गंगा - जमना निरमल पाणी सीतल होत सरीर ।
बंसी बजावत गावत कान्हो संग लियाँ बलबीर ॥
मोर मुगट पीतांबर सोहै कुंडल झलकत हीर ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरण - कँवल पै सीर ॥ ४ ॥

शिवजी

शिव मठ पर सोहैं लाल ध्वजा ॥ टेक ॥
कौन के सोहैं हरी पीरी चुरियाँ, कौन के सोहै भसम गोला ॥
गौरी के सोहैं हरी पीरी चुरियाँ, शिव के सोहै भसम गोला ।
कौन शिखर पर गौरि बिराजैं, कौन शिखर पर बम भोला ॥
उत्तर शिखर पर गौरि बिराजैं, दच्छिण शिखर पर बम भोला ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, हरि के चरण पर चित मोरा ॥ ५ ॥

शिव के मन माहिं बसी कासी ॥ टेक ॥
आधी काशी ब्राह्मण बनिया, आधी काशी संन्यासी ।
काह करन को ब्राह्मण बनिया, काह करन को संन्यासी ॥
नेम धरम को ब्राह्मण बनिया, तप करने को संन्यासी ।
कौन शिखर पर गौरि बिराजैं, कौन शिखर पर अविनाशी ॥
उत्तर शिखर पर गौरि बिराजैं, दक्षिण शिखर पर अविनाशी ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, हरि के चरण पर मैं दासी ॥६॥

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु-स्तुति

अब तो हरी नाम लौ लागी ।
सब जग को यह माखनचोरा नाम धर्‌यो बैरागी ॥

कहँ छोड़ी वह मोहन मुरली कहँ छोड़ी सब गोपी।
मूँड़ मुँड़ाइ डोरि कटि बाँधी माथे मोहन टोपी॥
मातु जसोमति माखन कारन बाँध्यो जाको पाँव।
श्याम किशोर भए नवगोरा चैतन्य जाको नाँव॥
पीतांबर को भाव दिखावै कटि कोपीन कसे।
दास भक्त की दासी 'मीराँ' रसना कृष्ण बसे[1]॥७॥

श्रीहरि-विनय

राग ललित

हमारो प्रणाम बाँके बिहारी को।
मोर मुगट माथे तिलक विराजै, कुंडल अलकाकारी को॥
अधर मधुर पर वंशी बजावै, रीझ रिझावै राधा प्यारी को।
यह छवि देख मगन भई 'मीराँ' मोहन गिरवरधारी को॥८॥

निपट बंकट छबि अटके, मेरे नैना निपट०॥ टेक॥
देखत रूप मदनमोहन को पियत पियूख न मटके।
बारिज भवाँ अलक टेढ़ी मनो अति सुगंध रस अटके॥
टेढ़ी कटि, टेढ़ी कर मुरली, टेढ़ी पाग लर लटके।
'मीराँ' प्रभु के रूप लुभानी, गिरिधर नागर नट के॥९॥

भजु मन चरण - कँवल अविनासी।
जेताइ दीसे धरण - गगन - विच, तेताइ सब उठि जासी॥
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिये करवत कासी।
इस देही का गरव न करना, माटी में मिल जासी॥
यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड़्याँ उठ जासी।
कहा भयो है भगवा पहर्याँ, घर तज भये सन्यासी॥
जोगी होय जुगति नहिं जाणी, उलटि जनम फिर जासी।
अरज करूँ अबला कर जोरें, स्याम तुम्हारी दासी॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर काटो जम की फाँसी॥१०॥

भज ले रे मन गोपाल गुणा।
अधम तरे अधिकार भजन सूँ जोइ आये हरि की सरणा।
अविस्वास तो साखि बताऊँ अजामेल, गणिका, सदना।
जो कृपालु तन, मन, धन दीन्हो नैन, नासिका, मुख, रसना।

---

१. श्रीचैतन्य महाप्रभु को लक्ष्य कर कहा गया है और दासभक्त से श्रीरघुनाथदासजी गोस्वामी से तात्पर्य है।

जाको रचत मास दस लागे ताहि न सुमिरौ एक दिना।
वालापन सव खेल गँवायो तरुण भयो जव रूप घना।
वृद्ध भयो जब आलस उपज्यो माया मोह भयो मगना।
गज अरु गीधहु तरे भजनसूँ कोऊ तर्यो नहिं भजन बिना।
धना भगत पीपा पुनि सेवरी 'मीराँ' की हु करो गणना ॥११॥

अव मैं शरण तिहारी जी मोहिं राखौ कृपानिधान।
अजामील अपराधी तारे, तारे नीच सदान।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढ़ी बिमान।
और अधम तारे बहुतेरे भाखत संत सुजान।
कुब्जा नीच भीलनी तारी जानै सकल जहान।
कँह लगि कहूँ गिनत नहिं आवै थकि रहे बेद पुरान।
'मीराँ' कहे मैं शरण रावरी सुनिये दीने[1] कान ॥१२॥

वेग पधारो साँवरा कठिन बनी है, आप बिना म्हारो कूँण धनी है ॥टेक॥
दुखिया कूँ देख देर मत कीजो, देर की बिरियाँ और घनी है।
दिन नहीं चैन रैन नहिं निद्रा, दुसमन के हिये हरस घनी है।
गहरी नदिया नाव पुरानी, पार करो घनश्याम धनी है।
जमड़ाँ की फौजाँ प्रभु आन पड़ी है, वेग हटावो मोटा आप धनी है।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण-कँवल बिच आन खड़ी है ॥१३॥

रामा कहिये रे, गोविंद कहिये रे ॥टेक॥
कंकर हीरा एकसार सा हीरा किसकूँ कहिये रे।
हीरा पण तो जदही जाणूँ महँगा मोल विकइये रे।
कोयल कागा एक सरीखा कोयल किसको कहिये रे।
कोयल पण तो जद ही जाणूँ, मीठा वचन सुणइये रे।
हंसा वगला एक सरीखा, हंसा किसकूँ कहिये रे।
हंसा पण तो जद ही जाणूँ, चुग चुग मोती खइये रे।
जगताँ भगताँ के आवरे है, भगताँ किसकूँ कहिये रे।
भगत पणो तो जद ही जाणूँ, वोल सभी का सहिये रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर हरि चरणाँ चित दइये रे।
द्वारका के ठाकुर के सरण में जाकर रहिये रे ॥१४॥

आये आये जी महाराज आये, अपने भक्तों के काज सारे ॥टेक॥
तजि वैकुंठ तज्यौ गरुड़ासन पवन वेगि उठि धाये ॥आये०॥

---

1 पाठा०—दोनों।

जबहीं दृष्टि परे नँद नंदन, प्रेम भक्ति रस प्याये[1]।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरण-कमल चित लाये।
आये आये जी महाराज आये ॥१५॥

हमने सुणी छै हरि अधम-उधारण।
अधम-उधारण सब जग-तारण ॥हमने०॥
गज की अरज गरज़ उठि धाये संकट पड़े तब कष्ट निवारण।
द्रुपद-सुता को चीर बधायो दुसासन को मानमद-मारण।
प्रहलाद की परतिग्या राखी हरणाकुस नख उदर विदारण।
रिखि-पतनी पर किरपा कीन्ही, विप्र सुदामा की विपति-विडारण।
'मीराँ' के प्रभु मो बंदी पर एती अबेरि भई किण कारण ॥१६॥

मेरा बेड़ा लगाय दीजो पार, प्रभु अरज करूँ छूँ।
इण भव में मैं बहु दुख पायो संसा सोग निवार।
अष्ट करम की तलब लगी है दूर करो दुख भार।
या संसार सब बह्यो जात है लख चौरासी धार।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर आवागवन निवार ॥१७॥

राग नट (दुताला)

निपट बिकट ठौर अटके, री नैना मेरे।
सुख-संपति के सब कोई साथी विपति परे सब सटके।
तजि खगराज छुड़ायो हाथी टेर सुने नहिं कहुँ अटके।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर कों तजि मूरख अनतहि भटके ॥१८॥

बँगला-तिताला

नैया मोरी हरि तुमही खिवैया, तुमरी कृपा तें पार लगैया।
गहरी नदिया नाव पुरानी पार करो बलभद्र जू के भैया।
अजामेल, गज, गणिका तारी, शबरी, अहल्या, (द्रोपदी) लाज रखैया।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर बार बार तुमरे बल गइया ॥१९॥

रामरतन धन पायो मैया, मैं तो रामरतन धन पायो ॥
खरचे न खूटे, वाकूँ चोर न लूटे, दिन दिन होत सवायो। मैया०
नीर न डूबे, वाकुं अग्नि न जाले, धरणी धर्यो न समायो ॥ मैया०
नाँव को नाँव भजन की बतियाँ, भवसागर से तार्यो। मैया०
'मीराँ' प्रभु गिरिधर के शरणे चरण-कँवल चित लायो ॥मैया० ॥२०॥

---

१ पाठा०—भक्त हेत रूप धारे।

मेरो मन रामहि राम रटै रे।
राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटै रे।
जनम जनम के खत जु पुराने, नामहिं लेत फटै रे॥
कनक कटोरे इम्रत भरियो, पीवत कौन नटै रे।
'मीराँ' कहै प्रभु हरि अविनासी, तनमन[1] ताहि पटै रे॥ २१॥

रावलो बिड़द मोंहि रूड़ो लागे, पीड़ित पराये प्राण।
सगो सनेही मेरे और न कोई बैरी सकल जहान।
ग्राह गह्यो गजराज उबार्‍यो बूड़त दियो छे जान।
'मीराँ' दासी अरज करत है नहिं जी सहारो आन॥ २२॥

लेताँ लेताँ राम नाम रे, लोकड़ियाँ तो लाजाँ मरे छे[2]।
हरि मंदिर जाताँ पावलिया रे दूखे, फिरि आवे सारो गाम रे॥
झगड़ो थाय त्याँ दौड़ीने जाय रे, मुकी ने घर ना काम रे।
भाँड़ भवैया गणिका नृत्य करताँ, बैसी रहे चारों जाम रे॥
सत्संग करताँ लांछन लागे, चर्चा करे छे वाधुँ गाम रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कँवल चित हाम रे॥२३॥

तुम सुणो दयाल म्हाँरी अरजी।
भवसागर में वही जात हूँ काढ़ो तो थाँरी मरजी।
यौ[3] संसार सगो नहिं कोई साँचा सगा रघुवरजी॥
मात पिता औ कुटुम कबीलो सब मतलब के गरजी।
'मीराँ' के प्रभु अरजी सुण लो चरण लगावो थाँरी मरजी॥२४॥

सतगुरु म्हाँरी प्रीत निभाज्यो जी।
थे छो म्हारा गुणरा सागर ओगण म्हाँरूँ मति जाज्यो जी।
लोक न धीजै (म्हारो) मन न पतीजै मुखड़ा रा सबद सुणाज्यो जी॥
मैं तो दासी जनम जनम की म्हाँरे आँगण रमता आज्यो जी।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी वेड़ो पार लगाज्यो जी॥२५॥

राम नाम रस पीजे मनुआँ, राम नाम रस पीजे।
तज कुसंग, सतसंग बैठ नित, हरि चरचा सुन लीजे॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह कूँ वहा चित्त से दीजे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर ताहि के रँग में भीजे॥२६॥

---

१ पाठा० तनयन। २ पाठा०—लेतां लेतां नारायण नु नाम, दुनिया लाजे छे। ३ पाठा०—इण।

हरी तुम हरौ जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राखी तुरत बाढ़यो चीर[1]।
भगत कारण रूप नरहरि[2] धरयो नांहिन धीर[3] ॥
बूड़तो गजराज राख्यौ कियौ बाहर नीर।
दासि 'मीराँ' लाल गिरिधर-चरण-कँवल पै सीर[4] ॥२७॥

लीला के पद

जागो बंसीवारे ललना, जागो मोरे प्यारे[5] ।
रजनी बीती भोर भयो है घर घर खुले किवारे॥
गोपी दही मथत सुनियत है[6] कँगना के झनकारे।
उठो लालजी भोर भयो है सुर-नर ठाढ़े द्वारे॥
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल जय जय सबद उचारे।
माखन-रोटी हाथ में लीनी गउवन के रखवारे॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर शरण आयाँ को तारे॥२८॥

भैया ले थारी लकरी, ले थारी काँवरी, बछियाँ चरावन हुँ न जाँऊ री।
संग के ग्वाल सब बलिभद्र कुँ न मोकलो, एकलो बन में डराउँ री॥
सघन बन में कछु खबर नाहीं परे, संग के ग्वाल सब मोहे डरावें॥
दादुर मोर पंछी युँ रटे, कृष्ण कृष्ण कही मोहे खिजावें।
माखन तो बलिभद्र कु खिलायो, हमको पिलाई खाटी छाछ री॥
बिंद्रावन के मारग जाताँ, पाऊँ में चुँभत जीनी काँकरी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण-कँवल तोरी आँख री॥२६॥

कमल-दल-लोचना, तैं ने कैसे नाथ्यो भुजंग।
पैसि पियाल काली नाग नाथ्यो, फण फण निर्त करंत।
कूद परयो न डरयो जल माँही, और काहु नहिं संक।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर श्रीवृंदावन चंद॥३०॥

गागर ना भरन देत तेरो कान्ह माई।
हँसि हँसि मुख मोड़ मोड़ गागर छिटकाई॥
घूँघट पट खोल देत, साँवरो कन्हाई।
गागर ना भरन० ॥१॥

---

१ पाठा०—तुम बढ़ायो चीर। २ पाठा०—हरिनकश्यप मार लीन्ह्यो॥ ३ पाठा०—आप सरीर। ४ पाठा०—दुख जहाँ तहँ पीर। ५ पाठा०—जागो मोहन प्यारे ललना, जागो बंसीवारे। ६ पाठा०—गोपी दधि मथन करियत है।

मेरो मन रामहि राम रटैरे।
राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटै रे।
जनम जनम के खत जु पुराने, नामहिं लेत फटैरे॥
कनक कटोरे इम्रत भरियो, पीवत कौन नटैरे।
'मीराँ' कहै प्रभु हरि अविनासी, तनमन[1] ताहि पटै रे॥ २१॥

रावलो विड़द मोंहि रूढ़ो लागे, पीड़ित पराये प्राण।
सगो सनेही मेरे और न कोई वैरी सकल जहान।
ग्राह गह्यो गजराज उवोर्‍यो बूड़त दियो छे जान।
'मीराँ' दासी अरज करत है नहिं जी सहारो आन॥ २२॥

लेताँ लेताँ राम नाम रे, लोकड़ियाँ तो लाजाँ मरे छे[2]।
हरि मंदिर जाताँ पावलिया रे दूखे, फिरि आवे सारो गाम रे॥
झगड़ो थाय त्याँ दौड़ीने जाय रे, मुकी ने घर ना काम रे।
भाँड़ भवैया गणिका नृत्य करताँ, बैसी रहे चारों जाम रे॥
सत्संग करताँ लांछन लागे, चर्चा करे छे वाधुँ गाम रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कँवल चित हाम रे॥२३॥

तुम सुणो दयाल म्हाँरी अरजी।
भवसागर में वही जात हूँ काढ़ो तो थाँरी मरजी।
यौ[3] संसार सगो नहिं कोई साँचा सगा रघुवरजी॥
मात पिता औ कुटुम कवीलो सब मतलब के गरजी।
'मीराँ' के प्रभु अरजी सुण लो चरण लगावो थाँरी मरजी॥२४॥

सतगुरु म्हाँरी प्रीत निभाज्यो जी।
थे छो म्हारा गुणरा सागर ओगण म्हाँरूँ मति जाज्यो जी।
लोक न धीजै (म्हारो) मन न पतीजै मुखड़ा रा सवद सुणाज्यो जी॥
मैं तो दासी जनम जनम की म्हाँरे आँगण रमता आज्यो जी।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी वेड़ो पार लगाज्यो जी॥२५॥

राम नाम रस पीजे मनुआँ, राम नाम रस पीजे।
तज कुसंग, सतसंग बैठ नित, हरि चरचा सुन लीजे॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह कूँ वहा चित्त से दीजे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर ताहि के रँग में भीजे॥२६॥

---

१ पाठा० तनयन। २ पाठा०—लेतां लेतां नारायण नु नाम, दुनिया लाजे छे। ३ पाठा०—इण।

हरी तुम हरौ जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राखी तुरत बाढ़्यो चीर[1]।
भगत कारण रूप नरहरि[2] धर्यो नांहिन धीर[3] ॥
बूड़तो गजराज राख्यौ कियौ बाहर नीर।
दासि 'मीराँ' लाल गिरिधर-चरण-कँवल पै सीर[4] ॥२७॥

लीला के पद

जागो बंसीवारे ललना, जागो मोरे प्यारे[5] ।
रजनी बीती भोर भयो है घर घर खुले किवारे ॥
गोपी दही मथत सुनियत हैं[6] कँगना के झनकारे।
उठो लालजी भोर भयो है सुर-नर ठाढ़े द्वारे ॥
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल जय जय सबद उचारे।
माखन-रोटी हाथ में लीनी गउवन के रखवारे ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर शरण आयाँ को तारे ॥२८॥

मैया ले थारी लकरी, ले थारी काँवरी, बछियाँ चरावन हुँ न जाँऊ री।
संग के ग्वाल सब बलिभद्र कुँ न मोकलो, एकलो बन में डराउँ री ॥
सघन बन में कछु खबर नाहीं परे, संग के ग्वाल सब मोहे डरावें ॥
दादुर मोर पंछी युँ रटे, कृष्ण कृष्ण कही मोहे खिजावें।
माखन तो बलिभद्र कु खिलायो, हमको पिलाई खाटी छाछ री ॥
बिंद्रावन के मारग जाताँ, पाऊँ में चुँभत जीनी काँकरी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण-कँवल तोरी आँख री ॥२९॥

कमल-दल-लोचना, तैं ने कैसे नाथ्यो भुजंग।
पैसि पियाल काली नाग नाथ्यो, फण फण निर्त करंत।
कूद पर्यो न डर्यो जल माँही, और काहु नहिं संक।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर श्रीवृंदावन चंद ॥३०॥

गागर ना भरन देत तेरो कान्ह माई।
हँसि हँसि मुख मोड़ मोड़ गागर छिटकाई ॥
घूँघट पट खोल देत, साँवरो कन्हाई।
गागर ना भरन० ॥१॥

---

१ पाठा०—तुम बढ़ायो चीर। २ पाठा०—हरिनकश्यप मार लीन्ह्यो ॥ ३ पाठा०—आप सरीर। ४ पाठा०—दुख जहाँ तहँ पीर। ५ पाठा०—जागो मोहन प्यारे ललना, जागो बंसीवारे। ६ पाठा०—गोपी दधि मथन करियत है।

जसुमति तैं भली बात, लाल को सिखाई।
नगर डगर झगरो करत, रारि तो मचाई ॥२॥
हौं तो बीर जमुना तीर, नीर भरन धाई।
गिरिधर प्रभु चरण-कमल 'मीराँ' बलि जाई ॥३॥२१॥

राग काफी

आज अनारी लै गयो सारी। बैठी कदम की डारी हे, माय ॥
म्हारे गैल पड़्यो गिरिधारी। हे माय आज० ॥
मैं जल जमुना भरन गई ही आ गयो कृष्ण मुरारी हे माय ॥
लै गयो सारी अनारी म्हारी जल मैं ऊभी उघारी हे माय ॥
सखी साजनि मोरी हँसत हैं हँसि हँसि दे मोहि गारी हे माय ॥
सास बुरी अरु नणद हठीली लरि लरि दे मोहि गारी हे माय ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरन कमल की वारी हे माय ॥२२॥

मुरलिया बाजै जमुना-तीर।
मुरलि सुनत मेरो मन हरि लीन्हो चीत धरत नहिं धीर ॥
कारो कन्हैया, कारी कमरिया, कारो जमुन को नीर।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरन कमल पै सीर ॥२३॥

भई हौं बावरी सुनि के बाँसुरी।[1]
स्रवन सुनत मोरी सुध-बुध बिसरी लगी रहत तामें मन की गाँसुरी।
नेम धरम कौन कीनी मुरलिया कौन तिहारे पासुरी ॥
'मीराँ' के प्रभु बस कर लीने सप्त सुरन ताननि की फाँसुरी ॥२४॥

तूँ नागर नंदकुमार, तोसें लाग्यो नेहरा।
मुरली तेरी मन हरयो बिसरयो गृह ब्यौहार ॥
जब तैं स्रवननि धुनि परी गृह अँगना न सुहाइ।
पारधि ज्यूँ चूके नहीं मृगी बेधि दई आइ ॥
पानी पीर न जाणई मीन तलफि मरि जाइ।
रसिक मधुप के मरम को नहिं समुझत कँवल सुभाइ ॥
दीपक को जु दया नहीं उड़ि उड़ि मरत पतंग।
'मीराँ' प्रभु गिरिधर मिले (जैसे) पाणी मिल गयो रंग ॥२५॥

मेरे अंगना में मुरली बजाय गयो रे ॥टेक॥
छोटे छोटे चरण बड़े बड़े नयना,
वृंदावन की कुंज गलिन में मारि गयो सैना।

---

१. महिलामृदुवाणी में इसके आगे 'हरि बिनु कछु न सुहाय माई' अधिक है।

मेरी आली मेरी आली कहो कित जाऊँ,
मुरली में गावै लै लै मेरो नाम।
ऊँची नीची घाटी मोसे चढ़ृउ न जाय,
मुरली की धुनि सुनि रह्उ न जाय।
कित गईं गैयाँ कित गये ग्वाल, कित गये बंसी बजावन हार।
गोकुल गईं गैयां बृंदावन गये ग्वाल, मथुरा में बंसी बजावन हार।
घर आईं गइयाँ घर आये ग्वाल, अजहुँ न आये मेरे मदनगोपाल।
"मीराँ" के प्रभु गिरिधर लाल, पाये हैं दर्शन भई हैं निहाल ॥३६॥

राग कल्याण

प्यारी मैं ऐसे देखे श्याम।
बाँसुरी बजावत गावत कल्याण ॥
कब की ठाढ़ी भैयाँ सुध बुध भूल गैयाँ छौने जैसे जादू डारा
भूले मोसे काम ॥
जब धुन कान पैयाँ देह की ना सुध रहियाँ तन मन हरि लीनो
बिरहों बाले कान्ह ॥
मीराँबाई प्रेम प्राया गिरिधर लाल ध्याया देह सों विदेह भैयाँ
लागो पग ध्यान ॥३७॥

बाँके साँवरिया ने घेरी मोहिं आनके।
हौं जो गई जमुना जल भरन मारग रोक्यो मेरो आनके।
बृंदावन की कुंज गली में मुरली बजावे आन तान के।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर प्रीति पुरातन जानके ॥३८॥

कान्हा रसिया बृंदावन वासी।
जमुना के नीरे तीरे धेन चरावे मुरली बजावे मृदुलासी ॥
मोर मुकुट पीतांबर सोहै श्रवण कुंडल झलासी।
"मीराँ" के प्रभु गिरिधर नागर बिना मोल की दासी ॥३९॥

आजु मैं देख्यो गिरिधारी।
सुंदर वदन मदन की सोभा चितवन अनियारी ॥
बजावत बंशी कुंजन में।
गावत ताल तरंग रंग ध्वनि नचत ग्वाल गन में ॥
माधुरी मूरति वह प्यारी।
बसी रहै निस दिन हिरदै बिच टरै नहीं टारी ॥

वाहि पर तन मन हौं वारी।
वह मूरति मोहिनी निहारत लोक लाज डारी।
तुलसी वन कुंजन संचारी।
गिरिधर लाल नवल नट नागर 'मीराँ' बलिहारी ॥४०॥

श्रीराधे रानी, दे डारो बंशी मोरी।
जा वंशी में मेरो प्राण बसत है, सो वंशी गई चोरी।
श्रीराधे रानी० ॥
काहे से गाऊँ प्यारी, काहे से बजाऊँ, काहे से लाऊँ
गैयाँ घेरी। श्रीराधे रानी० ॥
मुख से गावो कान्हाँ, हाथों से बजाओ, लकुटी से
लाओ गैयाँ घेरी। श्रीराधे रानी० ॥
हा हा करत तेरे पइयाँ परत हूँ, तरस खाओ प्यारी मोरी।
श्रीराधे रानी० ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, वंशी लेकर छोड़ी।
श्रीराधे रानी० ॥४१॥

या ब्रज में कछु देख्यो री टोना।
लै मटुकी सिर चली गुजरिया आगे मिले बाबा नंदजी के छोना।
दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी 'ले लेहुरी कोई स्याम सलोना'।
वृंदावन की कुंज गलिन में आँख लगाय गयो मनमोहना।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर सुंदर स्याम सुघर रस लोना ॥४२॥

राग मारू

कोई स्याम मनोहर ल्योरी। सिर धरैं मटकिया डोले।
दधि को नाँव बिसरि गई ग्वालनि हरि ल्यो हरि ल्यो बोले।
कृष्ण के रूप छकी है ग्वालिनि औरहि औरै बोले।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चेली भई बिन मोले ॥४३॥

सूर का एक पद—

कोऊ माई लैहै री गोपालहि।
दधि को नाम स्यामसुंदर धन मुख चढ्यो ब्रजबालहिं।
मटुकी सीस फिरत ब्रजबीथिन बोलत बचन रसालहिं।
उफनत तक्र चहूँ दिसि चितवत चित लाग्यो नँदलालहिं।
हँसत रिसात बुलावत बरजत देखो उलटी चालहिं।
सूर स्याम बिन और न भावत या बिरहिन बेहालहिं ॥

मन अटकी मेरो दिल अटकी, हो मुकुट लटक मेरो मन अटकी।
माथे मुकुट खौर चंदन की, शोभा है पीरे पट की।
शंख चक्र गदा पद्म विराजै, गुंजमाल में रहि अटकी।
अंतरध्यान भये गोपियन में, सुध न रही जमुना तट की।
पात पात वृंदावन ढूँढ़े, कुंज कुंज राधे भटकी।
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै, सुरत रही वंसीबट की।
फूलन के जामा कदम की छैयाँ, गोपियन की मटुकी पटकी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, जानैं सबके घट घट की ॥४४॥

अच्छा लेहु ब्रजवासी, कन्हैया, अच्छा लेहु रे।
बरसाने से चली गुजरिया आगे मिले महाराज रे।
दधि मेरी खायो मटुकिया री फोरी, इंडुरी कहाँ डारी लाल रे।
हार शृंगार सभी मेरो तोरो, गलमाल कहाँ डारी लाल रे।
जाय पुकारूँगी कंस के आगे, न्याय करो महाराज रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल की बलिहार रे ॥४५॥

राग हमीर

बसौ मोरे नैनन में नँदलाल।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, अरुन तिलक दिए भाल[1]।
मोहनी मूरति साँवरी सूरति नैना बने बिसाल।
अधर-सुधा-रस मुरली, राजत उर वैजंती माल।
छुद्र घंटिका कटि-तट सोभित नूपुर सबद रसाल।
'मीराँ'-प्रभु संतन सुखदाई भगतबछल गोपाल ॥४६॥

आजु हौं देख्यौ गिरिधारी।
सुंदर बदन मदन की सोभा चितवन अनियारी।
बजावे बंशी कुंजन में।
गावत तान तरंग रंग धुनि नाचत ग्वालन में।
माधुरी मूरति है प्यारी।
बसी रहै निस दिन हिरदै में टरै नहीं टारी।
ताही पर तन धन मन वारी।
वह मूरति मोहनी निहारत लोकलाज हारी।
तुलसी वन कुंजन संचारी।
गिरिधर लाल नवल नट नागर 'मीराँ' बलिहारी ॥४७॥

---

१. यह पंक्ति महिला मृदुवाणी से।

मेरो मन वसि गयो गिरिधरलाल सों।
मोर मुकुट पीताम्वरो गल वैजंती माल।
गउवन के सँग डोलत हो जसुमति को लाल।
कालिन्दी के तीर हो कान्हा गउवा चराय।
सीतल कदम की छाँहियाँ हो मुरली बजाय।
जसुमति के दुवरवाँ ग्वालिन सव जाय।
वरजहु आपन दुलरवा हम से अरुझाय।
वृंदावन क्रीड़ा करै गोपिन के साथ।
सुर नर मुनि सव मोहे हो ठाकुर जदुनाथ।
इन्द्र कोप घन वरखो मूसल जल धार।
वूड़त वृज को राखेऊ मोरे प्रानअधार।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर हो सुनिये चित लाय।
तुम्हरे दरस की भूखी हो मोहि कछु न सुहाय ॥४८॥

जदुवर लागत है मोहिं प्यारो।
मथुरा में हरि जन्म लियो है, गोकुल में पग धारो।
जन्मत ही पुतना गति दीनी अधम उधारन-हारो ॥१॥
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै, ओढ़े कामरि कारो।
सुंदर वदन कमल दल लोचन, पीतांवर पट वारो ॥२॥
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, कर में मुरली धारो।
शंख चक्र गदा पदूम विराजैं, संतन को रखवारो ॥३॥
जल डूवत व्रज राखि लियो है, कर पर गिरिवर धारो।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, जीवन प्राण हमारो ॥४॥४९॥

झिंझौटी एकताला

जव तें मोहिं नंदनंदन दृष्टि पर्‌यो माई।
कहा कहौं सुंदरताई वरनिहु नहिं जाई।[1]
कुंडल की झलकनि कपोलन पर छाई।
मनहुँ मीन सरवर तजि मकर मिलन आई॥

---

१ पाठा०—तव से परलोक लोक कछू ना सोहाई।
इसके आगे निम्नलिखित दो पंक्ति एक प्रति में अधिक है—
मोरन की चंद्रकला सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहै॥

भ्रुकुटि कुटिल चपल-नैन चितवन में टौना।
खंजन औ मधुप, मीन भूले मृग-छौना॥
अधर सधर मधुर सखी मंद मंद हाँसी।
दसन दमक दामिनि-[1]दुति चमकत चपला सी॥
चारु चिबुक नासिका सुक ग्रीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु भेष धरे रूप जग विसेषा॥
छुद्र घंटिका अनूप नूपुर अति सुहाई।
गिरिधर प्रभु अंग अंग 'मीराँ' बलि जाई॥५०॥

जब से मोहें नंद-नँदन दृष्टि पड़े माई॥टेक॥
जमुना जल भरन गई मोहन पर दृष्टि गई।
गागर भरि गृह चली भवन न सुहाई॥
गृह-काज भूलि गई सुधि बुधि विसराई।
सास ननद उलझि परीं जावँ कहाँ माई॥
मोरन की चंद्रिका किरीट मुकुट सोहे।
केसर के तिलक ऊपर तीन लोक मोहे॥
कानन में कुँडल कपोलन पर छाई।
मानो मीन सरवर तज मकर मिलन आई॥
कछनी कटि सोभे पग नूपुर विराजे।
गिरिधर के अंग अंग 'मीराँ' बलि जाई॥५१॥

नैणा लोभी रे बहुरि सके नहिं आय।
रूँम रूँम नखसिख सब निरखत ललकि रहे ललचाय॥
मैं ठाढ़ी गृह आपणे री मोहन निकसे आय।
बदन-चंद परकासत हेली मंद मंद मुसकाय[2]॥
लोक कुटुंबी बरजि बरजहीं बतियाँ कहत बनाय।
चंचल निपट अटक नहिं मानत पर हथ गये बिकाय॥
भलो कहौ कोई बुरी कहौ मैं सब लई सीस चढ़ाय।
'मीराँ' प्रभु गिरिधरन लाल बिनि पल भरि रह्यौ न जाय॥५२॥

राग सोरठ तिताला

बड़ि बड़ि अँखियन वारो साँवरो मो तन हेरो हँसि कै री।
हौं जमुना जल भरन जात ही सिर पर गागरि लसिकै री।

---

१. पाठा०—दाड़िम। २. पाठा०—सारंग ओट तजे कुल अंकुस बदन दिये मुसुकाय।

मेरो मन वसि गयो गिरिधरलाल सों।
मोर मुकुट पीताम्वरो गल वैजंती माल।
गउवन के सँग डोलत हो जसुमति को लाल।
कालिन्दी के तीर हो कान्हा गउवा चराय।
सीतल कदम की छाँहियाँ हो मुरली बजाय।
जसुमति के दुवरवाँ ग्वालिन सव जाय।
वरजहु आपन दुलरवा हम से अरुझाय।
वृंदावन क्रीड़ा करै गोपिन के साथ।
सुर नर मुनि सव मोहे हो ठाकुर जदुनाथ।
इन्द्र कोप घन वरखो मूसल जल धार।
वूड़त वृज को राखेऊ मोरे प्रानअधार।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर हो सुनिये चित लाय।
तुम्हरे दरस की भूखी हो मोहि कछु न सुहाय ॥४८॥

जदुवर लागत है मोहिं प्यारो।
मथुरा में हरि जन्म लियो है, गोकुल में पग धारो।
जन्मत ही पुतना गति दीनी अधम उधारन-हारो ॥१॥
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै, ओढ़े कामरि कारो।
सुंदर वदन कमल दल लोचन, पीतांवर पट वारो ॥२॥
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, कर में मुरली धारो।
शंख चक्र गदा पदुम विराजैं, संतन को रखवारो ॥३॥
जल डूवत व्रज राखि लियो है, कर पर गिरिवर धारो।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, जीवन प्राण हमारो ॥४॥४६॥

झिझौटी एकताला

जब तें मोहिं नंदनंदन दृष्टि पर्‌यो माई।
कहा कहौं सुंदरताई वरनिहु नहिं जाई।[1]
कुंडल की झलकनि कपोलन पर छाई।
मनहुँ मीन सरवर तजि मकर मिलन आई॥

---

१ पाठा०—तब से परलोक लोक कछू ना सोहाई।
इसके आगे निम्नलिखित दो पंक्ति एक प्रति में अधिक है—
मोरन की चंद्रकला सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहै॥

भ्रुकुटि कुटिल चपल-नैन चितवन में टौना।
खंजन औ मधुप, मीन भूले मृग-छौना॥
अधर सधर मधुर सखी मंद मंद हाँसी।
दसन दमक दामिनि-[1]दुति चमकत चपला सी॥
चारु चिबुक नासिका सुक ग्रीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु भेष धरे रूप जग विसेषा॥
छुद्र घंटिका अनूप नूपुर अति सुहाई।
गिरिधर प्रभु अंग अंग 'मीराँ' बलि जाई॥५०॥

जब से मोहें नंद-नँदन दृष्टि पड़े माई॥टेक॥
जमुना जल भरन गई मोहन पर दृष्टि गई।
गागर भरि गृह चली भवन न सुहाई॥
गृह-काज भूलि गई सुधि बुधि बिसराई।
सास ननद उलझि परीं जावँ कहाँ माई॥
मोरन की चंद्रिका किरीट मुकुट सोहे।
केसर के तिलक ऊपर तीन लोक मोहे॥
कानन में कुँडल कपोलन पर छाई।
मानो मीन सरवर तज मकर मिलन आई॥
कछनी कटि सोभे पग नूपुर बिराजे।
गिरिधर के अंग अंग 'मीराँ' बलि जाई॥५१॥

नैणा लोभी रे वहुरि सके नहिं आय।
रूँम रूँम नखसिख सब निरखत ललकि रहे ललचाय॥
मैं ठाढ़ी गृह आपणे री मोहन निकसे आय।
बदन-चंद परकासत हेली मंद मंद मुसकाय[2]॥
लोक कुटुंबी बरजि बरजहीं बतियाँ कहत बनाय।
चंचल निपट अटक नहिं मानत पर हथ गये बिकाय॥
भलो कहौ कोई बुरी कहौ मैं सब लई सीस चढ़ाय।
'मीराँ' प्रभु गिरिधरन लाल बिनि पल भरि रह्यौ न जाय॥५२॥

राग सोरठ तिताला

बड़ि बड़ि अँखियन वारो साँवरो मो तन हेरो हँसि कै री।
हौं जमुना जल भरन जात ही सिर पर गागरि लसिकै री।

---

१. पाठा०—दाड़िम। २. पाठा०—सारंग ओट तजे कुल अंकुस बदन दिये मुसुकाय।

मेरो मन वसि गयो गिरिधरलाल सों।
मोर मुकुट पीताम्वरो गल वैजंती माल।
गउवन के सँग डोलत हो जसुमति को लाल।
कालिन्दी के तीर हो कान्हा गउवा चराय।
सीतल कदम की छाँहियाँ हो मुरली बजाय।
जसुमति के दुवरवाँ ग्वालिन सव जाय।
वरजहु आपन दुलरवा हम से अरुझाय।
बृंदावन क्रीड़ा करै गोपिन के साथ।
सुर नर मुनि सव मोहे हो ठाकुर जदुनाथ।
इन्द्र कोप घन वरखो मूसल जल धार।
वूड़त वृज को राखेऊ मोरे प्रानअधार।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर हो सुनिये चित लाय।
तुम्हरे दरस की भूखी हो मोहि कछु न सुहाय॥४८॥

जदुवर लागत है मोहिं प्यारो।
मथुरा में हरि जन्म लियो है, गोकुल में पग धारो।
जन्मत ही पुतना गति दीनी अधम उधारन-हारो॥१॥
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै, ओढ़े कामरि कारो।
सुंदर वदन कमल दल लोचन, पीतांवर पट वारो॥२॥
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, कर में मुरली धारो।
शंख चक्र गदा पद्म विराजैं, संतन को रखवारो॥३॥
जल डूवत व्रज राखि लियो है, कर पर गिरिवर धारो।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, जीवन प्राण हमारो॥४॥४६॥

झिझौटी एकताला

जब तें मोहिं नंदनंदन दृष्टि पर्यो माई।
कहा कहौं सुंदरताई वरनिहु नहिं जाई।[1]
कुंडल की झलकनि कपोलन पर छाई।
मनहुँ मीन सरवर तजि मकर मिलन आई॥

---

१ पाठा०—नव से परलोक लोक कछू ना सोहाई।
इसके आगे निम्नलिखित दो पंक्ति एक प्रति में अधिक है—
मोरन की चंद्रकला सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहै॥

भ्रुकुटि कुटिल चपल-नैन चितवन में टौना।
खंजन औ मधुप, मीन भूले मृग-छौना॥
अधर सधर मधुर सखी मंद मंद हाँसी।
दसन दमक दामिनि-[1]द्युति चमकत चपला सी॥
चारु चिवुक नासिका सुक ग्रीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु भेष धरे रूप जग विसेषा॥
छुद्र घंटिका अनूप नूपुर अति सुहाई।
गिरिधर प्रभु अंग अंग 'मीराँ' बलि जाई॥५०॥

जब से मोहिं नंद-नँदन दृष्टि पड़े माई॥टेक॥
जमुना जल भरन गई मोहन पर दृष्टि गई।
गागर भरि गृह चली भवन न सुहाई॥
गृह-काज भूलि गई सुधि बुधि बिसराई।
सास ननद उलझि परीं जावँ कहाँ माई॥
मोरन की चंद्रिका किरीट मुकुट सोहे।
केसर के तिलक ऊपर तीन लोक मोहे॥
कानन में कुँडल कपोलन पर छाई।
मानो मीन सरवर तज मकर मिलन आई॥
कछनी कटि सोभे पग नूपुर बिराजे।
गिरिधर के अंग अंग 'मीराँ' बलि जाई॥५१॥

नैणा लोभी रे बहुरि सके नहि आय।
रूँम रूँम नखसिख सब निरखत ललकि रहे ललचाय॥
मैं ठाढ़ी गृह आपणे री मोहन निकसे आय।
बदन-चंद परकासत हेली मंद मंद मुसकाय[2]॥
लोक कुटुंबी बरजि बरजहीं बतियाँ कहत बनाय।
चंचल निपट अटक नहिं मानत पर हथ गये बिकाय॥
भलो कहौ कोई बुरो कहौ मैं सब लई सीस चढ़ाय।
'मीराँ' प्रभु गिरिधरन लाल बिनि पल भरि रह्यौ न जाय॥५२॥

राग सोरठ-तिताला

बड़ि बड़ि अँखियन वारो साँवरो मो तन हेरो हँसि कै री।
हौं जमुना जल भरन जात ही सिर पर गागरि लसिकै री।

१. पाठा०—दाड़िम। २. पाठा०—सारंग ओट तजे कुल अंकुस बदन दिये मुसुकाय।

सुंदर स्याम सलोनी मूरति मो हियरे में बसिकै री।
जंतर लिखि ल्यावो मंतर लिखि ल्यावो औषध ल्यावौ घसिकै री।
जो कोऊ ल्यावै श्याम वैद कों तौ उठि बैठों हँसिकै री।
भ्रुकुटि कमान बान बाँके लोचन मारत हियो कसिकै री।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर कैसे रहौं घर बसिकै री ॥५३॥

बंसीवारे की चितवन सालति है।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, तापर कलँगी हालति है॥
मैं तो छकी तुमरी छवि ऊपर, जो न छके तेहि नालति है।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरण कँवल चित लागति है ॥५४॥

राग कामोद

आली रे मेरे नैना बान पड़ी।
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी।
कब की ठाढ़ी पंथ निहारूँ अपने भवन खड़ी॥
कैसे प्रान पिया बिन राखूँ, जीवन मूर जड़ी।
'मीराँ' गिरिधर-हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगड़ी ॥५५॥

पूरबी—एकताला

माई मेरे नैनन बान परी री।
जा दिन नैना श्यामहिं देख्यो बिसरत नाहिं घरी री॥
चित बस गई साँवरी सूरत उर तें नाहिं टरी री।
'मीराँ' हरि के हाथ बिकानी सरबस दै निबरी री ॥५६॥

इस पद का दूसरा पाठ इस प्रकार मिलता है—
है मा बड़ी बड़ी अँखियन वारो, साँवरो मो तन हेरत हँसिके।
भौंहें कमान बान बाके लोचन मारत हियरे कसिके॥
जतन करो जन्तर लिखो बाँधो ओषध लाऊँ घसिके।
ज्यों तोको कछु और बिथा हो नाहिन मेरो बसिके॥
कौन जतन करों मोरी आली चन्दन लाऊँ घसिके।
जन्तर मन्तर जादू टोना माधुरी मूरत बसिके॥
साँवरी सूरत आन मिलावो ठाढ़ी रहूँ मैं हँसिके।
रेजा रेजा भयो करेजा अन्दर देखो धँसिके॥
मीरा तो गिरिधर बिन देखे कैसे रहे घर बसिके॥

राग जैजैवंती

साँवरे की दृष्टि मानो प्रेम की कटारी है।
लागत विहाल भई गोरस की सुधि गई[1]
मनहू में व्याप्यो प्रेम भई मतवारी है॥
चंद तो चकोर चाहै, दीपक पतंग जारै,
जल विना मरै मीन ऐसी प्रीति प्यारी है।
सखी मिलि दोई-चारि सुनो री सयानी नारि
उनको हौं नीके जानौं कुंज को विहारी हैं॥
मोर कौ मुकुट माथे छवि गिरिधारी
माधुरी मूरति पर 'मीराँ' वलिहारी है[2] ॥५७॥

राग गूजरी

या मोहन के मैं रूप लुभानी।
सुंदर वदन कमल-दल-लोचन बाँकी चितवन मंद मुसकानी।
जमना के नीरे तीरे धेनु चरावैं, वंसी में गावै मीठी वानी।
तन मन धन गिरिधर पर वारूँ चरण-कँवल 'मीराँ' लपटानी ॥५८॥

तेरे चरनन की वलिहारी।
जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै वाँसुरी वजावै वनवारी[3]।
मोर मुकुट पीतांवर सोहै कुंडल की छवि न्यारी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरन कमल वलिहारी ॥५९॥

कैसे आवौं हो लाल, तेरी व्रजनगरी गोकुल नगरी ॥टेक॥
इत मथुरा उत गोकुल नगरी, वीच वहे यमुना गहिरी।
पाँव धरौं मेरी पायल भीजै, कूदि परौं वहि जाउँ सगरी।
मैं दधि वेंचन जात वृंदावन, मारग में मोहन झगरी।
वरजो जसोदा अपने लाल को, छीनि लियो मेरी नथ री।
रहु रहु ग्वालिनि झूँठ न वोलो, कान्ह अकेलो तुम सगरी।
हमरो कन्हैया पाँच वरस को, तुम ग्वालिनि अलमस्त भई।
जाय पुकारो कंस राजा से, न्याव[4] नहीं मथुरा नगरी।

---

१. पाठा०—तन की सुधि वुधि गई।

२. पाठा०—विनती करौं हे श्याम लागौं मैं तुम्हारे पाँय।
'मीराँ' प्रभु ऐसे जानो दासी तुम्हारी है॥

३. पाठा०—वज्यावनहारी। ४. पाठा०—न्याय।

वृंदावन की कुंज गलिन में, बाँह पकरि राधे झगरी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, साधु संग करि हम सुधरी ॥६०॥

कहीं देखे री घनश्यामा।

मोर मुकुट पीतांबर सोहै, कुंडल झलकै काना।
साँवरी सूरत पर तिलक बिराजै, तिसमें लगे मोरे प्राना।
बरसाने सों चली गुजरिया, नंदग्राम को जाना।
आगे केशव धेनु चरावैं, लगे प्रेम के बाना।
सागर सूखि कमल मुरझाना, हंसा कियो पयाना।
भौंरा रहि गये प्रीति के धोखे, फेर मिलन को जाना।
वृंदावन की कुंज गलिन में, नूपुर रुन झुन लाना।
'मीराँ बाई' को दर्शन दीजो, ब्रज तजि, अनत न जाना ॥६१॥

बता दे सखी साँवरिया को डेरो किती दूर।

इत मथुरा उत गोकुल नगरी बीच बहै यमुना भरिपूर।
मथुरा जी की मस्त गुवालिन मुख पर बरसै नूर।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर साँवरे से मिलना जरूर ॥६२॥

एरी तेरी कौन जाति पनिहारी।

इत गोकुल उत मथुरा नगरी बीच मिले गिरिधारी।
सुंदर वदन नयन मृग मानो विधना आप सँवारी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर तुम जीते हम हारी ॥६३॥

आवत मोरी गलियन में गिरिधारी मैं तो छुप गई लाज की मारी।

कुसुमल पाग केसरिया जामा ऊपर फूल हजारी॥
मुकुट ऊपर छत्र बिराजै कुंडल की छवि न्यारी।
केसरी चीर दरयाई को लँगो ऊपर अँगिया भारी॥
आवते देखी किसन मुरारी छुप गई राधा प्यारी।
मोर मुकुट मनोहर सोहै नयनों की छवि न्यारी॥
गल मोतिन की माल बिराजै चरण कमल बलिहारी।
ऊभी राधा प्यारी अरज करत है सुणजे किसन मुरारी॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरण-कमल पर वारी ॥६४॥

राग परज

गोकुला की वासी भले ही आए गोकुला के वासी ॥टेक॥
गोकुल की नारि देखत आनंद सुखरासी।
एक गावत एक नाचत एक करत हाँसी॥

पीताँबर फेंटा बाँधे अरगजा सुवासी।
गिरिधर से सु नवल ठाकुर 'मीराँ' सी दासी ॥६५॥

सखी री मोहिं लाज वैरिन भई।
चलत लाल गोपाल के सँग काहे नाहीं गई[1] ॥
कठिन क्रूर अक्रूर आयो साजि रथ कहँ नई।
रथ चढ़ाय गोपाल लैगो हाथ मींजत रई ॥
कठिन छाती स्याम बिछुरत विदरि क्यूँ ना गई।
दासि 'मीराँ' लाल गिरिधर विरह तें तन तई[2] ॥६६॥

स्याम को सँदेसो आयो पतियाँ लिखाय माय।
पतियाँ अनूप आई छतियाँ लीनी लगाय।
अंचल की दे दे ओट ऊधो पै लई वँचाय ॥
बाल की जटा बनाऊँ अंग तो भभूत लाऊँ।
फाड़ूँ चीर पहिरूँ कंथा जोगिन बन जाऊँ माय ॥
इन्द्र के नगारे बाजे बादल की फौज आई।
तोपखाना पेसखाना उतरा है बागाँ आय ॥
गोकुल उजाड़ कीन्ही मथुरा बसाय लीन्ही।
कुबजा सूँ बाँध्यो हेत 'मीराँ' सुनाई गाय ॥६७॥

कुण बाँचे पाती, विना प्रभु कुण बाँचे पाती।
कागद ले ऊधोजी आयो, कहाँ रह्या साथी ॥
आवत जावत पाँव घिस्यारे (वाला) अँखियाँ भई राती[3]।
कागद ले राधा बाँचण बैठी, (वाला) भर आई छाती ॥
नैण-नीरज में अंबु वहे रे (वाला) गंगा वहि जाती।
पाना ज्यूँ पीली पड़ी रे (वाला), अन्न नहिं खाती ॥
हरि बिन जिवड़ो यूँ जलै रे (वाला), ज्यूँ दीपक सँग बाती।
म्हने भरोसो राम को रे (वाला) डूब तिर्यो हाथी।
दासि 'मीराँ' लाल गिरिधर, साँकड़ा रो साथी ॥६८॥

---

१. पाठा०—चलत लाल गोपाल पिय के संग क्यों ना गई।

२. दूसरी प्रति में दो पंक्ति अधिक हैं—

तुरत लिखि संदेस पिय को केहि पठाऊँ दई।
कूबरी सँग प्रीति कीनीं मोहि माला दई ॥

३. एक प्रतिमें अधिक—साँचा कुछ चंदा रे (वाला) झोलै वहि जाती।
व्रजनारी की विनती रे (वाला) राम मिले मिल जाती ॥

म्हानें वी ले चालो ऊधो साँवरा रे देस।
हार सिंगार सवै मैं त्याग्या करिस्याँ भगवा वेस।
अंग विभूति गलै मृगछाला लाँवा वँधाऊँ केस।
गोकुल छानि मथुरा हम छानी छान्यो यो वृजदेस।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर याही करम की रेष ॥६९॥

सोरठ—तिताला

ऊधो मैं वैरागिन हरि की।
भूषण वस्तर सवही हम त्यागे खान पान विसरानो।
ए व्रजवासी कहत वावरी मैं दासी गिरिधर की।
ऊधो जो तुम जावो द्वारका विपत कहो गोपिन की।
जैसे जल विन मीन ज्यों तड़पे सो गत भई सखियन की।
पात पात वृंदावन ढूँढ़्यो ढूँढ़ फिरी व्रजघर को।
आप तो जाय द्वारका छाए पीर मीटी विरहन की।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर मैं दासी गिरिधर की ॥७०॥

निज-संबंधी पद

तू मत वरजै माइड़ी साधाँ दरसण जाती।
रामनाम हिरदै वसै माहिले मदमाती॥
माई कहे सुण धीहड़ी काहे गुण फूली।
लोक सोवें सुख नींदड़ी थें क्यूँ रैणज भूली॥
गेली दुनिया वावली ज्याँ कूँ राम न भावै।
ज्याँ के हिरदै हरि वसे त्याँ कूँ नींद न आवै॥
चौभाग्याँ[1] की वावड़ी ज्याँ कूँ नीर न पीजै।
हरि नाले अमृत भरै ज्याँ की आस करीजै॥
रूप सुरंगा रामजी मुख निरखत जीजै।
'मीराँ' व्याकुल विरहणी अपणी कर लीजै ॥७१॥

मीराँ:—माई म्हाँने सुपने में परण गया जगदीस।
सोती को सुपना आवियाजी सुपना विस्वा वीस॥
मा:—गेली दीखै मीराँ वावली, सुपना आल जंजाल।
मीराँ:—माई म्हाँने सुपने में परण गया गोपाल॥
अंग अंग हल्दी मैं करी जी सुधे भीज्यो गात।

1 पाठा०—चौवाग्याँ।

माई म्हाँने सुपने में परण गया दीनानाथ ॥
छप्पन कोट जहाँ जान पधारे दूलह श्रीभगवान ।
सुपने में तोरन बाँधियो जी सुपने में आई जान ।
'मीराँ' के गिरिधर मिल्याजी पूरब जनम को भाग ।
सुपने में म्हाँने परण गयाजी हो गया अचल सुहाग ॥७२॥

दे री माई अब म्हाँकों गिरिधर लाल ।
थारे चरण की आन करति हौं, और न दै मणि लाल ॥
नात सगो परिवारो सारो, मने लगै मानों काल ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर[1], छवि लखि भई निहाल ॥७३॥

ऊदाँबाई—थाने बरज बरज मैं हारी, भाभी, मानों बात हमारी ।
राणो रोस कियो थाँ ऊपर साधों में मत जा री ।
कुल को दाग लगै छै भाभी निंदा हो रही भारी ।
साधाँ रे सँग बन बन भटकी लाज गुमाई सारी ।
बड़ा घरा थे जनम लियो छै, नाचो दै दै तारी ।
बर पायो हिंदवाणै सूरज थे काई मन धारी ।
मीराँ गिरिधर साध संग तज, चालो हमारे लारी ।
मीराँबाई—मीराँ बात नहीं जग छानी ऊदाँबाई समझो सुघर सयानी ।
साधू मात पिता कुल मेरे सजन सनेही सानी ।
संत चरण की सरण रैण दिन सत्त कहत हूँ बानी ।
राणा ने समझावो जावो ये तो बात न मानी ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर संताँ हाथ बिकानी ।
ऊदाँ०—भाभी बोलो वचन विचारी ।
साधों की संगत दुख भारी मानो बात हमारी ।
छापा तिलक गलहार उतारो पहिरो हार हजारी ॥
रतन जड़ित पहिरो आभूषण भोगो भोग अपारी ।
मीराँ जी थे चलो महल में थानें सौगन म्हारी ।
मीराँ—भाव भगत भूषण सजे, सील सँतोष सिणगार ।
ओढ़ी चूनर प्रेम की, गिरिधर जी भरतार ॥
ऊदाँबाई मन समझ, जावो अपणे धाम ।
राजपाट भोगो तुम्हीं, हमें न तासूँ काम ॥७४॥

---

[1] पाठा०—मीराँ प्रभु गिरिधरनलाल की ।

साकट जननो संग न करिये, पड़े भजन में भंग रे।
अठ सठ तीरथ संतों ने चरणे, कोटि कासी ने सेप गंग रे।
निन्दा करसे नरक कुण्ड माँ जासे, थासे आँधला अपंग रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर संतों नी रज म्हाँरो अंग रे ॥७९॥

यो तो रँग धत्ताँ लग्यो ए माय ।
पिया पियाला अमर रस का चढ़ गई घूम घुमाय।
यो तो अमल म्हाँरो कबहुँ न उतरे कोट करो न उपाय।
साँप टिपारो राणा जी भेज्यो द्यो मेणतणी-गळ डार।
हँस हँस मीरा कंठ लगायो यो तो म्हाँरे नौसर हार।
विप को प्यालो राणा जी मेल्यो दयो मेड़तणी ने प्याय।
कर चरणामृत पी गई रे गुण गोविंद रा गाय।
पिया पियाला नाम का रे और न रंग सुहाय।
'मीराँ' कहै प्रभु गिरिधर नागर काँचो रँग उड़ जाय ॥८०॥

राग खम्माच

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ।
साँप पेटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखन लागी सालिग्राम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या अम्रत दीन्ह बनाय॥
न्हाय धोय जब पीवन लागी हो गई अमर अँचाय।
सूळ सेज राणा ने भेजी दीज्यो मीरा सुलाय।
साँझ भई मीराँ सोवण लागी मानों फूल बिछाय॥
'मीराँ' के प्रभु सदा सहाई राखे विघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती गिरिधर पै बलि जाय ॥८१॥

अब नहिं मानूँ राणा थारी, मैं वर पायो गिरिधारी ॥ टेक ॥
मणि कपूर की एक गति है, कोऊ कहो हजारी।
कंकर कंचन एक गति है, गुंज मिरच इक सारी॥
जनक चरणाँ को शरणो लीनो, हाथ सुमरणी धारी।
जोग लियो अब क्या दिलगीरी, गुरु पाया निज भारी॥
साधु संगत में दिल राची, भई कुटुम्ब सूं न्यारी।
क्रोड़ बार समझायो मोहूं, चालूंगी बुद्धि हमारी॥
रतन जड़ित की टोपी सिर पै, हार कंठ को भारी।
चरण घूंघरू घमस पड़त है, रहूँ म्हाँरो स्याम सूँ यारी॥

लाज शरम सब ही मैं डारी, यो तन चरण अधारी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, झक मारो संसारी ॥८२॥

राणा जी मैं साँवरे रँगराती।
जिनके पिया परदेस बसत हैं वे लिख लिख भेजें पाती।
मेरा पिया मेरे हृदय बसत है यह सुख कह्यो न जाती।
झूठा सुहाग जगत का री सजनी, होय होय मिट जासी।
मैं तो एक अविनासी वरूँगी, जाहे काल नहिं खासी।
और तो प्याला पी पी माती, मैं विन पिये ही माती।
ये प्याला है प्रेम हरी का, मैं छकी रहूँ दिन राती।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, खोल मिली हरि से माती ॥८३॥

अब नहिं मानूँ राणा थाँरी मैं वर पायो गिरिधारी।
मनि कपूर की एकै गति है कोऊ कहो हजारी॥
कंकर कंचन एकै गति है गुंज मिरच इक सारी।
अनड़ धणी को सरणे लीनो हाथ सुमिरिनी धारी॥
जोग लियो जब क्या दिलगी री गुरु पाया निज भारी।
साधू संगत महँ दिल राजी भई कुटुँब सूँ न्यारी॥
क्रोड़ बार समझावो मोकूँ चालूँगी बुद्धि हमारी।
रतन जड़ित की टोपी सिर पै हार कंठ को भारी॥
चरण घूँघरू घमस पड़त है म्हैं कराँ श्याम सूँ यारी।
लाज सरम सब ही मैं डारी यौ तन चरण अधारी॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर झक मारो संसारी ॥८४॥

राग पीलू

पग घुँघरू बाँधि मीरा नाची रे, पग घुँघरू।
लोग कहैं मीरा हो गई बावरि, सास[1] कहे कुलनासी रे।
जहर का प्याला राणाजी भेजा पीवत मीराँ हाँसी रे।
मैं तो अपने नारायण की हो गई आपहि दासी रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर वेग[2] मिला अविनसी रे ॥८५॥

हमारे मन राधा-स्याम बसी।[3]
कोई कहे मीरा भई बावरी कोइ कहे कुलनासी।

---

१. पाठा०—न्यात। २. पाठा०—सहज। ३. इस पद का प्रायः पूरा भाव पद ८५ 'पग घुँघरू बाँधि मीरा नाची रे' का है।

खोल के घूँघट प्यार के गाती हरि ढिग नाचत गसी ।
वृन्दावन की कुंजगलिन में भाल तिलक उर लसी ।
विष को प्याला राणाजी ने भेज्या पीवत मीराँ हँसी ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर भक्तिमार्ग में फँसी ॥८६॥

मेरे राणाजी, मैं गोविंद गुण गाना ॥
राजा रूठै नगरी राखै, हरि रूठ्या कहँ जाना ॥
राणे भेज्या जहर पियाला, अमृत कहि पी जाना ॥
डबिया में काला नाग भेज्या[1], सालगराम करि जाना ॥
'मीराँबाई'[2] प्रेम दिवानी, साँवलिया वर पाना ॥८७॥

देश—सोरठ तिताला

राणाजी साँवरे रँग राँची ।
कोइ निरखत कोइ हरपत हैजी ।
कोइ कोइ करत है हाँसी, कोइ साँची ।
ताल मृदंग वजे मन्दिर में हौं हरि आगे नाँची ।
'मीराँ' दासी गिरिधर जू की जनम जनम की जाँची ॥८८॥

राणा जी मैं साँवरे रँग राँची ।
साज सिंगार बाँध पग घुँघुरू लोक लाज तज नाची ।
गई कुमति लइ साध की संगति भगत रूप भई साँची ।
गाय गाय हरि के गुन निसि दिन काल-व्याल सों बाँची ॥
उन बिन सब जग खारो लागत, और बात सब काँची ।
'मीराँ' श्री गिरिधरन लाल सों भगति रसीली जाँची ॥८९॥

राम तने रँग राँची राणा मैं तो साँवलिया रँग राँची रे ।
ताल पखावज मिरदंग बाजा साधाँ आगे नाची रे ।
कोई कहै मीरा भई बावरी कोई कहे मदमाती रे ।
विष का प्याला राणा भेज्या अमृत कर आरोगी रे ।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर जनम जनम की दासी रे ॥९०॥

राणा जी थे जहर दियो मैं जाणी ।
जैसे कंचन दहत, अगिन में निकसत बारा बाणी ।
लोक लाज कुल काण जगत की दइ बहाय जस पाणी ।
अपणे घर का परदा करले मैं अबला बौराणी ।
तरकस तीर लग्यो मेरे हिय में गरक गयो सनकाणी ।

---

१. पाठा०—डबिया में भेज्या ज भुजंगम । २. पाठा०—मीराँ तो अब ।

सब संतन पर तन मन वारौं चरण-कमल लपटाणी।
'मीराँ' कों प्रभु राखि लई है दासी अपणी जाणी ॥६१॥

राग अगना

राणा जी थे क्याँनें राखो म्हाँ सूँ वैर।
थे तो राणा जी म्हाने इसड़ा लागो ज्यों ब्रच्छन में कैर।
महल अटारी हम सब त्याग्या त्याग्यो थाँरो बसनो सहेर॥
काजल टीकी राणा हम सब त्यागा भगवाँ चादर पहेर।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर इमरित कर दियो जहेर॥९२॥

राणा जी मुझे यह बदनामी लगे मीठी।
कोई निन्दो कोई विन्दो मैं चलूँगी चाल अनूठी॥
साँकली गली में सतगुरु मिलिया क्यूँकर फिरूँ अपूठी।
सतगुरु जी सूँ बावज करताँ दुरजन लोगाँ ने दीठी॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर दुरजन जळो जा अँगीठी॥९३॥

राग सोरठ

राणांजी गिरधर रा गुण गास्याँ।
गुरु-परताप साध री संगति सहजै ही तिर जास्या।
म्हारे तो पण चरणामृत रो निति उठि देवल जास्याँ।
कथा कीरतण सुण निसि बासर महा प्रसाद ले प्यास्याँ।
सुनि सुनि वचन साध रा मुष रा निरत कराँ और नाचाँ।
प्रेम प्रतीति जाप निसि बासर बहुरि न भौ जल आस्याँ।
लोक वेद री काणि न मानूँ राम तणै रँग राचाँ।
नाँव अमोलिक इमरित रूपी सिरकै साटै ल्यास्याँ।
उमहड़ माड्यौ[1] म्हारै ऊपर विष रो प्यालो प्यास्याँ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर[2] पीवत मन न डुलास्याँ॥६४॥

सीसोद्या राणो प्यालो म्हाँने क्यूँ रे पठायो।
भली बुरी तो मैं नहिं कीन्हीं राणा क्यूँ है रिसायो।
थाँने म्हाँने देह दियो है ज्याँरो हरिगुण गायो।
कनक कटोरे लै विष घोल्यो दयाराम पण्डो लायो।
अठी उठी तो मैं देख्यो कर चरणामृत पायो।
आज काल की मैं नहिं राणा जद यह ब्रह्मण्ड छायो।
मेड़तियाँ घर जन्म लियो है 'मीराँ' नाम कहायो।

---

१. पाठा०—तुम हठ माण्ड्यो। २. पाठा०—'जन मीराँ' गिरिधर की प्यारी।

प्रह्लाद की परतिज्ञा राखी खंभ फाड़ि वेगाँ वायो।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिवर नागर जन को विड़द बड़ायो।९५।

राग पहाड़ी

सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हाँरो काँई कर लेसी।
म्हें तो गोविंद का गुण गास्याँ, हो माई॥[1]
राणो जी रूठ्यो वाँरो देस रखासी।
हरि रूठ्याँ कुठे जास्याँ, हो माई॥
लोक लाज की काँण न मानूं।
निरभै निसाँण घुरास्याँ, हो माई॥
राम नाम का झाझ चलास्याँ।
भवसागर तर जास्याँ, हो माई॥
'मीराँ' सरण सबल गिरिधर की।
चरण-कँवल लपटास्याँ, हो माई॥९६॥

मेरो मन हरि सूँ जोर्‌यो, हरि सूँ जोर सकल सूँ तोर्‌यो।
मेरी प्रीत निरंतर हरि सूँ ज्यों खेलत बाजीगर गोर्‌यो।
तब मैं चली साध के दरसण तब राणो मारण कूँ दौर्‌यो।
जहर देन की घात विचारी निरमल जल में ले विष घोर्‌यो।
जब चरणोदक सुण्यो सरवणा राम भरोसे मुख में ढोर्‌यो।
नाचन लगी जब घूँघट कैसो लोक लाज तिणका ज्यूँ तोर्‌यो।
नेकी बदीहू सिर पर धारी मनहस्ती अंकुस दे मोर्‌यो।
प्रकट निसान बजाय चली मैं राणा राव सकल जग जोर्‌यो।
'मीराँ' सबल धणी के सरणे कहा भयो भूपति मुख मोर्‌यो॥९७॥

पियाजी[2] म्हाँरे नैणाँ आगे रहज्यो जी।
नैणाँ आगे रहज्यो, म्हाँने भूल मत जाज्यो जी।
भौ सागर में बही जात हूँ, वेगाँ म्हाँरी सुध लीज्यो जी।

---

१. इस पद का निम्नलिखित पाठ भी मिलता है—
राणा जी म्हें तो गोविंद का गुण गास्याँ।
चरणाम्रित को नेम हमारे नित उठ दरसण जास्याँ॥
हरि मन्दिर में निरत करास्याँ, घूँघरिया घमकास्याँ।
राम नाम का झाझ चलास्याँ, भवसागर तर जास्याँ॥
यह संसार बाड़ का काँटा, ज्याँ संगत नहिं जास्याँ।
'मीराँ' कहै प्रभु गिरिधर नागर, निरख परख गुन गास्याँ॥
२. पाठा—साँवरिया।

राणाजी भेज्या विख का प्याला, सो इमिरित कर दीज्यो जी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीज्यो जी ॥९८॥

राग सोरठ

प्रभुजी अरज बंदी री सुण हो।
मो नुगुणी रा सुगुणा साहब अवगुणधारी रा गुण हो ॥प्रभु०॥
राणाजी विस को प्यालो भेजो मो चरणामृत को पण हो।
म्हाँरी पत परमेश्वर राषत, मारण वालो कुण हो।
प्रभुजी उचले मँदिर (सितारामजी) विराजे मोय दरसण
री पण हो ॥ प्रभुजी अरज० ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर में जाणु राणोजी कुण हो।
प्रभुजी अरज बंदी री सुण हो ॥९९॥

नैना परि गई ऐसी बानि।
नैक निहारत पिया जु के मुष तन छूटि गई कुल कानि ॥
राणैजी विष रो प्यालो भेज्यो मैं सिर लीनी मानि ॥
'मीराँ' कौं गिरिधर मिले हो पूरबली पहिचानि ॥१००॥

ऐसो पिया जान न दीजै हो।
सब सषियाँ मिलि राषिल्यौं नैना सुष लीजै हो।
स्याम सलौनौ साँवरो मुष देषत जीजै हो।
जिण जिण विधियाँ हरि मिलै सोही विधि कीजै हो।
प्रीति सलौनौ स्याम की हिरदै धरि लीजै हो।
चंदन काला नाग ज्यौं लपटाइ रहीजै हो।
चलो री सषी वहाँ जाइये वाको दरसन कीजै हो।
बाहु काँधै मेलि कै तन लूमि रहीजै हो।
प्यालो आयो जहर को चरणोदक लीजै हो।
'मीराँ' दासी बारणें अपनी करि लीजै हो ॥१०१॥

अब नहिं विसरूँ, म्हारे हिरदे लिख्यो हरिनाम।
म्हारे सतगुर दियो बताय, अब नहिं विसरूँ रे ॥टेक॥
मीराँ बैठी महल में रे, ऊठत बैठत राम।
सेवा करस्याँ साध की म्हाँ रे और न दूजो काम ॥
राणो जी बतलाइया, कइ देणो जवाब।
पण लाग्यो हरि नाम सूँ, म्हाँ रे दिन दिन दूनो लाभ ॥
सींप भरयो पानी पीवे रे, टाँक भरयो अन्न खाय।
बतलायाँ बोली नहीं रे, राणोजी गया रिसाय ॥

विषरा प्याला राणोजी भेज्या, दीज्यो मेड़तणी के हाथ।
कर चरणामृत पी गई, म्हाँरे सबल धणी को साथ॥
विष को प्यालो पी गई, भजन करे राठौर।
थारी मारी ना मरूँ, म्हाँरो राखणवालो और॥
राणोजी मो पर कोप्यो रे, मारूँ एक न सेल।
मार्‌याँ पराछित लाग सी, म्हाँने दीज्यो पीहर मेल॥
राणो मोपर कोप्यो रे, रती न राख्यो मोद।
ले जाती बैकुण्ठ में, यों तो समझ्यो नहीं सिसोद॥
छापा तिलक बणाइया, तजिया सब सिणगार।
म्हें तो शरणे राम के, भल निन्दो संसार॥
माला म्हाँरे देवड़ी, सील बरत सिणगार।
अब के किरपा कीजियो, हूँ तो फिर बाँधूँ तलवार॥
रथां बैल जुताय के, ऊँटां कसियो भार।
कैसे तोड़ूँ राम सूँ, म्हाँरे भो भोरो भरतार॥
राणो सांड्यो मोकल्यो, जाज्यो एके दौड़।
कुल की तारण इस्तरी या तो मुरड़ चली राठोड़॥
सांढ़ो पाछो फेर्‌यो रे, परत न देस्याँ पाँव।
कर सूरापण नीसरी, म्हाँरे कुण राणे कुण राव॥
संसारी निन्दा करे रे, दुखियो सब परिवार।
कुल सारो ही लाजसी, मीराँ थें जो भया जी ख्वार॥
राती माती प्रेम की, बिष भगत को मोड़।
राम अमल माती रहे, धनि 'मीराँ' राठोड़॥१०२॥

देश-सोरठ तिताला

म्हाँरे हिरदे लिख्यो जी हरिनाम अब नाहीं बिसरूँ।
मैं तो हिरदे लिख्यो जी गोपाल, अब नाहीं बिसरूँ॥
हाथी घोड़ा बहो घणा माया केर न पार।
राज तजूँ चितोड़ को गामड़ी है असी हजार॥
साध हमारी आतमा में साधन की देह।
रोम रोम में रम रह्या जों बादर में मेह॥
राती माती हरिनाम की बाँध भक्त को मोर।
राम अमल साखी फिरे धन मीरा राठोर॥
एक आड़ी गुरु गोविन्द खड़ा एक आड़ी सब संसार।
कैसे तोड़ू राम सों मारो भो भोरो भरतार॥

संसारी निंदा करे रूठो सब परवार।
कुळ सारोइ लजाइयो मीराबाई बहे अकरार॥
भक्तहीन पापी घणा राणां के दरबार।
केतो विषरा प्याला प्यायदो कै डाली कण्ठहार॥
राणें जी विषरा प्याला मोकल्या दीजो मीराँ रे हाथ।
मैं तो चरणामृत कर पी गई अब थें जाणों म्हाँरा नाथ॥
'मीराँ' विष का प्याला पी गई सोतीं, खूँटी. तान।
म्हाँरो दरद दिवाणा साँवरो म्हांने दोड़ जगावै छो आन॥१०३॥

गरुड़ चढ़ हरि अब आए मीराँ के पास।
आनँद तूर बजाय के पूरी मन की आस॥
राणां मोपर कोपियो म्हाँरो तक तक सेज।
लाज लागे छे म्हाँको दीजो पीहर भेज॥
मीराँ महल से उतरी राणे पकरथो हात।
हतलेवा रो नात रो परत न मांनू बात॥
मीराँ रथ बहल सिंगार के ऊंटां कसिया थात।
डावो मेल्यो मेड़तो पहले पोखर जात॥
राणा साथ जो मोकल्यो जाज्यो मीराँ री ओर।
कुलकी तारण इस्तरी मुरड़ चली राठोर॥
राणा मोपर कोपिया रती न राख्यो मोद।
ले जाती बैकुंठ में समझ्यो नाहिं सिसोद॥
मीराँ मुक्त दुहेलड़ी राम की जैसी खांड़े की धार।
कोइ सन्तजन विरला उतरे भव के पार॥
'मीराँ' ने प्रभु गिरिधर मिल्यो नागर नंदकिशोर।
तन मन धन सब अरपिया चरन कमल की ओर॥१०४॥

म्हारे शिर पर सालिग्राम राणाजी म्हारो काँई करसी॥टेक॥
मीरा सूं राणाने कही रे, सुण मीराँ मेरी बात।
साधाँ की संगत छाड़ दे रे, सखियाँ सब सकुचात॥
मीराँ ने सुण यों कही रे, सुण राणाजी बात।
साध तो भाई बाप हमारे, सखियाँ क्यूँ घबरात॥
जहर का प्याला भेजिया रे, दीजो मीराँ हाथ।
इम्रित करके पी गई रे, भली करे दीनानाथ॥
मीराँ प्याला पी लिया रे, बोली दोऊ कर जोर।
तैं तो मारण की करी रे, मेरो राखण वालो ओर॥

आधे जोहड़ कीच है रे, आधे जोहड़ हौज।
आधे मीराँ एकली रे, आधे राणा की फौज॥
काम क्रोध को डाल के रे, शील लिये हथियार।
जीती मीराँ एकली रे, हारी राणा की धार॥
काच गिरी का चौतराँ रे, बैठे साध पचास।
जिनमें मीराँ ऐसी दमके, लाख तारों में परकास॥
टांड़ा जब वे लादिया रे, वेगी दीन्हा जाण।
कुल की तारण अस्तरी रे, चली है पुष्कर न्हाण॥१०५॥

हेली म्हाँसूँ हरि बिन रह्यो न जाय।
सासु लड़े, म्हारी नणद खिजावे, राणा[1] रह्या रिसाय॥
पहरो भी राख्यो चौकी बिठायौ, ताला दियो जड़ाय।
पूर्व जन्म की प्रीति पुराणी, सो क्यूँ छोड़ी जाय॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, और न आवे म्हाँरी दाय।१०६

राग खम्माच

नाहिं भावै[2] थाँरो देसड़लो रँगरूड़ो।
थाराँ देसाँ माँ राणा साध नहीं छै लोग बसै सब कूड़ो॥
गहणा गाँठी राणा हम सब त्याग्या त्याग्या कर रो चूड़ो।
काजल टीको हम सब त्याग्या त्याग्यो छै बाँधन जूड़ो॥
तन की मया कबहूँ नहिं कीना ज्यूँ रण माहीं सूरो।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर बर पायो छै पूरो॥१०७॥

द्वारिका को वास हो मोहि द्वारिका को बास।
संख चक्रहुँ गदा पद्महु तें मिटै जम-त्रास॥
सकल तीरथ गोमती में आय करत निवास।
संख, झालरि, झाँझ बाजे सदा सुख की रास॥
तज्यो देसौ बास पति-गृह तज्यो संपति राज।
दासि 'मीराँ' सरन आई तुम्हे अब सब लाज॥१०८॥

अनुराग-भक्ति

माई म्हाँने सुपने में वरी गोपाल।
राती पीती चुनड़ी ओढ़ी मेंहदी हाथ रसाल॥

---

१. पाठा०—देवर। २. पाठा०—राणा जी।

काँई और को वरूँ भाँवरी म्हाँ के जग जंजाल।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर करी सगाई हाल ॥१०६॥

आवो मन मोहना जी मीठा थाँरा बोल ।
बालपनाँ की प्रीत रमइयाजी कदे नहिं आयो थाँरो तोल।
दरसण बिन मोहि जक न परत है चित मेरा डावाँडोल॥
'मीराँ' कहै मैं भई रावरी कहो तो बजाऊँ ढोल॥११०॥

मैं अपने सैयाँ सँग साँची।
अब काहे की लाज सजनी परगट ह्वै नाची।
दिवस भूख न चैन कबहूँ नींद निसि नासी।
बेधि वारक पार ह्वै गो ज्ञान गुह गाँसी।
कुल कुटुंबी आन बैठे मनहु मधुमासी।
'दासि मीराँ' लाल गिरिधर मिटी जग-हाँसी॥१११॥

म्हारी बालपना की परीति थे न माञ्यो रैना।
जमुना के तीरां तीरां धेनु चरावै बंसी बजावै गावै ताना॥
मोर मुकुट पीतांबर सोहै कुंडल झलकत काना।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर हर नौमाह रो धाना॥११२॥

मोरी गलियन में आओ जी घनश्याम॥ मोरी गलियन में०।
पिछवाड़े आये हेला दीजो, ललित सखी है म्हाँरो नाम।
पैयाँ परत हूँ बिनती करत हूँ, मतकर मान गुमान। मोरी गलियन में०
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, तोरे चरणन में ध्यान।
मोरी गलियन में आवो जी घनश्याम॥११३॥

राग पहाड़ी

हेली, मों सूँ हरि बिन रह्योइ न जाइ॥ टेक०॥
सासू लड़ै री सजनी नणद खिजै री पीव जी रह्यो री रिसाई।
चौकी भी मेलौ सजनी पहरा भी मेलौ ताला द्यो न जड़ाइ।
पूरब जनम की प्रीत हमारी सजनी सो कहाँ[1] रहै री लुकाइ।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर के बिन दूजो न आवै म्हाँरी दाइ[2]॥११४॥

विहाग—चौताला

धुतारा जोगी एक बेरीया मुख बोल रे।
कानन कुंडल गलबिच सेली अब तेरी मुन खोल रे॥

---

[1] पाठा०—क्यूँ। [2] पाठा०-मीराँ के तौ, सजनी, राम सनेही और न आवै म्हारी दाय।

रास रच्यो बंसीबट जमुना तादिन कीनो कोल रे।
पूरब जनम की मैं हूँ गोपिका अधबिच पड़गयो झोल रे॥
जगत बंदि ते तुम करो मोहन अब क्यों बजाऊँ ढोल रे।
तेरे कारन सब जग त्यागो अब मोहें कर सों लोल रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चेरी भई बिन मोल रे॥११५॥

गोविन्द सूँ प्रीत करत तबहिं क्यों न हटकी।
अब तो बात फैल परी जैसे बीज बट की।
बीच की बिचारि नांहि छाँय परी तट की।
अब चूकौ तौ ठौर नाहिं जैसे कला नट की।
जल की घुरी गाँठ परी रसना गुन रट की।
अब तो छुड़ाय हारी बहुत बार झटकी।
घर घर में घोल मठोल बानी घट घट की।
सब ही कर सीस धारे लोक लाज पट की।
मद की हस्ती समान फिरत प्रेम लटकी।
दासि 'मीराँ' भक्ति बुंद हिरदय बीच गटकी॥११६॥

राग मालकोस

श्री गिरिधर आगे नाचूँगी।
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊँ प्रेमीजन को जाचूँगी।
प्रेम प्रीति की बाँधि घूँघरू सुरत की कछनी काछूँगी।
लोक लाज कुल की मरजादा या में एक न राखूँगी।
पिव के पलँगा जा पौढूँगी 'मीराँ' हरि रँग राचूँगी॥११७॥

राग पटमंजरी

मैं तो साँवरे के रँग राँची।
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू लोक लाज तजि नाची॥
गई कुमति लइ साधु की संगति भगत रूप भई साँची।
गाय गाय हरि के गुन निसि दिन काल-व्याल सूँ बाँची॥
उण बिनि सब जग खारो लागत, और बात सब काँची।
'मीराँ' श्री गिरिधरन लालसूँ भगति रसीली जाँची॥११८॥

राग धानी

मैं गिरिधर रगराती, सैयाँ मैं०।
पँचरँग चोला पहर सखी मैं झिरमिट खेलन जाती॥
ओहि झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो खोल मिली तन गाती।

जिनका पिया परदेस बसत है लिख लिख भेजैं पाती ॥
मेरा पिया मेरे हीय बसत है ना कहुँ आती जाती ।
चंदा जायगा सूरज जायगा जायगी धरण अकासी ॥
पवन पाणि दोनुँ ही जायँगे अटल रहे अविनासी ।
सुरत निरत का दिवला सँजोया मनसा की करली बाती ॥
अगम घाणि को तेल सिंचायो बाल रही दिन-राती ।
और सखी मद पी-पी माती मैं बिन पीयाँ ही माती ॥
प्रेम भठी को मद मैं पीयो छकी फिरूँ दिन राती ।
जाऊँनी पीहरिये जाऊँनी सासरिये हरिसूँ सैन लगाती[1] ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर हरिचरणाँ चित लाती ॥११९॥

राग हमीर

हरि मेरे जीवन प्रान-अधार ।
और आसरो नाँही तुम बिन तीनूँ लोक मँझार ॥
आप बिना मोहिं कछु न सुहावै निरख्यो सब संसार ।
'मीराँ' कहै मैं दासि रावरी दीज्यौ मती बिसार ॥१२०॥

मैं गिरिधर के घर जाऊँ ।
गिरिधर म्हाँरो साँचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ ।
रैण पड़ै तब ही उठि जाऊँ भोर भये उठि आऊँ ।
रैणदिना वाके सँग खेलूँ ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ ।
जो पहिरावै सोई पहिरूँ जो दे सोई खाऊँ ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी उण बिनि पल न रहाऊँ ।
जहाँ बिठावें तितही बैठूँ बेंचै तो बिक जाऊँ ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर बार बार बलि जाऊँ ॥१२१॥

माई मैं तो लियो रमैयो मोल ।
कोई कहे छानी, कोई कहे चोरी, लियो है बजंता ढोल ।
कोई कहे कारो, कोई कहे गोरो, लियो है मैं आँखी खोल ।
कोई कहै हल्का, कोई कहै भारी, लियो है तराजू तौल ।
तनका गहना मैं सब कुछ दीन्हा दिणे हैं बाजू बंद खोल ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर पुरब जनम का है कौल ॥१२२॥

---

1 पाठा०—पीहरे बसूँ न बसूँगी सास घर सद्गुरु शब्द सुनाती ।
(रागरत्नाकर)

मेरे मन राम नाम बसी।
तेरे कारन स्याम सुंदर सकल लोगाँ हँसी।
कोइ कहे मीराँ भई बावरी कोइ कहे कुल-नसी।
कोइ कहे मीराँ दीप आगरी नाम-पिया सूँ रसी।
खाँड धार भक्ती की न्यारी काटिहै जम-फँसी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर सबद सरोवर धँसी ॥१२३॥

राग मुल्तानी

ऐसा प्रभु जाण न दीजै हो।
तन मन धन करि वारणै हिरदै धरि लीजै हो।
आव सखी मुख देखिये नैणां रस पीजै हो।
जिण जिण बिधि रीझै हरी सोई बिधि कीजै हो।
सुंदर स्याम सुहावणा मुख देख्याँ जीजै हो।
'मीराँ' के प्रभु रामजी बड़ भागण रीझै हो ॥१२४॥

चालाँ वाही देस प्रीतम पावाँ चालाँ वाही देस।
कहो कसूमल साड़ी रँगावाँ कहो तो भगवाँ भेस॥
कहो तो मोतियन माँग भरावाँ कहो छिटकावाँ केस।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर सुणज्यो विड़द नरेस ॥१२५॥

सखी म्हारो कानूड़ो कलेजे की कोर।
मोर मुगुट पीतांबर सोहै कुंडल की झकझोर॥
वृन्दावन की कुंज गलिन में नाचत नन्दकिसोर।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरण कँवल चितचोर ॥१२६॥

सोरठ तिताला

है री मा नन्द को गुमानी म्हाँरे मनड़े बस्यो।
गहे द्रुम डार कदम की ठाड़ो मृदु मुसक्याय म्हाँरी ओर हँस्यो॥
पीताम्बर कटि काछिनी काछे रतन-जटित माथे मुकुट कस्यो।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर निरख बदन म्हाँरो मनड़ो फँस्यो ॥१२७

गोपाल रंग राची मैं श्याम रंग राची।
कहा भयो जल विप के खाए तीनहु ते मैं वाची॥
तात मात लोग कुटुम्ब तिन कीनी उपहासी।
नन्दनन्दन गोपी ग्वाल तिनके आगे मैं नाची॥

और सकल छाँड़िकै मैं भक्ति काछ काँची।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर जानत झूठी साँची ॥१२८॥

मैं तो थारे दामन लागी जी गोपाल।
किरपा कीजो दर्शन दीजो सुध लीजो ततकाल॥
गळ वैजंती माल विराजे दर्शन भई है निहाळ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर भक्तन के रछपाल ॥१२९॥

हरि विन क्यूँ जीऊँ री माय।
हरि कारण बौरी भई, जस काठहि घुन खाय॥
औषध मूल न संचरै, मोहिं लागौ बौराय।
कमठ दादुर बसत जळ महँ, जलहिं ते उपजाय॥
हरी ढूँढ़न गई वन वन, कहुँ मुरली धुन पाय।
'मीराँ' के प्रभु लाल गिरिधर, मिलि गये सुखदाय ॥१३०॥

तोसों लाग्यौ नेह रे प्यारे नागर नंद-कुमार।
मुरली तेरी मन हर्यौ, विसर्यौ घर-व्यौहार॥
जब तें श्रवननि धुनि परी, घर अँगणा न सुहाय।
पारधि ज्यूँ चूकै नहीं, म्रिगी वेधि दइ आय॥
पानी पीर न जानई ज्यों, मीन तड़फि मरि जाय।
रसिक मधुप के मरम को नहिं, समझत कमल सुभाय॥
दीपक को जो दया नहिं, उड़ि-उड़ि मरत पतंग।
'मीराँ' प्रभु गिरिधर मिले, जैसे पाणी मिलि गयो रंग ॥१३१॥

आये आये जी महाराज आये॥ टेक॥
तज वैकुंठ तज्यो गरुड़ासन, पवन वेग उठ धाये।
जव ही दृष्टि परे नँदनंदन, प्रेम-भक्ति रस प्याये।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण-कमळ चित लाये ॥१३२॥

बरजी मैं काहू की न [illegible]रहूँ।
सुनौ री सखी तुम चेतन होइ कै मन की बात कहूँ॥
साध सँगति करि हरि-सुख लेऊँ जग सूँ दूरि रहूँ।
तन धन मेरो सब ही जावो भलि मेरो सीस लहूँ॥
मन मेरो लागो सुमरण सेती सबका मैं बोल सहूँ।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी सतगुर सरण गहूँ ॥१३३॥

ऐसी लगन लगाइ कहाँ तूँ जासी।
तुम देखे विन कल न परति है तलफि तलफि जिव जासी।

तेरे खातिर जोगण हूँगी करवत लूँगी कासी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरण-कँवल की दासी ॥१३४॥

गोहनै गोपाल फिरूँ ऐसी आवत मन में।
अवलोकत बारिज बदन बिवस भई तन में॥
मुरली कर लकुट लेउँ पीतबसन धारूँ।
आछी गोप भेष मुकुट गोधन सँग चारूँ॥
हम भई गुल काम-लता वृंदावन रैनाँ।
पसु पंछी मरकट मुनी स्रवन सुनत बैनाँ॥
गुरुजन की कठिन कानि, कासों री कहिए।
'मीराँ' प्रभु गिरिधर मिलि ऐसे ही रहिए॥१३५॥

जो तुम तोड़ो पिया, मैं नहीं तोड़ूँ।
तोरी प्रीत तोड़ि कृष्ण कोण सँग जोड़ूँ॥
तुम भये तरुवर, मैं भइ पँखिया।
तुम भये सरवर मैं तेरी मछियाँ॥
तुम भये गिरिवर मैं भई चारा।
तुम भये चंदा, हम भये चकोरा॥
तुम भये मोती प्रभु, हम भये धागा।
तुम भये सोना, हम भये सुहागा॥
'बाई मीराँ' के प्रभु, व्रज के बासी।
तुम मेरे ठाकुर, मैं तेरी दासी॥१३६॥

माई मैं तो गोविन्द सों अटकी ॥टेक॥
चकित भये हैं दृग दोउ मेरे लखि शोभा नट की॥
शोभा अंग अंग प्रति भूषण वनमाला तट की।
मोर मुकुट कटि किंकिन राजे दुति दामिनि पट की।
रमित भई हाँ साँवरे के संग लोग कहैं भटकी।
छुटी लाज कुल कानि लोग डर रह्यो न घर हटकी।
'मीराँ' प्रभु के संग फिरेगी कुंजा कुंज लटकी।
बिनु गोपाल लाल के सजनी को जानै घट की॥१३७॥

मेहा वरसवो करे रे, आज तो रमियो मेरे घर रे।
नान्हीं नान्हीं बूँद मेघ घनो वरसै, सूखे सरवर भर रे।
बहुत दिनाँ पे प्रीतम पाया, बिछुरन को मोंहि डर रे।
'मीराँ' कहे अति नेह जुड़ायो मैं लियो पुरवलो वर रे॥१३८॥

तुम जीमों गिरिधर लालजी ।
मीरा दासी अरज करै छै सुनिये परम दयालजी ।
छप्पन भोग छतीसो बिंजन पावो जन-प्रतिपाल जी ॥
राज-भोग आरोगो गिरिधर सनमुख राखौं थाळजी ॥
'मीराँ' दासी चरन उपासी, कीजे वेग निहाल जी ॥१३९॥

थे म्हारे घर आवो जी पीतम प्यारा ॥ टेक ॥
चुन चुन कलियाँ मैं सेज बनाऊँ भोजन करूँ मैं सारा ॥
तुम सगुणा मैं अवगुणधारी, तुम छो बगसणहारा ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर तुम बिन नैण दुख्यारा ॥१४०॥

त्योहार-ऋतु, गणगौरी

रे साँवलिया म्हाँ रे आज रँगीली गणगोर छैजी ॥
काली पीली बदली में बिजळी चमके, मेघ घटा घनघोर छैजी ।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल कर रही सोर छैजी ।
आप रँगीला सेज रँगीली, और रँगीलो सारो साथ छैजी ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरणाँ में म्हाँरो जोर छैजी ॥१४१॥

कार्तिक स्नान

श्याम बजावत वीणा री आली ।
आठ मास कार्तिक नहाए दान पुण्य बहु कीना ।
एरी दई तेरो कहा बिगाड़ो छोटा कन्त मोहें दीना ॥
करके शृंगार पलंग पर बैठी रोम रोम रस भीना ।
चोली केरे बन्द तरकन लागे श्याम भए परवीणा ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर हरि चरणन चित लीना ।
अब तो आन पड़ी फन्दे बिच्च लोक लाज तज दीना ॥१४२॥

होली

होली पिया बिन मोहिं न भावै घर आँगन न सुहावै ॥
दीपक जोय कहा करूँ हेली पिय परदेस रहावै ।
सूनी सेज जहर ज्यूँ लागें सुसक सुसक जिय जावै ॥
नींद नैन नहिं आवै ॥
कब की ठाढ़ी मैं मग जोऊँ निसि दिन बिरह सतावै ।
कहा कहूँ कछु कहत न आवै हिवड़ो अति अकुलावै ॥
पिया कब दरस दिखावै ॥

ऐसा है कोई परम सनेही तुरत सँदेसो लावै।
या बिरियाँ कब होसी मोकूँ हँस कर निकट बुलावै॥
'मीराँ' मिल होली गावै॥१४३॥

किन सँग खेलूँ होली पिया तज गये हैं अकेली।
माणिक मोती सब हम छोड़े गल में पहनी सेली।
भोजन भवन भलो नहिं लागै पिया कारन भइ गैली।
मुझे दूर क्यों म्हेली॥
अब तुम प्रीत और से जोड़ी हमसे करो क्यों पहेली।
बहु दिन बीते अजहुँ न आए लग रही तालावेली।
किण बिलमाए हेली॥
स्याम बिना जिवड़ो मुरझावै जैसे जल बिन बेली।
'मीराँ' कूँ प्रभु दरसन दीज्यो जनम जनम की चेली।
दरसन बिन खड़ी दुहेली॥१४४॥

रँग भरी राग[1] भरी रँग सूँ भरी री,
होरी आई प्यारी रंग सूँ भरी री।
उड़त गुलाल लाल भये बादल पिचकारिन की लगी झरी री।
चोवा चंदन और अरगजा केसर गागर भरी धरी री।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चेरी होय पाँयन में परी री॥१४५॥

होली पिया बिन लागे खारी सुनो री सखी मेरी प्यारी॥
सूनो गाँव देस सब सूनो, सूनी सेज अटारी।
सूनी बिरहिन पिव बिन डोलै तज दई पीव पियारी॥
भई हूँ या दुखकारी॥
देस बिदेस सँदेस न पहुँचै, होय अँदेसा भारी।
गिणताँ गिणताँ घस गईं रेखा आँगुरियाँ की सारी॥
अजहुँ नहिं आये मुरारी॥
बाजत झाँझ मृदंग मुरलिया, बाज रही इक तारी।
आई बसंत कंथ घर नाहीं तन में जर भया भारी॥
स्याम मन कहा बिचारी॥
अब तो मेहर करो मुझ ऊपर, चित दे सुणो हमारी।
'मीराँ' के प्रभु मिलज्यो माधो, जनम-जनम की कँवारी।
लगी दरसन की तारी॥१४६॥

---

१. रंग।

इक अरज सुनो पिय मोरी, मैं किण सँग खेलूँ होरी।
तुम तो जाय विदेसाँ छाये, हम से रहे चित चोरी।
तन आभूषण छोड़े सबही, तज दिये पाट पटोरी।
मिलन की लग रही डोरी॥
आप मिल्याँ बिन कल न परत है, त्यागे तिलक तमोली।
'मीराँ' के प्रभु मिलज्यो माधो सुणज्यो अरजी मोरी।
रस बिन बिरहन दोरी॥१४७॥

होरी खेलन चलो बृजनारी, सखि नंद पौर ठाढ़े मुरारी।
राधा, चन्द्रभागा, चन्द्रावलि, भामा ललित सुशीले।
शुभ सूचक कनक घट शिर धरि अंब मोर यव लीले॥
नये नये चीर कुसुंभी सारी, भूषण अनेकन सजिये।
बिबिध केलि करब मोहन के संग, नवल कान्ह पिय भजिये॥
चोवा चंदन बूका बंदन, उड़त गुलाल अबीर।
खेलत फाग भाग बड़े गोपी, छिरकत श्याम शरीर॥
चंग मृदंग दंग डफ महुवर बाजें वेणु रसाल।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, रसिक राय द्विजपाल॥१४८॥

झूलत राधा संग, गिरिधर०।
अबिर गुलाल उड़ावत राधा भरि पिचकारी रंग।
लाल भई बृंदाबन जमुना केशर चूवत रंग॥
नाचत ताल आधार सुरभरे धिम धिम वाजे मृदंग।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरन कमल कूँ दंग॥१४९॥

राग होली सिंदूरा

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मना रे।
बिन, करताल, पखावज वाजै अणहद की झणकार रे॥
बिनि सुर राग छतीसूँ गावै रोम रोम रँग सार[1] रे।
सील सँतोख की केसर घोळी प्रेम प्रीत पिचकार रे॥
उड़त गुलाल लाल भयो अंबर बरसत रंग अपार रे।
घट के सब पट खोल दिये हैं लोक लाज सब डार रे॥
होरी खेलि पीव घर आये सोइ प्यारी पिय प्यार रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरण-कँवल बलिहार रे॥१५०॥

---

१. पाठा०—रणकार।

होरी खेलत हैं गिरिधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो संग जुवति ब्रजनारी।
चन्दन केसर छिरकत मोहन अपने हाथ बिहारी।
भरि भरि मूठि गुलाल लाल चहुँ देत सबन पै डारी।
छैल छबीले नवल कान्ह सँग स्यामा प्राण पियारी।
गावत चार धमार राग तहँ दै दै कल करतारी।
फाग जु खेलत रसिक साँवरो बाढ़्यो रस ब्रज भारी।
'मीराँ' कूँ प्रभु गिरिधर मिलिया मोहन लाल बिहारी ॥१५१॥

वर्षा ऋतु

देखी वरषा की सरसाई, मोरे पिया जी की मन में आई।
नन्हीं नन्हीं बूँदन बरसन लाग्यो, दामिनि दमकै झर लाई॥
स्याम घटा उमड़ी चहुँ दिस ते बोलत मोर सुहाई।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर आनँद मंगल गाई ॥१५२॥

सावण दे रह्यो जोरा रे घर आवो जी स्याम मोरा रे।
उमड़ घुमड़ चहुँ दिसि से आयो गरजत है घनघोरा रे।
दादुर मोर पपीहा बोले कोयल कर रहा सोरा रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर ज्यों वारूँ सो ही थोरा रे ॥१५३॥

भीजे म्हाँरो दाँवन चीर सावणियो लूम रह्यो रे।
आप तो जाय विदेसाँ छाये जिवड़ा धरत न धीर॥
लिख लिख पतियाँ सँदेसा भेजूँ कब घर आवे म्हाँरो पीव।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर दरसन दो न बलबीर ॥१५४॥

राग कलिंगड़ा

सुनी हो मैं हरि आवन की अवाज।
म्हेल चढ़ चढ़ जोऊँ मेरी सजनी कब आवैं महाराज।
दादुर मोर पपइया बोलै कोइल मधुरे साज।
उमँग्यो इन्द्र चहूँ दिस बरसै दामिण छोड़ी लाज।
धरती रूप नवा नवा धरिया इन्द्र मिलण के काज।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर[1] बेग मिलो महराज[2] ॥१५५॥

---

१. पाठा०—हरि अविनासी। २. पाठा०—सिरराज।

बादल देख डरी हो स्याम, मैं बादल देख डरी।
काली पीली घटा ऊमड़ी बरस्यौ एक घरी।
जित जाऊँ तित पाणी पाणी हुई भूमि हरी।
जाका पिय परदेस बसत है भीजूँ बहार खरी।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी कीज्यौ प्रीत खरी ॥१५६॥

राग मलार

बरसै बदरिया सावन की, सावन की मनभावन की।
सावन में उमग्यो मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।
उमड़ घुमड़ चहुँ दिसि से आयो, दामण दमक झर लावन की।
नन्हीं नन्हीं बूँदन मेहा बरसै सीतल पवन सोहावन की।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, आनँद मंगल गावन की[1] ॥१५७॥

नंद नँदन बिलमाई, बदरा ने घेरी माई।
इत घन लरजै उत घन गरजै, चमकत बिज्जु सवाई।
उमड़ घुमड़ चहुँ दिस से आयो, पवन चलै पुरवाई।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुणाई।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कँवल चित लाई ॥१५८॥

मतवारो बादल आयो रे हरि को सँदेसो कछु नहिं लायो रे।
दादुर मोर पपीहा बोले कोयल सब्द सुनायो रे।
कारी अँधियारी बिजली चमके बिरहिन अति डरपायो रे।
गाजे बाजे पवन मधुरिया मेहा अति झड़ लायो रे।
फूँके काली नाग बिरह की जारी 'मीराँ' मन हरि भायो रे॥१५९॥

बदला रे तू जल भरि ले आयो।
छोटी छोटी बूँदन बरसन लागी कोयल सबद सुनायो।
गाजै बाजै पवन मधुरिया अंबर बदराँ छायो॥
सेज सँवारी पिय घर आये हिल-मिल मंगल गायो।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी भाग भलो जिन पायो ॥१६०॥

---

१. इस पद का निम्नलिखित पाठ भी मिलता है—
बरस बदरिया सावण की।
सावण मउँ उमग्यो मेरो मनवा भणक परी पिय आवन की।
दाइ मोर पपीयौ बोले कोइल सब्द सुनावन की॥
कारी घटा अरु बिजरी चमकै नांनी नांनी बूँद झरि लावन की।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर बोल पपीया पिया आवन की॥

उपालंभ

जावो हरि निरमोहिया रे जाणी थाँरी प्रीत।
लगन लगी जदि प्रीत और ही अब कुछ और ही रीति॥
ईमरत प्याइकै विष क्यूँ दीजे कूँण गाँव की रीत।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी अपणी गरज के मीत[1]॥१६१॥

स्याम मोसूँ ऐंडो डोले हो।
औरन सूँ खेले धमार म्हाँसू मुखहुँ न बोले हो।
म्हारी गलियाँ न फिरे वाके आँगणा डोले हो।
म्हारी अँगुली ना छुए वाकी बहियाँ मोरे हो।
म्हारो अँचरा न छुए वाकी घूँघट खोले हो।
'मीराँ' के प्रभु साँवरो रँग रसियो डोले हो॥१६२॥

अपणे करम को वो छै दोस काकूँ दीजै रे।
सुणियो मेरी बगड़ पड़ोसण गैल चलत लागी चोट।
पहली ग्यान मान नहिं कीन्हौ मैं ममता की बाँधी पोट।
मैं जाणयूँ हरि नाहिं तजेंगे करम लिख्यो भलि पोच।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी परो निवारो नी सोच॥१६३॥

छाँड़ो लँगर मोरी बहियाँ गहो ना।
मैं तो नार पराये घर की मेरे भरोसे गुपाल रहो ना।
जो तुम मेरी बहियाँ धरत हो नयन जोर मेरे प्राण हरो ना।
वृंदावन की कुंजगली में रीति छोड़ अनरीति करो ना।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरण-कमल चित टारे टरो ना॥१६४॥

हरी तुम काय कूँ प्रीति लगाई।
प्रीति लगाइ परम दुःख दीधो कैसी लाज न आई।
गोकुल छाँड़ मथुरा के जँयुवा में कोण बड़ाई।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर तुम कुँ नंद दुहाई॥१६५॥

वैद को सारो नाहीं रे माई, वैद को नहीं सारो।
कहत ललिता वैद बुलाऊँ आवै नंद को प्यारो।
वो आयाँ दुख नाहिं रहैगो, मोहिं पतियारो।
वैद आय कर हाथ जो पकड़्यो रोग है भारो।
परम पुरुष की लहर व्यापी डस गयो कारो।

---

१. पाठा०—'मीराँ' कहै प्रभु गिरिधर नागर आप गरज के मीत।

मार चंदो हाथ लै हरि देत है डारो।
दासि 'मीराँ' लाल गिरिधर विप कियो न्यारो ॥१६६॥

गिरिधर दुनियाँ दे छै बोल।
गिरिधर मेरा मैं गिरिधर की, कहो तो वजाऊँ ढोल।
आपन जाय प्रभु द्वारिका छाये, हमकूँ लिख दियो जोग।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, पिछले जन्म को कौल ॥१६७॥

हो गये स्याम दुइज के चंदा।
मधुवन जाइ भये मधुवनियाँ हम पर डारो प्रेम को फंदा।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर अव तो नेह परो कछु मंदा ॥१६८॥

वाटडली निहाराँजी हरि ठाढ़ी।
आप नहीं आवत पतियाँ न मेलत छाती करि हरि गाढ़ी।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी जमुना वहै छै नाड़ी।
आप जाय मथुरा में वैठे प्रीत रली उहाँ धाढ़ी।
हमकों लिपि लिपि जोग पठावत आप दुलह कुवज्या भई लाड़ी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर कहा करे जमुना आड़ी ॥१६९॥

थे तो पलक उघाड़ो दीनानाथ, मैं हाजिर नाजिर कद की खड़ी ॥
साजनियाँ दुसमण होय वैठ्या, सवने लगूँ कड़ी।
तुम विन साजन कोई नहीं है, डिगी नाव मेरी समंद अड़ी ॥
दिन नहीं चैन रैण नहिं निंदरा, सूखूँ खड़ी खड़ी।
वान विरह का लग्या हिये में, भूलूँ न एक घड़ी ॥
पत्थर की तो अहिल्या तारी, वन के वीच पड़ी।
कहा वोझ 'मीराँ' में कहिये, सौ पर एक धड़ी ॥१७०॥

थाने कुव्जा ही मनमानी हम सों न वोलना हो राज।
हमरी कही सुनी विप लागे वाहा जाय प्रेम रस पागे,
उन सँग हिलमिल रहना हँसना वोलना हो राज ॥
हम सों कहे सिंगार उतारो दृग-अंजन सवही धोय डारो,
छापा तिलक सँवारो पहिरो चोलना हो राज ॥
जमुना के तट धेनु चरावे वंसी में कछु अचरज गावे,
नइ नइ तान सुनावे छाछ मछोलना जी राज ॥
म्हारी प्रीत तुम्हीं सों लागी कुल मरजाद सभी हम त्यागे,
'मीराँ' के गिरिधारी वन वन डोलना हो राज ॥१७१॥

नयन लगे तब घूँघट कैसो, लोक लाज तिनका ज्यूँ तोर्‌यो।
नेकी बदी हूँ सिर पर धारी, मन-हाथी आँकुस दे मोर्‌यो॥
प्रगट निसान बजाय चलीयै राणा राव सकल जग छोर्‌यो।
'मीराँ' सबल धनी के शरणे कहा भयो भूपति मुख मोर्‌यो॥१७२॥

मोहन जाओ कठे, साँवरिया मोहन जाओ कठे[1]।
तुम रहो ने अठे, साँवरिया मोहन जाओ कठे[2]॥
गोकुल बसबो फीको लागे मथुरा में काँई लाडु बटे।
नित को आणो जाणो छोडि दे, नित आये से तेरो मान घटे॥
राधा रुक्मिणी और सतभामा, कुबजा[3] ने कोइ लीनी पटे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर तुम सुमराँ सूँ संकट कटे॥१७३॥

घर आवो सजन मिठ बोला।
तेरे खातर सब कुछ छोड़ा काजर तेल तमोला॥
जो नहीं आवै रैन बिहावै छिन मासा छिन तोला।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर कर धर रहे कपोला॥१७४॥

राग भैरव—तिताला

आज सखी मोरे अनन्द भयो है घर में मोहन लाधोरी।
बन जोई वृंदावन जोई जोइ बिरज सब बाधोरी॥
सतवे मलीए अजब झरोखे वाही तें हरिजी लाधोरी।
म्हारा तो घर में मही घनेरो हरि चोर चोर दधि खाधोरी॥
अपने द्वार में कब की ठाढ़ी बाँह पकर हरि साधोरी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर मिलियो बिरह बाजने बाँधोरी॥१७५॥

विरह के पद

म्हारे घर आज्यो प्रीतम प्यारा तुम बिन सब जग खारा।
न मन धन सब भेंट करूँ और भजन करूँ मैं थांरा।
तुम गुणवंत बड़े गुणसागर मैं हूँजी औगुण हारा।
मैं निगुणी गुण एको नाहीं तुझ में जी गुण सारा।
'मीराँ' कहै प्रभु कबरि मिलोगे बिन दरसण दुखियारा॥१७६॥

राग भैरवी

छोड़ मत जाज्यो जी महाराज[4]॥टेक॥
मैं अबला बल नायँ गुसाईं तुमहिं मेरे सिरताज।

---

१. पाठा०—जावो कठे रे, रामा रवो अठे, साँवलिया। २. पाठा०—गोकुल में काँई धेनु चरावो मथुरा में काँइ राज लटे। ३. पाठा०—चिह्न के आगे 'काँई थारे संग पटे'। ४. पाठा०—हो जी महराज छोड़ मत जाज्यो।

मैं गुणहीन गुण नाँय गुसाईं, तुम समरथ महाराज।
थाँरी[1] होय के किणरे जाऊँ, तुमही हिवड़ारो साज।
'मीराँ' के प्रभु और न कोई, राखो अबके लाज ॥१७७॥

म्हाँने चाकर राखो जी गिरिधारीलाला, म्हाँने चाकर राखो जी।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसण पासूँ।
वृंदावन की कुंजगलिन में तेरी लीला गासूँ।
चाकरी में दरसण पाऊँ, सुमिरण पाऊँ खरची।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बाताँ सरसी।
मोर मुगुट पीताम्बर सोहै, गल बैजन्ती माला।
वृंदावन में धेनु चरावै, मोहन मुरली वाला।
हरे हरे नित बाग लगाऊँ, बिच बिच राखूँ क्यारी[2]।
साँवरिया के दरसण पाऊँ[3], पहर कुसुंभी सारी।
जोगी आया जोग करण कूँ, तप करणे संन्यासी।
हरी भजन कूँ साधू आया, वृंदावन को वासी।
'मीराँ' के प्रभु गहिर गँभीरा, सदा रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसण देहैं, प्रेम नदी के तीरा ॥१७८॥

वारी वारी हो राम हूँ वारी तुम आज्यो गली हमारी।
तुम देख्याँ विन कल न पड़त है जोऊँ वाट तुमारी।
कूण सखी सूँ तुम रंग राते हम सूँ अधिक पियारी।
किरपा कर मोंहि दरसण दीज्यो सब तकसीर बिसारी।
तुम सरणागत परम दयाला भवजल तार मुरारी।
'मीराँ' दासी तुम चरणन की बार बार बलिहारी ॥१७९॥

कैसे जिऊँरी माई, हरि बिनु कैसे जिऊँ री।
उदक दादुर पीनयत है जल से ही उपजाई।
पल एक जल कूँ मीन बिसरै तलफतै मर जाई।
पिया बिना पीली भई रे (वाला) ज्यों काठ घुन खाई।
औषध मूल न संचरै रे (वाला) वैद फिर जाई।
उदासी होय बन बन फिरूँ रे बिथा तन छाई।
दासि 'मीराँ' लाल गिरिधर मिल्यो है सुखदाई ॥१८०॥

---

१. पाठा०—रावली। २. ऊँचे ऊँचे महल बनाऊँ बिच बिच राखूँ
३. साँवलिया के आगे नाचूँ ओढ़ि पितंवर सारी।

देखो सइयाँ[1] हरि मन काठ[2] कियो।
आवन कहि गयो अजहुँ न आयो करि करि वचन गयो।
खान पान सुध बुध सब विसरी कैसे करि मैं जियो।
वचन तुम्हारे तुमहिं विसारे मन मेरो हर लियो।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर तुम बिन फाटत हियो ॥१८१॥

राग काफी

घर आँगन न सुहावे, पिया बिन मोहिं न भावे ॥ टेक ॥
दीपक जोय कहा करूँ सजनी, हरि[3] परदेस रहावे।
सूनी सेज जहर ज्यूँ लागे, सिसक सिसक जिय जावे,
नयन निद्रा नहिं आवे ॥
कब की ऊभी मैं मग जोऊँ, निसि दिन विरह सतावे।
कहा कहूँ कछु कहत न आवे, हिवड़ो अति अकुलावे।
हरी कब दरस दिखावे ॥
ऐसो है कोइ परम सनेही, तुरत सँदेसो लावे।
वा विरियाँ कब होसी म्हाँको, हरि हँस कंठ लगावे।
'मीराँ' मिलि होरी गावे ॥१८२॥

नींदलड़ी नहिं आवै सारी रात, किस विधि होय परभात।
चमक उठी सपने सुध भूली चंद्रकला न सोहात।
तलफ तलफ जिय जाय हमारो कब रे मिले दीनानाथ।
भई हूँ दिवानी तन सुध भूली कोई न जानी म्हाँरी बात।
'मीराँ' कहै बीती सोइ जानै मरण जीवण उन हाथ ॥१८३॥

राम[4] की दिवानी मेरा दरद न जाने कोई।
घायल की गति घायल जाने जो कोई घायल होई।
शेषनाग पै सेज पिया की किस विधि मिलना होई।

---

१. पाठा०—सहियाँ। २. पाठा०—काटो। ३. पाठा०—पिय।
४. पाठा०—श्याम। इस पद का नीचे लिखा पाठ भी मिलता है:—

हेरी मैं तो दरद दिवानी, मेरा दरद न जाने कोय री।
सूली ऊपर सेज पिया की किस विध मिलना होय री।
घायल की गति घायल जाने जिस तन लागी होय री।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर वैद साँवरिया होय री।

दरद की मारी बन बन डोलूँ वैद्य मिला नहीं कोई।
'मीराँ' की पीर प्रभु कैसे मिटैगी वैद्य साँवलिया होई ॥१८४॥

सोवत ही पलका में मैं तो पलक लगी पल में पिउ आये।
आज की बात कहा कहूँ सजनी सुपना में हरि लेत बुलाये॥
वस्तु एक जब प्रेम की पकरी आज भए सखि मन के भाये[1]।
मैं जु उठी प्रभु आदर दैण कूँ जाग पड़ी पिउ ढूँढ़ि न पाये॥
और सखी पिउ सूति गमाये मैं जु सखी पिउ जागि गमाये[2]।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर सब सुख होय स्याम घर आये ॥१८५॥

प्रभू बिनि ना सरै माई।
मेरा प्राण निकस्या जात हरी बिन ना सरै माई।
कमठ दादुर बसत जल में जल से उपजाई।
मीन जल से बाहेर कीना तुरत मर जाई।
काठ लकरी बन परी काठ घुन खाई।
ले अगिन प्रभु डार आये भसम हो जाई।
बन बन ढूँढ़त मैं फिरी आली सुधि नहीं पाई।
एक बेर दरसण दीजै (सब) कसर मिटि जाई।
पान ज्यों पीरी परी अरु बिपत तन छाई।
दासि 'मीराँ' लाल गिरिधर मिल्या सुख छाई ॥१८६॥

डाल गयो रे गले मोहन फाँसी।
ऊँची सी अटाली पर मेंहुँडा बरसत बूँद लगी जसी तीर की गाँसी।
आँबुवा की डाली पर कोयल बोलत बोलत बचे न उदासी।
आपन ज्याकर द्वारका छाये म्हारो तो मरनो भयो थारी भई हाँसी।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर थे तो मेरा
ठाकुर रे मैं तो थारी दासी[3] ॥१८७॥

---

१. पाठा०—सखियन से भाये। २. इसके अनंतर दो पंक्तियाँ नरसी के मायरा के एक पद राग जैजैवंती से दिए हुए थे, जो निकाल दिए गए। ३. इस पद का नीचे लिखा पाठ भी मिलता है।

डारि गयो मनमोहन फाँसी।
आँबा की डालि कोइल इक बोलै मेरो मरण अरु जग केरी हाँसी॥
विरह की मारी मैं बन बन डोलूँ प्रान तजूँ करवत ल्यूँ कासी।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी॥

सजन सुध ज्यूँ जाणो त्यूँ[1] लीजै हो।
तुम बिन मोरे और न कोई क्रिपा रावरी कीजै हो।
दिन[2] नहिं भूख रैण नहिं निंदरा यूँ तन पलपल छीजै हो।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर मिल बिछड़न मत कीजै हो ॥१८८॥

प्रभुजी थे[3] कहाँ गयो नेहड़ा लगाय।
छोड़ गया बिस्वास सँगाती प्रेम की बाती बराय[4]।
बिरह समँद में छोड़ गया छो नेह की नाव चलाय।
'मीराँ' के प्रभु कब रे मिलोगे[5] तुम बिन रह्यो न जाय ॥१८९॥

पिय बिन सूनो छै जी म्हाँरो देस।
ऐसो है कोइ पिव कूँ मिलावै तन मन करूँ सब पेस।
तेरे कारण बन बन डोलूँ कर जोगण को भेस।
अवधि बदी ती अजूँ न आए पंडर हो गया केस।
'मीराँ' के प्रभु कब रे मिलोगे तज दियो नगर नरेस ॥१९०॥

मैं बिरहिणी बैठी जागूँ, जगत सब सोवै री आली।
बिरहिणी बैठी रंगमहल में, मोतियन की लड़ पोवै।
इक बिरहिणि हम ऐसी देखी, अँसुवन की माला पोवै।
तारा गिण गिण रैण बिहानी, सुख की घड़ी कब आवै।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर जब मिल के बिछुड़ न जावै[6] ॥१९१॥

नातो नाम को जी म्हासूँ तनक न तोड़यो जाय।
पानाँ ज्यूँ पीली पड़ी रे, लोग कहैं पिंड रोग।
छाने लाँघण मैं किया रे, राम मिलण के जोग।
बावल बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हाँरी बाँह।
मूरख बैद मरम नहिं जाणे, करक कलेजे माँह।
जा बैदा घर आपणे रे, म्हारो नाँव न लेय।
मैं तो दाधी बिरह की रे, तू काहे कूँ दारू देय।
माँस गल गल छीजिया रे, करक रह्या गल आहि।
आँगलियाँ रो मूँदड़ो (म्हारे) आवण लागो बाँहि।
रह रह पापी पपीहरा रे, पिव को नाम न लेय।

---

१. पाठा०—ज्यूँ। २. पाठा०—दोस। ३. पाठा०—पिया तैं। ४. पाठा०—बात बनाय। ५ पाठा०—गिरिधर नागर। ६. पाठा०—जब मोहि दरस दिखावैं।

जे कोइ विरहिणि साम्हले (सजनी) पिव कारण जिव देय।
खिण मन्दिर खिण आँगणे रे, खिण खिण ठाढ़ी होय।
घायल ज्यूँ घूमूँ सदा री, (म्हारी) बिथा न बूझै कोय।
काढ़ि कलेजो मैं धरूँ रे, कौवा तू ले जाय।
ज्याँ देसाँ म्हाँरो पिव बसै (सजनी) वे देखैं तू खाय।
म्हाँरे नातो नाँव को रे, और न नातो कोय।
'मीराँ' व्याकुल विरहिणी रे, (पिया) दरसण दीजो मोय ॥१९२॥

राग जोगिया

हेरी मैं तो दरद[1] दिवाणी मेरो दरद न जाणै कोइ।
घायल की गति घायल जाणै की जिण लाई होइ।
जौहरि की गति जौहरि जाणै की जिन जौहर होइ।
सूली ऊपरि सेज हमारी सोवणा किस विध होइ।
गगन मँडल पै सेज पिया की किस विध मिलणा होइ।
दरद की मारी बन बन डोलूँ बैद मिल्या नहिं कोइ।
'मीराँ' की प्रभु पीर मिटैगी जद बैद साँवलिया होइ ॥१९३॥

राग देस

दरस बिन दूखण लागे नैण।
जब के[2] तुम बिछुरे प्रभु मोरे कबहुँ न पायो चैन।
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै मीठे मीठे[3] बैन।
बिरह कथा कासूँ कहूँ सजनी बह गई करवत ऐन।
कल न परत पल हरि मग जोवत भई छमासी रैण[4]।
'मीराँ' के प्रभु कब रे मिलोगे दुख मेटण सुख दैण ॥१९४॥

राग बागेश्वरी

घड़ी एक नहिं आवड़े, तुम दरसण बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राणजी, कैसें जीवण होय।
धान न भावै, नींद न आवै, बिरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरूँ (रे) मेरो दरद न जाणै कोय।
दिवस तो खाय गमाइयो रे, रैण गमाई सोय।
प्राण गमायो झूरताँ रे, नैण गमायो रोय।

१. पाठा०—प्रेम। २. पाठा०—से या ते। ३. पाठा०—लागैं।
४. पाठा०—एक टकटकी पंथ निहारूँ भई छमासी रैन।

जो मैं ऐसी जाणती रे, प्रीत कियाँ दुख होय।
नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय।
पंथ निहारूँ डगर बुहारूँ, ऊभी मारग जोय।
'मीराँ' के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होय॥१९५॥

राग सारंग

हे मेरो मनमोहना,
आयो नहीं सखी री, हे मेरो० ॥ टेक ॥
कै कहुँ काज किया संतन का कै कहुँ गैल भुलावना॥
कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, लाग्यो है बिरह सँतावना।
'मीराँ' दासी दरसण प्यासी हरिचरणाँ चित लावना॥१९६॥

राग देस

पिया मोहि दरसण दीजै हो।
बेर बेर मैं टेरहूँ अहे किरपा कीजै हो ॥ टेक ॥
जेठ महीने जल बिना पंछी दुख होई हो।
मोर असाढ़ाँ कुरलहे घन चात्रग सोई हो।
सावण में झड़ लागियो सखि तीजाँ खेलै हो।
भादरवै नदियाँ वहैं दूरी जिन मेलै हो।
सीप स्वाति ही झेलती आसोजाँ सोई हो।
देव कातिग में पूजहे, मेरे तुम होई हो।
मगसर ठंढ बहोत पड़े मोहि बेगि सम्हालो हो।
पौस महीं पाला घणाँ अब ही तुम न्हालो हो।
माह महीं बसंत पंचमी फागाँ सब गावैं हो।
फागुण फागाँ खेलहैं वणराइ जरावैं हो।
चैत चित्त में ऊपजी दरसण तुम दीजै हो।
बैसाख वणराइ फूलवै कोइल[1] कुरलीजै हो।
काग उड़ावत दिन गया बूझूँ पंडत जोसी हो।
'मीराँ' बिरहिणि व्याकुली दरसण कब होसी हो॥१९७॥

राग देस

भवनपति तुम घरि आज्यो हो।
पिया लगी तन माँहिने (म्हारी) तपत बुझाज्यो हो।

---

१. पाठ०—कोमल।

रोवत रोवत डोलताँ सब रैण विहावै हो।
भूख गई निदरा गई पापी जीव न जावै हो।
दुखिया कूँ सुखिया करो, मोहि दरसण दीजै हो।
'मीराँ' व्याकुल बिरहिणी अब बिलम न कीजै हो ॥१९८॥

राग बिहाग

माई म्हाँरी हरिहु न बूझी बात।
पिंड माँसूँ प्राण पापी निकसि क्यूँ नहिं जात?
पाट न खोल्या मुखाँ न बोल्या साँझ भई[1] परभात।
अबोलणाँ जुग बीतण लागो तो काहे की कुसलात।
सावण आवण कह गया रे हरि आवण की आस।[2]
रैंण अँधेरी बीजु चमंकै तारा गिणत निरास।[3]
सुपन में हरि दरस दीन्हों मैं न जाण्यूँ हरि जात।
नैण म्हाराँ उघड़ आया रही मन पछतात।
लेइ कटारी कंठ सारूँ मरूँगी बिष खाइ।[4]
'मीराँ' दासी राम राती लालच रही ललचाइ॥[5]१९९॥

पिया बिनि रह्योइ न जाइ।
तन मन मेरो पिया पर वारूँ वार वार बलि जाइ।
निसिदिन जोऊँ बाट पिया की कब रे मिलोगे आइ।
'मीराँ' के प्रभु आस तुमारी लीज्यो कंठ लगाइ॥२००॥

राग पीलू

स्याम सुंदर पर वार, जीवड़ा मैं वार डारूँगी, स्याम० ॥टेक॥
तेरे कारण जोग धारणा लोक लाज कुल डार।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है नैंन चलत दोउँ बार।
कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी कठिन बिरह की धार।
'मीराँ' कहै प्रभु कब रे मिलोगे तुम चरणाँ आधार ॥२०१॥

राग टोड़ी

आवो मनमोहना जी जोऊँ थाँरी बाट।
खान पान मोहि नैक न भावै नैण न लगे कपाट।

---

१. पाठा०—लग।
२. पाठा०—सावण आवण होय रह्यो रे नहिं आवण की बात।
३. पाठा०—निसि जात। ४. पाठा०—करूँगी अपघात।
५. पाठा०—मीराँ व्याकुल बिरहणी रे बाल ज्यूँ बिललात।

तुम आयाँ बिन सुख नहिं मेरे दिल में बहोत उचाट।
'मीराँ' कहै मैं भई रावरी छाँड़ो नाहिं निराट ॥२०२॥

राग सोरठ

होजी हरि कित गये नेह लगाय ॥ टेक ॥
नेह लगाय मेरो मन हरि लीयो रस भरि टेर सुनाय।
मेरे मन में ऐसी आवै मरूँ जहर विस खाय।
छाँड़ि गये विसवासघात करि नेह केरी नाव चढ़ाय।
'मीराँ' के प्रभु कब रे मिलोगे[1] रहे मधुपुरी छाय ॥२०३॥

राग कान्हड़ा

तनक हरि चितवौ जी मोरी ओर।
हम चितवत तुम चितवत नाहीं दिल के बड़े कठोर।
मेरे आसा चितवनि तुमरी और न दूजी दौर।
तुम से हमकूँ कबर मिलोगे[2] हमसी लाख करोर।
ऊभी ठाढ़ी अरज करत हूँ अरज करत भयो भोर।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी देस्यूँ प्राण अँकोर ॥२०४॥

कृष्ण करो जजमान, प्रभु तुम कृष्ण करो जजमान।
जाकी कीरति वेद बखानत साखी देत पुरान।
मोर मुकुट पीतांबर शोभत कुंडल झलकत कान।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर दे दर्शन को दान ॥२०५॥

गोविंद कबहुँ मिलै पिय मेरा।
चरण-कँवल कूँ हँसि हँसि देखूँ राखूँ नैणाँ नेरा।
निरखण कूँ मोहिं चाव घणेरो कब देखूँ मुख तेरा।
व्याकुल प्राण धरत नहिं धीरज मिलि तूँ मीत सवेरा।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर ताप तपन बहुतेरा ॥२०६॥

तुम्हरे कारण सब सुख छाँड्या, अब मोहिं क्यूँ तरसावौ।
बिरह बिथा लागी उर अंतर सो तुम आय बुझावौ।
अब छोड्याँ नहिं बनै प्रभू जी, हँस कर तुरत बुलावौ।
'मीराँ' दासी जनम जनम की अंग सूँ अंग लगावौ ॥२०७॥

राग भैरवी

मैं हरि बिन क्यूँ जिवूँरी माइ।
पिव कारण बौरी भई, ज्यूँ काठहिं घुन खाइ।

१. पाठा०—गिरिधर नागर। २. पाठा०—एक होजी।

ओखद मूल न संचरै मोहिं लाग्यो बौराइ।
कमठ दादुर बसत जल में जलहि तें उपजाइ।
मीन जल के बीछुरे तन तलफि करि मरि जाइ।
पिव ढूँढण वन वन गई कहुँ मुरली धुनि पाइ।
'मीराँ' के प्रभु लाल गिरिधर मिलि गये सुखदाइ ॥२०८॥

राग आनंद भैरो

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो।
सब सखियन मिलि सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिनि देख्याँ कल नाँहि पड़त जिय ऐसी ठानी हो।
अंग छीन[1] व्याकुल भई मुख पिय पिय बानी हो।
अन्तर वेदन बिरह की वह पीड़ न जानी हो।
ज्यूँ चातक घन कूँ रटै, मछरी जिमि पानी हो।
'मीराँ' व्याकुल बिरहिणी सुध बुध बिसरानी हो ॥२०९॥

पपैया प्यारे कब को बैर चितार्‍यो।
मैं सूती छी अपने भवन में पिय पिय करत पुकार्‍यो।
दाध्या ऊपर लूण लगायो हिवड़े करवत सार्‍यो।
चढ़ि बैठ्यो वा बृच्छ की डाली बोल बोल कँठ सार्‍यो।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर हरि चरनाँ चित धार्‍यो ॥२१०॥

पपइया रे पिव की वाणी न बोल।
सुणि पावेली बिरहिणी रे, थारो रालेली पाँख मरोड़।
चोंच कटाऊँ पपइया रे, ऊपरि कालर लूँण।
पिव मेरा मैं पीव की रे, तू पिव कहै सु कूँण।
थारा सबद सुहावणा रे, जो पिव मेला आज।
चोंच मढ़ाऊँ थारी सोवनी रे, तू मेरो सिरताज।
प्रीतम कूँ पतियाँ लिखूँ रे, कउवा तू ले जाय।
जाइ प्रीतम जी सूँ यूँ कहै रे, थाँरी बिरहिणि धान न खाय।
'मीराँ' दासी व्याकुली रे पिव पिव करत बिहाय।
बेगि मिलो प्रभु अन्तरजामी तुम विन रह्यो न जाय ॥२११॥

पिया इतनी बिनती सुन मोरी, कोई कहियो रे जाय।
औरन सूँ रस की बतियाँ करत हो हम से रहे चित चोरी।

---

१. पाठा०—अंगि अंगि।

तुम बिन मेरे और न कोई मैं सरणागत तोरी।
आवन कह गये अजहुँ न आए दिवस रहे अब थोरी।
'मीराँ' कहे प्रभु कबर मिलोगे, अरज करूँ कर जोरी ॥२१२॥

राग आसावरी

प्यारे दरसन दीज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय ॥ टेक ॥
जल बिन कमल, चंद बिन रजनी, ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी,
आकुल व्याकुल फिरूँ रैण दिन, बिरह कलेजो खाय।
दिवस न भूख, नींद नहिं रैणा, मुख सूँ कथत न आवै वैणा,
कहा कहूँ कछु कहत न आवै, मिलकर तपन बुझाय।
क्यूँ तरसावो अंतरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी,
'मीराँ' दासी जनम जनम की, परी तुम्हारे पाय ॥२१३॥

बन्सीवारो आज्यो म्हाँ रे देस, थाँरी साँवरी सूरत बारी[1] बैस।
आऊँ आऊँ कर गया साँवरा, कर गया कौल अनेक।
गिणते गिणते घस गई उँगली घस गई उँगली की रेख।
मैं बैरागिण आदि की जी थाँ रे म्हाँ रे कब को सँदेस।
बिन पाणी बिन उबटनो साँवरो हुइ गई धुई सफेद।
जोगिण हुइ जंगल सब टेरूँ[2] तेरो न पाया भेस।
तेरी सूरत के कारणे म्हे धर लिया भगवा भेस।
मोर मुकुट पीतांबर सोहे घूँघरवालो केस।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर मिल गये दूना बढ़ा सनेस ॥२१४॥

पिया अब घर आज्यो मोरे, तुम मोरे, हूँ तोरे।
मैं जन तेरो पंथ निहारूँ, मारग चितवत तोरे।
अवध बदीती अजहुँ न आए दुतियन सूँ नेह जोरे।
'मीराँ' कहे प्रभु कब रे मिलोगे दरसन बिन दिन दोरे ॥२१५॥

राग बागेश्वरी

साजन घर आवो रे मिठ बोला।
कब की ठाढ़ी पंथ निहारूँ थाँहीं आया होसी भला।
आवो निसंक संक मति मानो आयाँ ही सुख रहेला।
तन मन वार करूँ न्योछावर दीजो स्याम मोहेला।
आतुर बहुत बिलम नहिं करणा आयाँ ही रंग रहेला।
तोरे कारण सब रँग त्यागा काजर तिलक तमोला।

---

१. पाठा०—न्हालो। २. पाठा०—मैं बन बन हेरूँ।

तुम देख्याँ बिन कछ न परत है कर धर रही कपोला।
'मीराँ' दासी जनम जनम की दिल की घुंडी खोला ॥२१६॥

राग सोरठ

देखो सइयाँ हरि मन काठ कियो।
आवन कहि गयो अजहुँ न आयो, करि करि वचन गयो।
खान पान सुध बुध सब बिसरी, कैसे करि मैं जियों।
बचन तुम्हारे तुमहिं बिसारे, मन मेरो हर लियो।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर, तुम बिन फटत हियो ॥२१७॥

सजन वेगाँ घर आज्यौ जी।
आदि अंत रा यार हमारा हमको सुष लाज्यो जी।
निषि दिन चित चरणाँ धरूँ हो मनडाँ ते न बिसारूँ।
नजरि परै तुजि ऊपरैं धन जोबन वारूँ।
हौं मैं पतिवरता रावरी काहूँ तन काजैं जी।
अपनी वोरि निहारिकैं प्रीति निभाज्यौ जी।
हरि बिन सुरति कहाँ धरूँ निति मारिग जोउँ हो।
साँई तेरै कारणै भरि नींद न सोउँ हो।
बीछुरियाँ[1] दिन बहु भया वेगाँ दरस दिषाज्यो जी।
प्रीति पुराणी जाणि कै वाही कृपा रषाज्यौ जी।
मेरे अवगुण देषि कै तुम नाहिं तुलाज्यो[2] जी।
मेरे कारणि रावरो मति विरद लजाज्यो जी।
वावरियाँ कव होइगी कोइ कहै संदेसा हो।
'मीराँ' कै वणवात रो मनि परो अंदेसा हो ॥२१८॥

राग कोसी

कोई कहियौ रे प्रभु आवन की, आवन की मन भावन की ॥टेक॥
आप न आवै लिख नहिं भेजै बाँण पड़ी ललचावन की।
ए दोउ नैण कह्यौ नहिं मानैं नदिया बहै जैसे सावन की।
कहा करूँ कछु नहिं बस मेरो पाँख नहीं उड़ जावन की।
'मीराँ' कहै प्रभु कब र मिलोगे चेरी भई हूँ तेरे दाँवन की ॥२१९॥

राग झिंझौटी तिताला

अँखियाँ श्याम[3] मिलन को प्यासी।
आप तो जाय द्वारका छाये लोक करत मेरी हाँसी।

---

१. पाठा०—बीछरियाँ। २. पाठा०—भुलाज्यो। ३. पाठा०—कृष्ण।

आँब की डारी कोयल बोले बोलत शब्द उदासी।
मेरे तो मन में ऐसी आवत है करवत लूँ जाय कासी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरन कमल की दासी ॥२२०॥

कृष्ण मेरे नजर के आगे ठाढ़े रहो रे।
मैं जो बुरी स्याम और भली है, भली कि बुरी मोरे दिल रहो रे।
प्रीत को पैंडो बहुत कठिन है चार कही दश और कहो रे॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर प्रीत करो तो मेरा बोल सहो रे ॥२२१॥

राग सोरठ

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ लिखियो न जाय ॥टेक॥
कलम धरत मेरो कर काँपत है, नैनन हैं झर लाय[1] ॥पतियाँ०॥
हमरी बिपत तुम देख चले ऊधो, हरिजी सुँ कहियो जाय।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, दरसन दीजो आय ॥पतियाँ०॥२२२॥

प्रीतम कूँ पतियाँ लिखूँ कउवा तू 'ले जाइ।
जाइ प्रीतमजी सूँ यूँ कहै रे थाँरी बिरहिण धान न खाइ।
'मीराँ दासी' व्याकुली रे पिव पिव करत बिहाइ।
बेगि मिलो प्रभु अन्तरजामी तुम बिन रह्यौइ न जाइ ॥२२३॥

प्रीति-निवेदन

तुम बिन मोरी कौन खबर ले, गोवरधन गिरिधारी।
मोर मुकुट पीतांबर शोभे कुंडल की छबि न्यारी रे।
भरी सभा मो द्रौपदी ठारी, राखो लाज हमारी रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरन कमल बलिहारी रे ॥२२४॥

स्याम मोरी बाँहड़ली जी गहो।
या भवसागर मँझदार में थे ही निभावण हो।
म्हाँ में अवगुण घणा छै हो प्रभुजी थे ही सहो तो सहो।
'मीराँ' के प्रभु हरि अबिनासी लाज बिरद की बहो ॥२२५॥

हरि बिन कूँण गती मेरी।
तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, मैं रावरी चेरी।

---

१. पाठा०—कलम भरत मेरो कर कंपत है, हिरदो रहो घर्राइ।
बात कहूँ मोहिं बात न आवै नैन रहे झर्राइ॥
किस बिध चरण कमल मैं गहिहौ सबहि अंग थर्राइ।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर सब ही दुख बिसराइ॥

आदि अंत निज नाँव तेरो हिया में फेरी।
बेर बेर पुकारि कहूँ प्रभु आरति है तेरी।
यौ संसार विकार सागर बीच में घेरी।
नाव फाटी प्रभु पाल बाँधो बूड़त है बेरी।
बिरहिणि पिव की बाट जोवै राखि ल्यौ नेरी।
दासि 'मीराँ' राम रटत है, मैं सरण हूँ तेरी ॥२२६॥

कठण लगन की प्रीत रे, हरि लागी सोई जाने ॥
प्रीत करी कछु रीत ना जाणी छोड़ चले अधबीच ॥
दुःख की वेला कोई काम न आवे सुख के सब है मीत।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर आखर जात अहीर ॥२२७॥

पिया तेरे नाम लुभाणी हो।
नाम लेत तिरता सुण्या, जैसे पाहण पाणी हो।
सुकिरत कोई ना कियो, बहु करम कुमाणी हो।
गणिका कीर पढ़ावताँ बैकुंठ बसाणी हो।
अरध नाम कुंजर लियो वाकी अवधि छुतानी[1] हो।
गरुड़ छाँड़ि हरि धाइया पसु-जूण घटानी[2] हो।
अजामेल से ऊधरे जम-त्रास नसानी हो।
पुत्र-हेतु पदवी दई जग सारे जाणी हो।
नाम महातम गुरु दियो परतीति पिछाणी हो।
'मीराँ' दासी रांवली अपणी कर जाणी हो ॥२२८॥

साँवरा म्हारी प्रीत निभाज्यो जी।
थे छो म्हारा गुण रा सागर औगुण म्हारूँ मति जाज्यो जी।
लोक न धीजै (म्हारो) मन न पतीजै मुखड़ारा सबद सुणाज्यो जी।
मैं तो दासी जनम जनम की म्हारे आँगण रमता आज्यो जी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर बेड़ो पार लगाज्यो जी ॥२२९॥

राग सिंध भैरवी

म्हाँरे घर होता जाज्यो राज।
अब के जिन टाला दे जाज्यो सिर पर राखूँ बिराज।
म्हें तो जनम जनम री दासी थे म्हाँरा सिरताज।
पावणड़ा[3] म्हाँरे भलाँ ही पधारो सब ही सुधारण काज।

---

१. पाठा०—घटानी। २. पाठा०—मिटाणी। ३. पाठा०—पाहुनड़ा।

म्हें तो बुरी छाँ थाँरे भली छै घणोरी तुम हो एक रसराज।
थाँने हम सबही की चिंता (तुम) सबके हो[1] गरिबनिवाज।
सब के मुगट सिरोमणि सिर पर मानों पुण्य की पाज।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर बाँह गहे की लाज ॥२३०॥

कभी म्हाँरी गली आवरे, जिया की तपत बुझाव रे,
म्हाँरे मोहना प्यारे।
तेरे साँवलो बदन पर कई कोट काम वारे।
तेरी खूबी के दरस पै नैन तरसते म्हाँरे।
घायल फिरूँ तड़पती पीड़ जाने नहिं कोई।
जिस लागी पीड़ प्रेम की जिन लाई जाने सोई।
जैसे जल के सोखे मीन क्या जिवें बिचारे।
कृपा कीजे दरस दीजे 'मीराँ' नंद के दुलारे ॥२३१॥

राग सोरठ

थाँने काईं काईं कह समझाऊँ म्हारा वाल्हा गिरिधारी।
पूरब जनम की प्रीति हमारी अब नहीं जात निवारी।
सुंदर बदन जोवते सजनी प्रीति भई छे भारी।
म्हाँरे घरे पधारो गिरिधर मंगल गावैं नारी।
मोती चौक पुराऊँ वाल्हा[2] तन मन तो पर वारी।
म्हाँरो सगपण तोसूँ साँवलिया जुग सुँ नहीं विचारी।
'मीराँ' कहे गोपिन को वाल्हो हमसूँ भयो ब्रह्मचारी।
चरन सरन है दासी तुम्हारी पलक न कीजै न्यारी ॥२३२॥

राग सोरठ, तिताला

आवो जी, गिरिधारी, थाँसुँ म्हें बोलै।
थ तो म्हाँरा जनम जनमरा संगी थाँरे लाराँ लाराँ संग में डोलै।
आदि अन्त तन मन धन मेरे आनँद कराँ कलोलै।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर आन मिलो अनमोलै ॥२३१॥

थाँरी छबि प्यारी लागे राज, राधावर महाराज।
रतन जटित शिर पेंच कलंगी केशरिया सब साज।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल रसिकों रा सिरताज।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर म्हाँने मिल गया व्रजराज ॥२३४॥

---

१. पाठा०—तुम हो। २. पाठा०—प्यारा।

होता जाज्यो राज म्हाँरे महलाँ, होता जाज्यो राज ॥टेक॥
मैं औगुणी मेरा साहब सुगुणा, संत सँवारैं काज।
'मीराँ' के प्रभु मंदिर पधारो, करके केसरिया साज ॥२३५॥

योगिनी-रूप में निवेदन

जोगिया ने कहियो रे आदेस ॥ टेक ॥
आऊँगी, मैं नाहिं रहूँ रे, कर जटाधारी भेस।
चीर को फाडूँ कंथा पहिरूँ, लेऊँगी उपदेश।
गिणते गिणते घिस गई रे, मेरी उँगलियों की रेख।
मुद्रा माला भेष लूँ रे, खप्पर लेऊँ हाथ।
जोगिन होय जग ढूँढसूँ रे, साँवलिया के साथ।
प्राण हमारो वहाँ बसत है, यहाँ तो खाली खोड़।
मात पिता परिवार सूँ रे, रही तिनका तोड़।
पाँच पचीसों बस किये, मेरा पल्ला न पकड़ै कोय।
'मीराँ' व्याकुल विरहिणी कोइ आन मिलावै मोय ॥२३६॥

जोगिया ने कहज्यो जी आदेस।
जोगियो चतुर सुजाण सजनी ध्यावै संकर सेस।
आऊँगी मैं नाह रहूँगी (रे म्हारा) पीव विना परदेस।
करि किरपा प्रतिपाल मोपरि रखो न अपणैं देस।
माला मुँदरा मेखला रे व्हाला खप्पर लूँगी हाथ।
जोगिण होइ जग ढूँढ़सूँ रे म्हारा रावलियारी साथ।
सावण आवण कह गया व्हाला कर गया कौल अनेक।
गिणता गिणता घिस गई री म्हाँरा आँगलियारी रेख।
पीव कारण पीली पड़ी व्हाला जोबन वाली वेस।
दासि 'मीराँ' राम भजि कै तन मन कीन्हौ पेस ॥२३७॥

जोगिया जी निसिदिन जोऊँ वाट।
पाँव न चालै पंथ दुहेलो, आड़ा औघट घाट।
नगर आइ जोगी रम गया रे, मो मन प्रीत न पाइ।
मैं भोली भोलापण कीन्हौ, राख्यौ नहिं विलमाइ।
जोगिया कुँ जोवत वोहोत दिन बीता, अजहूँ आयो नाहिं।
बिरह बुझावण अन्तरि आवो, तपत लगी तन माहिं।
कै तो जोगी जग में नाहीं, कै विसारी मोइ।
काँइ करूँ कित जाऊँ री सजनी, नैण गुमायो रोइ।

आरति तेरी अंतरि मेरे, आवो अपणी जाण।
'मीराँ' व्याकुल बिरहणी रे, तुम बिनि तलफत प्राण ॥२३८॥

जोगी म्हाँने दरस दियाँ सुख होइ।
नातरि दुखी जग माँहि जीवड़ो, निसदिन झूरै तोइ।
दरद दिवानी भई बावरी, डोली सब ही देस।
'मीराँ' दासी भई है पंडर, पलट्या काला केस ॥२३९॥

जोगिया जी आवोने या देस[1]।
नण ज देखूँ[2] नाथ मेरो, ध्याइ करूँ आदेस।
आया सावण मास सजनी, भरे जल थल ताल।
रावल कुण बिलमाइ राखो बिरहिणि है बेहाल[3]।
बीछड़ियाँ कोइ भौ भयो (रे जोगी) ए दिन दूभर[4] जाइ।
एक वेरी देह फेरी नगर हमारे आइ।
वा मूरति मेरे मन बसे (रे जोगी) छिन भरि रह्यौ न जाइ।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी दरसण द्यौ हरि आइ[5] ॥२४०॥

जोगी मत जा मत जा मत जा,
पाँइ परूँ मैं चेरी तेरी हौं, जोगी मत जा मत जा मत जा ॥टेक॥
प्रेम-भगति को पैंड़ो ही न्यारो, हमकूँ गैल बता जा।
अगर चँदण की चिता बनाऊँ अपणे हाथ जला जा।
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपणे अंग लगा जा।
'मीराँ' कहै प्रभु गिरिधर नागर जोत में जोत मिला जा ॥२४१॥

म्हारे घर रमतो ही आइ रे तू जोगिया।
कानाँ बिच कुंडल गले बिच सेली अंग भमूत रमाइ रे।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है ग्रिह अँगणो न सुहाइ रे।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी दरसण द्यौ मोकूँ आइ रे ॥२४२॥

जोगिया से प्रीत कियाँ दुख होइ।
प्रीत कियाँ सुख ना मोरी सजनी जोगी मित न कोइ।
राति दिवस कल नाहिं परत है तुम मिलियाँ बिनि मोइ।
ऐसी सूरति या जग माँहीं फेरि न देखी सोइ।
'मीराँ' के प्रभु कब र मिलोगे मिलियाँ आणँद होइ ॥२४३॥

---

१. पाठा०—जोगिया, आउ रे इण देस। २. पाठा०—नजरि परै जो। ३. तीसरी तथा चौथी पंक्ति दूसरे पाठ में नहीं है। ४. पाठा०—अहला। ५. पाठा०—'मीराँ' के कोई नाहीं दूजो दरसन दीज्यो आइ।

जोगियाजी छाइ रह्या परदेस।
जब का बिछड्या फेर न मिलिया बहुरि न दियो सँदेस।
या तन ऊपरि भसम रमाऊँ खोर करूँ सिर केस।
भगवाँ भेख धरूँ तुम कारण ढूँढत च्यारूँ देस।
'मीराँ' के प्रभु राम मिलण कूँ जीवन जनम अनेस ॥२४४॥

जोगियारी प्रीतड़ी है दुखड़ा रो मूल।
हिलमिल बात बणावत मीठी, पीछे जावत भूल।
तोड़त जेज करत नहि सजनी जैसे चँपली के फूल।
'मीराँ' कहै प्रभु तुमरे दरस बिन लगत हिवड़ा में सूल ॥२४५॥

जोगिया तू कब रे मिलैगो आइ[1]।
तेरे ही कारण जोग लियो है घर घर अलख जगाइ।
दिवस न भूख रैण नहिं निद्रा तुझ बिन कछु न सुहाइ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर[2] मिल कर तपत बुझाइ ॥२४६॥

राग बिहाग

धूतारा जोगी एक रसूँ हँसि बोल।[3]
जगत बिदीत करी मनमोहन कहा बजावत ढोल।
अंग भभूति गले म्रिगछाला तू जन गुदियाँ खोल।
सदन सरोज बदन की सोभा ऊभी जोऊँ कपोल।
सेली नाद बभुत न बटवो अजूँ मुनी मुख खोल।
चढ़ती बैस नैण अणियाले तूँ घरि घरि मत डोल।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी चेरी भई बिन मोल ॥२४७॥

जोगियारी सूरत मन में वसी।
नित प्रति ध्यान करत हूँ दिल में, निस दिन होत खुसी।
काइ करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, मानो सरप डसी।
'मीराँ' कहै प्रभु कब रे मिलोगे, प्रीत रसीली बसी ॥२४८॥

मैंने सारा जंगल ढूँढ़ा रे, जोगीड़ा न पाया।
कान बीच कुंडल जोगी, गले बीच सेली, घर घर अलख जगाया रे।
अगर चँदन का जोगी धूणी धरवाई अँग बीच भभूत लगाया रे।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर शबद का ध्यान लगाया रे ॥२४९॥

---

१. पाठा०—कबहुँ मिलैगो मोहि आइ, रे तूँ जोगिया। २. पाठा०—हरि अविनासी। ३. पद संख्या ११५ से मिलता जुलता पाठ है।

तेरो मरम नहिं पायो रे जोगी।
आसण माँडि गुफा में बैठो ध्यान, हरी को लगायो।
गल बिच सेली हाथ हाजरियो अंग भभूति रमायो।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी भाग लिख्यो सोही पायो ॥२५०॥

राम को संबोधन

तुम आज्यो जी रामा, आवत आस्याँ सामा।
तुम मिलियाँ मैं बहु सुख पाऊँ, सरैं मनोरथ कामा॥
तुम बिच हम बिच अंतर नाँहीं जैसे सूरज घामा।
'मीराँ' के मन और न मानै, चाहै सुंदर स्यामा॥२५१॥

रघुनंदन आगे नाचूँगी।
नाच नाच रघुनाथ रिझाऊँ प्रेमी जन को जाँचूँगी।
प्रेम प्रीत का बाँध घघूँरा सुरत की कछनी काछूँगी।
लोक लाज कुल की मरजादा यामें एक न राखूँगी।
पिया के पलँगा जा पौढूँगी 'मीराँ' हरि रँग राचूँगी॥२५२॥

राग खंभावती

राम नाम मेरे मन बसियो, रसियो राम रिझाऊँ, ए माय।
मैं मँद भागिण करम अभागिण कीरत कैसे गाऊँ, ए माय।
बिरह पिंजर की बाड़ सखी री उठ कर जी हुलसाऊँ, ए माय।
मन कूँ मार सजूँ सतगुरु सूँ, दुरमत दूर गमाऊँ, ए माय।
धाको[1] नाम सुरत की डोरी डाको[2] प्रेम चढ़ाऊँ, ए माय।
प्रेम[3] को ढोल बन्यो अति भारी मगन होय गुण गाऊँ, ए माय।
तन करूँ ताल, करूँ मन-मोरचँग[4] सोती सुरत जगाऊँ, ए माय।
निरत करूँ मैं प्रीतम आगे तो अमरापुर[5] पाऊँ, ए माय।
मो अबला पर किरपा कीज्यो गुण गोविंद के गाऊँ, ए माय।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर रज चरणाँ की पाऊँ, ए माय॥२५३॥

मोरे तो मन राम-चरण सुखदाई।
जिन चरणन सों निकसी सुरसरि शंकर जटा समाई॥
जटा शंकरी नाम धर्‌यो है, त्रिभुवन तारन आई॥

---

१. पाठा०—हांको। २. पाठा०—कड़ियाँ। ३. पाठा०—ज्ञान। ४. पाठा०—डफली। ५. पाठा०—प्रीतम पद।

जिन चरणन की विमल पादुका, भरत रहे लव लाई।
जो केवट कहँ पावन कीन्हों, जब प्रभु नाव चढ़ाई॥
दंडक बन राम पावन कीन्हों, मुनियन दुःख मिटाई।
जो ठाकुर तिहुँ लोक को स्वामी कपट कुरँग सँग धाई॥
कपि सुग्रीव बंधु-भय व्याकुळ, जा शिर छत्र धराई।
रिपु को अनुज विभीषण भेंट्यो, 'मीराँ' की बारी आई॥२५४॥

राग विहागड़ा

रमइया बिन या जिवड़ो दुख पावै, कहो कुण धीर बँधावै॥टेक॥
या संसार कुबुध कौ भाँडो, साध-सँगति नहिं भावै।
राम नाम की निंद्या ठाणै, करम ही करम कुमावै।
राम नाम बिनि मुकुति न पावै, फिर चौरासी जावै।
साध सँगत में कबहुँ न जावै, मूरख जनम गमावै।
'मीराँ' प्रभु गिरिधर के[1] सरणैं जीव परम पद पावै॥२५५॥

राग पीलू

देखत राम हँसे सुदामाँ कूँ, देखत राम हँसे।
फाटी तो फूलड़ियाँ पाँव उभाणे चलतें चरण घसे।
बालपणे का मिंत सुदामाँ, अब क्यूँ दूर बसे॥
कहा भावज नें भेंट पठाई ताँदुल तीन पसे।
कित गइ प्रभु मोरी टूटी टपरिया हीरा मोती लाल कसे॥
कित गई प्रभु मोरी गउअन बछिया द्वारा बिच हसती फसे।
'मीराँ' के प्रभु हरि अबिनासी सरणे तोरे बसे॥२५६॥

रमैया बिन नींद न आवै।
नींद न आवै, बिरह सतावै, प्रेम की आँच ढुळावै॥
बिन पिय जोत मँदिर अँधियारो, दीपक दाय न आवै।
पिय बिन मेरी सेज अलूणी जागत रैण बिहावै,
पिया कब रे घर आवै॥
दादुर मोर पपिहरा बोलै कोयल सबद सुणावै।
घुमँड घटा ऊलर होय आई दामिण दमकि डरावै,
नैन झर लावै॥

---

१. पाठा०—'जन मीराँ' सतगुरु के।

कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी वेदन कूँण बतावै।
बिरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावै,
जड़ी घस लावै॥
को है सखी सहेली सजनी पिया कूँ आन मिलावै।
'मीराँ' कूँ प्रभु कब रे मिलोगे मनमोहन मोहिं भावै,
कबै हँसकर बतलावै॥२५७॥

राग पीलू

राम मिलण के काज सखी, मेरे उर में आरति जागी री।
तलफत तलफत कल न परत है, बिरह बाण उर लागी री।
निसदिन पंथ निहारूँ पिव को, पलक न पल भरि लागी री॥
पीव पीव मैं रटूँ रात दिन, दूजी सुध बुध भागी री।
बिरह भुवँग मेरो डस्यो है कलेजो, लहर हलाहल जागी री॥
मेरी आरति मेटि गुसाईं, आइ मिलौ मोहि सागी री।
'मीराँ' व्याकुल अति उकलाँणी पिव की उमँग अति लागी री॥२५८॥

माई मोरे नयन बसे रघुबीर।
कर सर चाप कुसम सर लोचन, ठाढ़े भये मन धीर॥
ललित लवंग लता नागर लीला, जब पेखो तब रणधीर।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, बरसत कंचन नीर॥२५९॥

मेरे प्रीतम प्यारे राम कू[1] लिख भेजूँ री पाती।
स्याम सनेसो कबहुँ न दीन्हों जान बूझ गुझ बाती॥
ऊँचो चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ रोय रोय[2] अँखियाँ राती।
तुम देख्याँ बिन[3] कल न परत है हियो फाटत मोरी छाती॥
'मीराँ' कहे[4] प्रभु कब रे मिलोगे पूरब जनम के साथी॥२६०॥

राग पीलू

रमइया बिन रह्योइ न जाय।
खान पान मोहिं फीको सो लागै, नंणा रहे मुरझाय।
बार बार मैं अरज करूँ हूँ, रैण गई दिन जाय।
'मीराँ' कहै हरि तुम मिलियाँ बिन तरस तरस तन जाय॥२६१॥

---

१. पाठा०—ने। २. पाठा०—डगर बुहारूँ पंथ निहारूँ जोइ जोइ।
३. पाठा०—राति दिवस मोहि। ४. पाठा०—के।

राग धनाश्री

परम सनेही राम की नित ओलूँ री[1] आवै।
राम हमारे हम हैं राम के, हरि बिन कछू न सुहावै।
आवण कह गये अजहुँ न आये, जियड़ो अति चकलावै।
तुम दरसण की आस रमैया, कब हरि दरस दिखावै[2]।
चरण-कँवल की लगनि लगी नित[3], बिन दरसण दुख पावै।
'मीराँ' कूँ प्रभु दरसण दीज्यौ[4] आणँद बरण्यु न जावै ॥२६२॥

राग प्रभाती

राम मिलण रो घणो उमावो नित उठ जोऊँ बाटड़ियाँ।
दरस बिना मोहि कछु न सुहावै, जक[5] न पड़त है आँखड़ियाँ।
तलफत तलफत बहु दिन बीता, पड़ी बिरह की फाँसड़ियाँ।
अब तो बेगि दया कर प्यारे, मैं तो तुम्हारी दासड़ियाँ।
नैण दुखी दरसण कूँ तरसैं, नाभि न बैठे साँसड़ियाँ।
राति दिवस यह आरति मेरे, कब हरि राखै पासड़ियाँ।
लगी लगनि छूटण की नाहीं, अब क्यूँ कीजै, आँटड़ियाँ।
'मीराँ' के प्रभु कबर मिलोगे[6], पूरौ मन की आसड़ियाँ ॥२६३॥

मैं तो म्हाँरा रमैया ने, देखबो करूँ री।
तेरो ही उमरण तेरो ही सुमरण, तेरो ही ध्यान धरूँ री।
जहाँ जहाँ पाँव धरूँ धरणी पर, तहाँ तहाँ निरत करूँ री।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरणाँ लिपट परूँ री ॥२६४॥

जँगला-तिताला

भई रे मैं राम दिवानी रे, कृष्ण दिवानी रे।
आगे लशकर पाछे डेरा, जित देखूँ तित साहेब मेरा।
कोरा घड़ा गंगा जळ पानी, जो रे पीवे सो होय निर्व्वानी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरन कमल रज लपटानी ॥२६६॥

जँगला-तिताला

भई रे मैं राम दिवानी रे।
जो कोई हो राम दिवानी, पावै सोई पद निर्व्वानी।

---

१. पाठा०—ओलूड़ी। २. पाठा०—निसि दिन चितवत जावै। ३. पाठा०—अति। ४. पाठा०—दीन्हा। ५. पाठा०—कल। ६. पाठा०—गिरिधर नागर।

लोक लाज शोभा कुल तज के तन मन की सुध बिसरानी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर आ मिल मोहें सारँग पानी ॥२६६॥

राग काफी

मैं तो तेरी सरण परी रे राम, ज्यूँ जाणे ज्यूँ तार।
अड़सठ तीरथ भ्रमि-भ्रमि आयो मन नहिं मानी हार।
या जग में कोई नहिं अपणा सुणियौ श्रवण मुरार।
'मीराँ' दासी राम भरोसे जम का फंदा निवार ॥२६७॥

राग सोरठ

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत।
आसण मॉड अडिग होय[1] बैठा, याही भजन की रीत।
मैं तो जाणूँ जोगी संग चलेगा, छाँड़ गया अध बीच।
आत न दीसे, जात न दीसे, जोगी किसका मीत।[2]
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर चरणन आवे चीत ॥२६८॥

रमैया मैं तो थाँरे रँग राती।
औराँ के पिय परदेस बसत हैं, लिख लिख भेजें पाती।
मेरा पिया मेरे हिरदे[3] बसत है, गूँज[4] करूँ दिन राती।
चूवा चोला पहिरि सखी री, मैं झुरमट रमवा जाती।
झुरमट में मोंहि मोहन मिलिया, खोल मिलूँ गल बाटी[5]।
और सखी मद पी पी माती, मैं बिन पीयाँ मदमाती।
प्रेम भठी को मैं मद पीयो, छकी फिरूँ दिन राती।
सुरत निरत का दिवला सँजोया, मनसा पूरत बाती।
अगम घाणि का तेल सिंचाया, बाल रही दिन राती।
जाऊँ नी पीहरिये जाऊँ नी सासुरिये, सत गुरु[6] सैन लगाती।
दासि 'मीराँ' के प्रभु गिरिधरनागर, हरि चरनाँ चित लाती[7] ॥२६९॥

---

१. पाठा०—आसन मार गुफा महिं।

२. पाठा०—विपत परे कोई काम न आवे स्वारथ के सब मीत।

३. पाठा०—हीय। ४. पाठा०—रोल। ५. पाठा०—गल बाँधी।

६. पाठा०—हरि सूँ। ७. पाठा०—की मैं दासी। इस पूरे पद का दूसरा पाठ निम्नलिखित मिलता है—

हेली सुरत सोहागिन नार, सुरत मेरी राम से लगी। हेली०।
लगनी लहँगा पहिर सोहागिन बीती जाय बहार।
धन जोवन दिन चार का रे, जात न लागे वार।
झूठे वर को क्या वरूँ जी, अध बिच में तज जाय।
वर वराँ ला राम जी, म्हारो चूड़ो अमर हो जाय।
राम नाम का चूड़लो हो, निरगुन सुरमो सार।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर हरि चरणाँ को मैं दार ॥२७०॥

राग विहाग

राम मोरी बाँहड़ली जी गहो।
या भवसागर मँझधार में, थे ही निभावण हो।
म्हाँ में ओगण घणा छै हो प्रभुजी, थे ही सहो तो सहो।
'मीराँ' के प्रभु हरि अबिनासी लाज विरद की वहो ॥२७१॥

सतगुरु-प्रशंसा

म्हाँरा सतगुर वेगाँ आज्यो जी, म्हाँ रे सुख री सीर वुवाज्यो जी।
तुम बीछड़ियाँ दुख पाऊँ जी, मेरा मन माँही मुरझाऊँ जी।
मैं कोइल ज्यूँ कुरलाऊँ जी, कुछ बाहिर कहि न जणाऊँ जी।
मोहिं बाघण बिरह सँतावै जी, कोई कहियाँ पार न पावै जी।
ज्यूँ जल त्याग्या मीन जी, तुम दरसण बिन खीन जी।
ज्यूँ चकवी रैंण न भावै जी, वा ऊगो भाण सुहावै जी।

सखी री मैं तो गिरिधर के रँग राती।
पचरँग मेरा चोला रँग दे मैं झुरमट खेलन जाती।
झुरमट में मेरा साईं मिलेगा खोल अडंबर गाती।
चंदा जायगा सुरज जायगा जायगा धरण अकासी।
पवन पाणी दोनों ही जायँगे अटल रहे अविनासी।
सुरत निरत का दिवला सँजोले मनसा की कर बाती।
प्रेम हटी का तेल वना ले जगा करे दिन राती।
जिनके पिया परदेस वसत हैं लिखि लिखि भेजें पाती।
मेरे पिया मों माँहि वसत हैं कहूँ न आती जाती।
पीहर वसूँ न वसूँ सास घर सतगुरु सब्द सँगाती।
ना घर मेरा ना घर तेरा 'मीराँ' हरि रँग राती॥

ऊ दिन कबै करोला जी, म्हाँरे आँगण पाँव धरोला जी।
अरज करै 'मीराँ' दासी जी, गुर-पद-रज की मैं प्यासी जी ॥२७२॥

राग धानी

री मेरे पार निकस गया, सतगुर मारया तीर।
बिरह-भाल लगी उर अंतरि, ब्याकुल भया सरीर।
इत उत चित चालै नहिं कबहूँ, डारी प्रेम जँजीर।
कै जाणै मेरो प्रीतम प्यारो, और न जाणै पीर।
कहा करूँ मेरो बस नहिं सजनी, नैन झरत दोउ नीर।
'मीराँ' कहै प्रभु तुम मिळियाँ बिनि, प्राण धरत नहिं धीर ॥२७३॥

राग धानी

मोहि लागी लगन गुरु[1] चरनन की।
चरन बिना कछुवै नहिं भावै जग माया[2] सब सपनन की।
भवसागर सब सूखि गयो है फिकर नहीं मोहिं[3] तरनन की।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर आस वही गुरु सरनन की[4] ॥२७४॥

मर मारी रे बानाँ मेरे सत गुरु बिरह लगाय के।
पाँवन पंगा, कानन बहिरा, सूझत नाहीं नैना।
खड़ी खड़ी रे पंथ निहारूँ, मरम न कोई जाना।
सतगुरु औषद ऐसी दीन्हीं, रूम रूम भई चैना।
सतगुरु जस्या बैद नहि कोई, पूछो वेद पुराना।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, अमर लोक में रहना ॥२७५॥

मैं तो राजी भई मेरे मन में, मोहिं पिया मिले इक छन में।
पिया मिल्या मोहिं किरपा कीन्हीं, दीदार दिखाया हरि नें।
सतगुरु सबद लखाया अंसरी, ध्यान लगाया धुन में।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, मगन भई मेरे मन में ॥२७६॥

मीरा मन मानी सुरत सैल असमानी।
जब जब सुरत लगे बा घर की, पल पल नैनन पानी।
ज्यों हिये पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी।
रात दिवस मोहिं नींद न आवत, भावै अन्न न पानी।

---

१. पाठा०—हरि। २. पाठा०—मोहे कछु नहिं भावै झूठी माया।
३. पाठा०—नही फ़िकर उस। ४. पाठा०—उलटी बिथा अब नयनन की।

ऐसी पीर बिरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी।
ऐसा बैद मिलै कोइ भेदी, देस बिदेस पिछानी।
तासों पीर कहूँ तन केरी, फिर नहि भरमों खानी।
खोजत फिरों भेद वा घर को, कोई न करत बखानी।
रैदास संत मिले मोहिं सतगुरु, दीन्ह सुरत सहदानी।
मैं मिली जाय पाय पिय अपना तब मोरी पीर बुझानी।
'मीराँ' खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी ॥२७७॥

कोई कछू कहे मन लागा॥
ऐसी प्रीत लगी मनमोहन, ज्यूँ सोने में सुहागा।
जनम जनम का सोया मनुआँ, सतगुरु सब्द सुण जागा॥
मात पिता सुत कुटुंब कबीला, टूट गया ज्यूँ तागा।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर भाग हमारा जागा ॥२७८॥

मिलता जाज्यो हो गुरु ज्ञानी, थाँरी सूरत देखि लुभानी।
मेरो नाम बूझि तुम लीज्यो, मैं हूँ बिरह दिवानी॥
रात दिवस कल नाँहि परत है, जैसे मीन बिन पानी॥
दरस बिना मोहिं कछु न सुहावै, तलफ तलफ मर जानी॥
'मीराँ' तो चरणन की चेरी, सुन लीजे सुखदानी ॥२७९॥

राग सारंग

पायो जी म्हे तो नाम रतन धन पायो।
बस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरु, किरपा कर अपनायो॥
जनम जनम की पूँजी पाई जग में सभी खोवायो।
खरचै नहिं खूटै, कोइ चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त[1] सवायो॥
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तरि आयो।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर हरखि हरखि जस गायो ॥२८०॥

म्हारी सुध ज्यूँ जानो त्यूँ लीज्यो जी।
पल पल भीतर पंथ निहारूँ, दरसन म्हाँने दीजो जी।
मैं तो हूँ बहु औगुणहारी, औगुण चित मत दीजो जी।
मैं तो दासी थाँरे चरणजनों[2] की, मिल बिछुरन मत कीजो जी।
'मीराँ' तो सतगुरु जी सरणे, हरि चरणाँ चित दीजो जी ॥२८१॥

---

१. पाठा०—बधत। २. पाठा०—कँवल।

राग प्रभावती

म्हाँरो जनम मरन को साथी, थाँने नहि बिसरूँ दिन राती।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जाणत मेरी छाती॥
ऊँची चढ़ि चढ़ि पंथ निहारूँ, रोय रोय अँखियाँ राती।
यो संसार सकल जग झूँठो, झूँठा कुल रा न्याती॥
दोउ कर जोड़्याँ अरज करूँ छूँ, सुण लीज्यो मेरी वाती।
यो मन मेरो बड़ो कुचाली[1], ज्यूँ मदमाँतो हाथी।
सतगुरु हाथ[2] धर्‌यो सिर ऊपर, आँकुस दै समझाती।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरणाँ चित राती॥२८२॥

राग मलार

लागी मोहिं राम खुमारी हो।
रिमझिम बरसै मेंहड़ा, भीजै तन सारी हो।
चहुँ दिसि चमकै दामणी, गरजै घन भारी हो।
सतगुर भेद बताइया, खोली भरम-किवारी हो।
सब घट दीसै आतमा, सब ही सूँ न्यारी हो।
दौ पग जोऊँ ग्यान का, चढ़ूँ अगम अटारी हो।
'मीराँ' दासी राम की इमरत बलिहारी हो॥२८३॥

राग जैजैवंती

गली तो चारो बन्द हुई मैं, हरि से कैसे मिलूँ जाय॥
ऊँची नीची राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।
सोच सोच पग धरूँ जतन से, बार बार डिग जाय॥
ऊँचा नीचा महल पिया का हमसे चढ़्या न जाय।
पिया दूर पँथ म्हाँरो झीणो, सुरत झकोला खाय॥
कोस कोस पर पहरा बैठ्या, पैंड पैंड बटमार।
हे विधना कैसी रच दीन्हीं, दूर बस्यो म्हाँरो गाम॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर सतगुरु दई बताय।
जुगन जुगन से बिछड़ी मीराँ घर में लीन्ही आय॥२८४॥

---

१. पाठा०—हरामो। २. पाठा०—दस्त।

अच्छे मीठे चाख चाख बेर लाई भीलणी ॥
ऐसी कहा अचारवती, रूप नाहीं एक रती,
नीच कुल ओछी जात, अति ही कुचालणी[1]।
झूठे फल लीन्हे राम, प्रेम की प्रतीति जाण,
ऊँच नीच जाने नहीं, रस की रसीलणी ॥
ऐसी कहा वेद पढ़ी, दिन[2] में विमाण चढ़ी,
हरि जू सों बाँध्यो हेत, वैकुँठ में झूलणी।
ऐसी प्रीत करे सोइ, दासि 'मीराँ' तरै जोइ,
पतित-पावन प्रभु, गोकुल अहीरणी ॥२८४॥

मिलन की भावना—

कहो ने जोशी प्यारा, राम मिलन कब होशी।
जो जोशी मोहें प्रभू मिले तो, हीरा जड़ावुँ तेरी पोथी।
जो जोशी मोहे प्रभु ना मिले तो, झूठी पड़े तेरी पोथी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, राम मिले सुख होशी ॥२८६॥

राग सोरठ

जोसीड़ा ने लाख बधाई रे, अब घर आये स्याम ॥
आजि आनँद उमँगि भयो है, जीव लहै सुख धाम।
पाँच सखी मिलि पीव परसिकैं, आनँद ठामूँ ठाम ॥
बिसरि गई दुख निरखि पिया कूँ, सुफल मनोरथ काम।
'मीराँ' के सुखसागर स्वामी भवन गवन कियो राम ॥२८७॥

राग परज

सहेलियाँ साजन घरि आया हो।
बहोत दिनाँ की जोवती, विरहणि पिव पाया हो ॥
रतन करूँ नेवछावरी, ले आरति साजूँ हो।
पिव का दिया सनेसड़ा, ताहि बहोत निवाजूँ हो ॥
पाँच सखी इकठी भई, मिलि मंगळ गावैं हो।
पिय का रळी वधावणाँ, आणँद अँग न मावै हो ॥
हरिसागर सूँ नेहरो, नैणाँ बँध्या सनेह हो।
'मीराँ' सखी के आँगणै दूधाँ वूठा मेह हो ॥२८८॥

---

१. पाठा०—कुचीलणी। २. पाठा०—छिन।

म्हारा ओलगिया घर आया जी।
तन की ताप मिटी सुख पाया, हिलमिल मंगल गाया जी।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आणँद छाया जी।
मगन भई मिलि प्रभु अपणा सूँ, भौ का दरद मिटाया जी।
चंद कूँ देखि कमोदणि फूलै, हरखि भया मेरी काया जी।
रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया जी।
सब भगतन का कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया जी।
'मीराँ' बिरहणि सीतल होई, दुख दुंद दूरि न्हसाया जी ॥२८९॥

राग कल्याण

साजन सुधि ज्यौं जाणौं त्यौं लीज्यौ जी।[1]
म्हे तो दासी जनम जनम की कृपा रावरी कीज्यो जी।
ऊठत बैठत जागत सोवत कबहुँक यादि करीज्यो जी।
आवत जावत जीवत पीवत सुपनैं सुरति धरीज्यौ जी।
तुम पतिवरता नारि बिना प्रभु काहू सौं न पतीज्यौ जी।
साँचो प्रेम प्रीति रो नातो ताही सौं तुम रीझ्यो जी।
राति दिवस मोंहि ध्यान तिहारो आप ही दरसन दीज्यौ जी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर मिलि बिछुरन मति कीज्यौ जी ॥२९०॥

बिराग-ज्ञान-भक्ति

नैनन बनज बसाऊँ री जो मैं साहिब पाऊँ।
इन नैनन मेरा साहिब बसता डरती पलक न लाऊँ री।
त्रिकुटी महल में बना है झरोखा तहाँ से झाँकी लगाऊँ री।
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ सुख की सेज बिछाऊँ री।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर बार बार बलि जाऊँ री ॥२९१॥

राग सोहनी

मैं जाण्यो नाहीं प्रभु को मिलण कैसे होय री।
आये मेरे सजना फिरि गये अँगना, मैं अभागण रही सोय री।
फाडूँगी चीर करूँ गल कंथा, रहूँगी बैरागण होय री।
चुड़ियाँ फोरूँ माँग बखेरूँ, कजरा मैं डारूँ धोय री।
निसि बासर मोहिं बिरह सतावै, कल न परत पल मोय री।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछुड़ो मति कोयरी ॥२९२॥

---

१. इसी टेक का एक पद संख्या १८८ पर भी है।

राग नीलांबरी

सुरत दीनानाथ सूँ लगी, तूँ तो समझ सुहागण नार ॥
लगनी लहँगो पहर सुहागण, बीती जाय वहार।
धन जोवन है पावणा री, मिलै न दूजी वार ॥
राम नाम को चुड़लो पहिरो, प्रेम को सुरमो सार।
नकवेसर हरि नाम की री, उतर चलोनी परले पार ॥
ऐसे घर को क्या वरूँ, जो जनमै और मर जाय।
बर बरिये एक साँवरो री, (मेरो) चुड़लो अमर होय जाय ॥
मैं जान्यों हरि मैं ठग्यो री, हरि ठग ले गयो मोय।
लख चौरासी मोरचा री, छिन में गेरया छै विगोय ॥
सुरत चली जहाँ मैं चली री, कृष्ण-नाम झणकार।
अबिनासी की पोल पर जी, 'मीराँ' करै छै पुकार ॥२९३॥

राग पीलू बरवा

बड़े घर ताली लागी रे, म्हाराँ मनरी उणारथ भागी रो।
छीलरिये म्हाँरो चित्त नहीं रे, डाबरिये कुण जाव ॥
गंगा जमनाँ सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाय मिलूँ दरियाव।
हाल्याँ मोल्याँ सूँ काम नहीं रे, सीख नहीं सिरदार ॥
कामदाराँ सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाय करूँ दरबार।
काच कथीर सूँ काम नहीं रे, लोहा चढ़े सिर भार ॥
सोना रूपा सूँ काम नहीं रे, म्हाँरे हीराँ रो बौपार।
भाग हमारो जागियो रे, भयो समँद सूँ सीर ॥
अम्रित प्याला छाँड़ि कै, कुण पीवै कड़वो नीर।
पीपा कूँ प्रभु परचो दीन्हो, दिया रे खजीना पूर ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, धणी मिल्या छै हजूर ॥२९४॥

राग रामकली

अब तो निभायाँ बनेगी[1] बाँह गहे की लाज।
समरथ सरण तुम्हारी सइयाँ, सरब सुधारण काज ॥
भवसागर संसार अपरबल, जामें तुम हो जहाज।
निरधाराँ आधार जगतगुरु, तुम बिन होय अकाज ॥
जुग जुग भीर हरी भक्तन की दीन्ही मोच्छ समाज।
'मीराँ' सरण गही चरणन की लाज[2] रखो महराज ॥२९५॥

---

१. पाठा०—सरेगी। २. पाठा०—पैज।

राग हमीर

आवो सहेल्याँ रली करॉं हे, पर घर गवण निवारि।
झूठा माणिक मोतिया री, झूठी जगमग जोति।
झूठा सब आभूखण री, साँची पियाजी री पोति॥
झूठा पाट पटंबरा रे, झूठा दिखणी चीर।
साँची पियाजी री गूदड़ी, जामें निरमल रहै सरीर॥
छप्पन भोग बुहाइ दे हे, इण भोगनि में दाग।
लूण अलूणो ही भलो हे, अपणे पियाजी रो साग॥
देखि बिराणो निवाँण कूँ हे, क्यूँ उपजावै खीज।
कालर अपणो ही भलो हे, जामें निपजै चीज॥
छैल बिराणो लाख को हे, अपणे काज न होइ।
ताके सँग सीधारताँ हे, भला न कहसो कोइ॥
वर हीणो अपणो भलो हे, कोढ़ी कुष्टी कोइ।
जाके सँग सीधारताँ हे, भला कहे सब लोइ॥
अविनासी सूँ बालवा हे, जिनसूँ साँची प्रीत।
'मीराँ' कूँ प्रभू मिल्या हे, एही भगति की रीति॥२६८॥

राग मारू

पिय मोहि आरति तेरी हो।
आरति तेरे नाम की, मोहिं साँझ सवेरी हो।
या तन को दिवला करूँ, मनसा की बाती हो।
तेल जलाऊँ प्रेम को, बालूँ[1] दिन राती हो।
पाटी पारूँ ज्ञान की बुधि माँग सँवारू हो।
पिया तेरे कारणे, धन जोबन वारूँ हो।
सेजड़िया बहु रंगिया, चंगा फूल बिछाया हो।
रैण गई तारा गिणत, प्रभु अजहुँ न आया हो।[2]
आयो सावण भादवो, वर्षा ऋतु आई हो।
स्याम पधारया सेज में, सूनी सेन जगाई हो।[3]

---

१. पाठा०—सींचो।
२. पाठा०—हिंगलू ढास्यो ढालियो फूलमिज बिछाई हो।
तुमको देखत साँवरा नैणा नींद न आई हो॥
३. पाठा०—मीजडला मिलि हो रही नैणा डर लाई हो।

तुम हो पूरे साइयाँ[1], पूरा सुख दीजै हो।
'मीराँ' व्याकुल विरहणी[2] अपनी कर लीजै हो[3] ॥२६७॥

राग जोगिया

म्हाला[4] मैं वैरागण हूँगी ॥ टेक ॥
जिन भेषाँ[5] म्हाँरो साहिब रीझै, सोई भेष धरूँगी ॥
सील सँतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी।
जाको नाम निरंजन कहिये, ताको ध्यान धरूँगी[6] ॥
गुरु के ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूँगी।
प्रेम-प्रीत सूँ हरि गुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी ॥
या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम कहूँगी[7]।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, साधाँ संग रहूँगी ॥२६८॥

---

१. पाठा०—तुम हो पूरण पूरण;। २. पाठा०—मीरा दासी वारयौं।
३. इस पूरे पद का निम्नलिखित पाठ भी मिलता है—

स्याम तेरी आरति लागी हो।
गुरु परतापे पाइया, तन-दुरगति[1] भागी हो।
या तन को दियनाँ करों, मनसा करों बाती हो।
तेल भरावों प्रेम का, बारों दिन राती हो।
पाटी पारों ज्ञान की, मति माँग सँवारों हो।
तेरे कारन साँवरे, धन-जोबन वारों हो।
यह सेजिया बहु रंग की, बहु फूल बिछाए हो।
पंथ मैं जोहौं स्याम का, अजहूँ नहि आये हो।
सावन भादो ऊमगो, बरषा ऋतु आई हो।
मौह-घटा घन घेरि कै, नैनन झरि लाई हो।
मात-पिता तुमको दियो, तुम ही भल जानो हो।
तुम तजि और भतार को, मनमें नहिं आनों हो।
तुम प्रभु पूरन ब्रह्म हो, पूरन पद दीजै हो।
'मीराँ' व्याकुल विरहनी, अपनी कर लीजै हो ॥

४. पाठा०—लाला। ५. पाठा०—जिन जिन भेष। ६. यह पंक्ति एक प्रति में नहीं है। ७. पाठा०—राम रटूँगी।

---

१. पाठा०—दुरमति।

उपदेश-भजन

यहि बिधि भक्ति कैसे होय ? ॥टेक॥
मन की मैल हिये से न छूटी, दियो तिलक सिर धोय ॥
काम कूकर लोभ डोरी, बाँधि मोहिं चंडाल।
क्रोध कसाई रहत घट में, कैसे मिलैं गोपाल ॥
बिलार बिषया लालची रे, ताहि भोजन देत।
दीन हीन ह्वै क्षुधा तरसे, राम नाम न लेत ॥
आपहि आप पुजाय केरे, फूले अँग न समात।
अभिमान टीला किये बहु, कहु जल कहाँ ठहरात ॥
जो तेरे हिय अन्तर की जाणे, तासों कपट न बनै।
हिरदे हरि को नाम न आवे, मुख तैं मणिया गनै ॥
हरि हितू से हेत कर, संसार आसा त्याग।
दासि 'मीराँ' लाल गिरिधर, सहज कर वैराग ॥१९९॥

राग बिलावल

नहिं ऐसो जनम बारंबार ॥ टेक ॥
क्या जानूँ कछु पुण्य प्रगटे, मानुषा अवतार ॥
बढ़त छिन छिन घटत पल पल, जात न लागे वार।
बिरछ के ज्यों पात टूटे, बहुरि न लागे डार[1] ॥
भवसागर अति जोर कहिये, अनँत ऊँड़ीधार[2]।
राम नाम का बाँध बेड़ा, उतर परले पार[3] ॥
ज्ञान-चौसर मँडी चौहटे, सुरत-पासा सार।
या दुनिया में रची बाजी, जीत भावै हार ॥
साधु संत महंत ज्ञानी, चलत करत पुकार।
दासि 'मीराँ' लाल गिरिधर जीवणा दिन च्यार ॥२००॥

राग बिहाग

करम गति टारे नाहिं टरे।
सतवादी हरिचंद से राजा, नीच घर नीर भरे ॥
पाँच पाँडु अरु सती[4] द्रौपदी, हाड़ हिमाले गरे।

१. पाठा०—लगे नहिं पुनि डार। २. पाठा०—विषम औखी धार।
३. पाठा०—सुरत का नर बाँध बेड़ा वेग उतरो पार। ४. पाठा०—कुंती।

जग्य कियो बलि लेण इंद्रासण, सो पाताल धरे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, विखसे अम्रित करे ॥२०१॥

राग मारू

कर्म की गत न्यारी, संतो कर्म की गत न्यारी।
बड़े बड़े नैन दीये मरघन[1] कुँ बन बन फिरत उघारी रे ॥
उज्वल बरन दीनी बगलन कुँ, कोयल कर दीनी कारी रे।
ओर नदियन जल निर्मल कीनो, समुदर कर दीनी खारी रे ॥
मुरख कुँ उत्तम राज दायत हो, पंडित फिरत भिखारी रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर राणो जीतो कान विचारी रे ॥२०२॥

राग काफी

उठ तो चले अवधूत, मढ़ीमाँ कोई ना विराजे, उठ चले अवधूत।
पंथी हतो ते पंथे लाग्यो, आसन पड़ रही विभूत ॥
चेलो साथी कोई ना सुधर्यो, सबही नीवड़्या कपूत।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, टूट तो गये घर सूत ॥२०३॥

चरण रज महिमा मैं जानी ॥ टेक ॥
येही चरण से गंगा प्रकटी भगीरथ कुल तारी ॥
येही चरण से विप्र सुदामा हरि कंचन धाम दीनी।
येही चरण से अहल्या उधारी गौतम की पटरानी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर येही चरण-कमल में लपटानी ॥२०४॥

कोई ना जाणे हरिया, तारी गति कोई ना जाणे।
मिट्टी खात मुख देखा जशोदा, चौदभुवन भरिया ॥
पढ़ी पाताल काली नागनाथ्यो सूर ने शशी डरिया।
डूबत ब्रज राख लियो हे, कर गोवर्द्धन धरिया ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, शरणे आयो सो तरिया ॥२०५॥

कवन गुमान भरी, वंसी तू कवन गुमान भरी ॥ टेक ॥
अपने तन पर छेद परेचे बाला तूँ बिछरी ॥
जात भाँत सब तोरो मैं जानूँ तू बन की लकरी ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, राधा से क्यूँ झगरी ॥२०६॥

---

[1] मृग।

काय कुँ न लियो तब तूँ काय कुँ न लियो,
रामजी को नाम तब तूँ काय कुँ न लियो।
नव नव मास तूँने उदर में राख्यो,
झुलयो झुलायो तूने पारणे पौढ़ायो॥
रतन सो जतन करी तूने राख्यो,
बड़ो रे भयो तब ते कुल लजायो।
गुन काको बेटो गली माँही डोले,
पिता बिन पुत्र ए गुन काको कहायो।
'बाई मीराँ' के प्रभु तिहारा भजन बिना,
आयो उद्दो मन खोते ऐसे गुमायो॥२०७॥

लगे रहना, लगे रहना, हरी भजन सें लगे रहना॥टेक॥
साहेब का घर दूर है रे, जैसी लगी खजूर।
चढ़े ते चाखे प्रेम रस पड़े तो चकनाचूर॥
क्या बकतर का पहरना रे क्या ढालों की ओट।
सूरे पूरे का पारखा रे लड़े धणी सें जोर॥
काह कटारी वड़ी रे, गुरु गोविंद तलवार।
धनुष्य[1] रूपी भाला बाँध के कबू ना लागे हार॥
हाड़ चाम की देह बनी रे, नव नाड़ी दश कोर।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर लगी मर्म की चोट॥२०८॥

राग कल्याण

मेरो मन हरि लीनो राजा रणछोड़,
राजा रणछोड़, प्यारा रँगीला रणछोड़।
केशव, माधव, श्रीपुरुषोतम, कुबेर, कल्याण की जोड़॥
शंख चक्र गदा पद्म बिराजे, मुख मुरली घनघोर।
मोर मुगट शिर छत्र बिराजे, कुंडल की छबि ओर॥
आसपास रत्नाकर सागर, गोमतीजी करे कलोल।
धजा पताका बहुत्याँ फरके, झालर करत झकझोल॥
सब भकतन के भाग्यहि प्रकटे, नाम धर्यो रणछोड़।
जे कोऊ तेरो नाम सुणावे, पावे युगल किशोर॥
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर, कर गहो नंदकिशोर॥२०९॥

---

१. यहाँ अन्य शब्द होना चाहिए।

राग झिंझोटी—प्रभात

अब तो मेरे राम नाम, दूसरा न कोई।
माता छोड़ी, पिता छोड़े, छोड़े सगा भाई,
साधु संग बैठ बैठ लोक लाज खोई॥
संत देख दौड़ आई, जगत देख रोई,
प्रेम आँसु डार डार अमरबेल बोई॥
मारग में तारण मिले, संत राम दोई,
संत सदा शीश रखूँ, राम हृदय होई॥
अंत में से तंत काढ़्यो, पीछे रही सोई,
राणे भेल्या बिष का प्याला, पीवत मस्त होई।
अब तो बात फैल गई, जाणे सब कोई,
दासि 'मीराँ' लाल गिरिधर होनी हो सो होई॥२१०॥

भजन भरोसे अविनाशी, मैं तो भजन भरोसे अविनाशी।
जप तप तीर्थ कछुए ना जाणूँ करत मैं उदासी रे।
मंत्र ने जंत्र कछुए ना जाणूँ, वेद पढ़्यो न गई काशी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल की हुँ दासी॥२११॥

राग प्रभात

मुज अबला ने मोटी मीरांत बाई[1] शामलो घरेणुं मारे साँचु रे।
वाली घडावुँ विट्ठल वर केरी, हार हरिनो म्हारे हइये रे।
चित्तमाला चतुरभुज चूडलो, शीद सोनी घेर जइये रे।
झाँझरिया जगजीवन केराँ, कृष्णजी कल्ला ने काँबी[2] रे।
बिछुवा घुँघरा राम नरायणना, अणवर अंतरजामी रे।
पेटी घडावुँ पुरुषोत्तम केरो, त्रिकम नामनुँ ताळुँ रे।
कुँची करावुँ करुणानँद केरी, तेमाँ घरेणुँ मारुँ घालुँ रे।
सासर वासो सजिने बैठी, हे नथी काँई काँचू रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, हरिनूँ चरणे जाँचूँ रे॥२१२॥

जग में जीवणा थोड़ा, राम कुण कइ रे जंजार।
मात पिता तो जन्म दियो है, करम दियो करतार।
कइ रे खाइयो, कइ रे खरचियो, कइ रे कियो उपकार।

---

१. पाठा०—नीरांत थई। २. पाठा०—काँठी।

दिया लिया तेरे संग चलेगा, और नहीं तेरी लार[1]।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, भज उतरो भवपार ॥३१३॥

स्वामी सब संसार के (हो), साँचे श्री भगवान।
स्थावर, जंगम, पावक, पाणी, धरती बीच समान।
सब में महिमा तेरी देखी, कुदरत के कुरबान।
सुदामा के दारिद खोए, बारे की पहिचान।
दो मुट्ठी तंदुल की चावी, दीन्हों द्रव्य महान।
भारत में अर्जुन के आगे, आप भये रथवान।
उनने अपने कुल को देख्यो, छुट गयो तीर कमान।
ना कोई मारे, ना कोई मरता, तेरो यह अज्ञान।
चेतन जीव तो अजर अमर है, यह गीता को ज्ञान।
मेरे पर प्रभु किरपा कीज्यो, बाँदी अपनी जान।
'मीराँ' गिरिधर सरण तिहारी, लगै चरण में ध्यान[2] ॥३१४॥

भजन विना जीवड़ा दुःखी, मन तूँ राम भजन करी ले।
जीव तुँ जायगो जरूर मन तुँ राम भजन करी ले।
लखरे चोर्यासी फेरा फिरेगो, जीव जन्मी जन्मी मरे।
मात पिता तेरा दास ने वंधु वाल्हे, कारज कछु ना सरे।
हस्ती ने घोड़ा माछ खजाना, धन भंडार भर्यो घर में।
बाई 'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, अरे मेरो चित्त भजन में धरे।३१५

कछु लेना न देना मगन रहना।
नाँय किसी की कानाँ सुनणाँ, नाँय किसी कूँ अपनो कहना।
गहरी नदिया नाव पुरानी, खेवटिये सूँ मिलता रहना।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, साँवरा के चरणाँ चित्त देना ॥३१६॥

सुण लीजे विनती मोरी, मैं सरण गही प्रभु तोरी।
तुम तो पतित अनेक उधारे, भवसागर ते तारे।
मैं सब को तो नाम न जानों, कोई कोई भक्त बखानों।
अम्बरीष सुदामा नामा, पहुँचाये निज धामा।
ध्रुव जो पाँच बरस को बालक दरस दिये घनस्यामा।
धना भक्त का खेत जमाया, कबिरा का बैल चराया।

---

१. पाठ०—तार।
२. पाठ०—मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर चरणकँवल में ध्यान।

सेवरी के जूठे फल खाया, काज किये मन भाया।
सदना औ सेना नाई को, तुम लीन्हो अपनाई।
कर्मा की खिचड़ी तुम खाई, गनिका पार लगाई।
'मीराँ' प्रभु तुम्हरे रँगराती जानत सब दुनियाई ॥२१७॥

भज केशव गोविन्द गोपाला, हरि हरि राधेश्याम पहिरे वनमाला।
मथुरा में हरि जन्म लियो है, गोकुल झूलैं नन्दलाला।
गोपी के कन्हैया बलभद्र जी के भैया, भक्त वछल प्रभु प्रतिपाला।
पूतना कों जननी गति दीन्ही, अधम उधारन नँदलाला।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल वैजंती माला।
यमुना के तीरे तीरे धेनु चरावें, मुरली बजावें नँदलाला।
वृन्दावन हरि रास रच्यो है 'मीराँ' की करो प्रतिपाला ॥२१८॥

राग सोरठ तिताला

मोरे प्यारे गिरिवरधारी जी, दासी क्यों विसार डारी।
द्रोपदी की लाज राखी, सब दुख सों निवारी।
प्रहलाद पैज पारी, नृसिंह देह धारी।
भीलनी के जूठे वेर खाए कछु जात न विचारी।
कुबजा सों नेह लायो औ गौतम की नारि तारी।
प्यासी फिरौं दरस विन तलफों मोहे काहे विसारी।
'मीराँ' को दरसन दीजे गिरिधर अपनी ओर निहारी ॥२१९॥

नागर नंदा रे मुगट पर वारी जाउँ, नागर नंदा।
वनस्पति में तुलसी वड़ी हैं, नदियन में वड़ी गंगा।
सब देवन में शिवजी वड़े हैं, तारन में वड़ा चंदा।
सब भक्तन में भरथरी वड़े हैं, शरण राखो गोविंदा।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण-कमल चित फंदा ॥२२०॥

नागर नंदा रे बालमुकुंदा, छोड़ी द्यो ने जगना धंधा रे,
मारी नजरे रहेजो रे नागर नंदा।
काम ने काज मने काँई नथ सूझे,
भूलि गई छूँ मारा घर धंधा रे।
आडु अवलु में तो काँई नव जोयुँ,
जोया जोया छे पुनम केरा चंदा रे।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर,
लागी छे मोहनी मने फंदा रे ॥२२१॥

राग केदारो

एक दिन मोरली वजाई, कनैया एक दिन मोरली वजाई।
मोरलीना नादे मेरो मन हरि लीनो, ओगकी सुरता उठाई।
गौओ तो खब घास ना खावे ० ० ० ।
शर्वरी तो वलो स्तंभ भई छे, चंद्र गयो छुपाई रे।
मेघ घटा घट थई रही छे, वादरी कारी नँ वाही रे।
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल चित धाई रे ॥३२२॥

तेरो कान्ह कालो माई मेरी राधे गोरी, हो माई तेरो कान्ह० ।
ऐसी राधे रूप वनी, कंचन सी देह ठानी,
ऐसो कारो कान्ह पर कोटी राधे वारी हो।
गोकुल उजार कीनी, मथुरा वसाय लीनी,
कुवजा कूँ राज दीनो, राधे को विसारी हो।
विनती सुनो व्रजराय, लागूँगी तुम्हारे पाय,
'मीराँ' प्रभु से कहीयो जाय, सेवक तुम्हारी हो ॥३२३॥

राधा प्यारी दे डारो जु वंसी हमारी, राधा० ।
ये वंसी में मेरा प्रान वसत है, वो वंसी लेई गई चोरी।
ना सोने की वंसी ना रूपे की, हरे हरे वाँस की पोरी।
घड़ी एक मुख में, घड़ी एक कर में, घड़ी एक अधर धरी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरण कमल पर वरी ॥३२४॥

राग वसंत

चलो व्रज की नारी, सखी नंद-पौरि ठाढ़े मुरारी।
राधा, चन्द्रभागा, चंद्रावलि, भामा, ललिता, सुशीले।
संख्यावली कनक घट शिर धरि, आँव मौर जव लीन्हे।
नये नये चीर कुसुंभी सारी, वसंत अभरन साजिय हो।
नये नये केली कर मोहन सँग, नवललाल पिया भजिये हो।
चोवा चंदन वूका वंदन, उड़त गुलाल अबीरे।
खेलैं फाग भाग वड़ गोपी, छिरकत श्याम शरीरे।
ताल मृदंग ढोल डफ महुवर, वीना जंत्र रसाला।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, हँसी कराय गोपाला ॥३२५॥

कनैया वल जाऊँ, अब नहिं वसूँ रे गोकुल में।
काली छोडे कामली रे, काली हेरे कहात,
वृंदावन की कुंज गलिन में, खेलत गोपी तज मान रे।

घेर आई गोवालन घेर आये गोवाल,
हरिहजु नहिं आये रे मेरे मदन गोपाल।
सोने की बँसरियाँ रूपे की जंजीर,
गावे ने बजावे कानजी श्रट जमना के तीर।
जमना के नीरे तीरे बगला बनावुँ,
बँगला के भीते भीते वेर वेर प्रेम चणाउँ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर प्यारे लाल,
अब कोई मत पड़ो रे, मेरे ख्याल ॥३२६॥

गुजराती भाषा के पद

कृष्ण-लीला-संबंधी पद—

राग खम्माच ख्याल (तिताला)

नंदजी रे आजि वधावनो छै।
गहमह हुई रंग रावल में निरखि नैना सुख पावनो छै॥
भाभीजी म्हे थासूँ पूछाँ आजिरो घोस सुहावनो छै।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर जनमिया हुवो मनोरथ भावनो छै॥३२७॥

राग गुर्जर

लेने तुरी लकड़ी रे, लेने तुरी कामली,
गायो तो चरावबा नहिं जाऊँ मावड़ली।
माखण तो बलभद्र ने खायो, हमने पायो खाटी छोरे छाशलडी।
वृन्दावन ने मारग जाताँ पाउँ से खुँचे भीणी काँकलड़ी॥
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर, नागर चरण कमल चित राखलडी रे।३२८

एरे मोरलो वृंदावन वागी, वागीछे जमना ने तीरे रे।
मोरली ने नादे घेलाँ कीधाँ, मने काँई काँई कामण कीधाँ रे॥
जमना ने नीर तीर धेन चरावे, काँधे काली काँवली रे।
मोर मुकुट पीतांबर शोभे, मधुरी सी मोरली वजावे रे॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरण कमल बलिहारी रे॥३२९॥

बागे छेरे वागे छे, वृंदावन मोरली बागे छे,
तेनो शब्द गगनमाँ गाजे छे।
वृंदा ते वनने मारग जाताँ, वालो दाण दहीनाँ माँगे छे॥

वृंदा ते वनमाँ रास रच्यो छे, वालो रासमंडल माँ विराजे छे।
पीला पीतांबर जरकसी जामा, वाला ने पीलो ते पटको विराजे छे॥
काने ते कुंडल मस्तके मुगट हाँ रे वाला, मुखपर मोरली विराजे छे।
वृंदा ते वननी कुंजगलिनमाँ, वालो थनक थे थे नाचे छे॥
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर वाला दर्शन थी
दुःखड़ाँ भाँजे छे ॥३३०॥

चालोनी जोवा जइये रे, मा मोरली वागी।
भर निद्रा माँ हुँ रे सुतीती, झबकीने जोवा जागी॥
वृंदावन ने मारग जाताँ, सामो मल्यो सुहागी।
'मीराँ'के प्रभु गिरिधर नागर चरण कमल लेहे लागी ॥३३१॥

राग कल्याण

गावे राग कल्याण, मोहन गावे राग कल्याण।
आप गावे ने आप बजावे, मोरली थुं मिलावे तान।
मोर पींछ शिर मुगट विराजे, कुंडल झलके कान।
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर गोपी तजिया ध्यान ॥३३२॥

थनक थनक ताथइ रे, नाचे नाचे नंदनो नानड़ीयो।
तालबंध ताळी वागे घुंघरु घमके,
हाँ रे लाल मोरली वजावे लई रे।
नारद नृत्य करतारे आगे हाँ रे,
वली साथ राधा ने लई लइ रे।
ब्रह्मा वेद भणंतारे आगे हाँ रे,
त्याँ तो सूरज रह्यो मोही मोही रे।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर,
हाँ रे त्याँतो कृष्णजीए मोरली वजाई रे ॥३३३॥

राग गरबी

कहाँ गयो रे पेलो मोरली वालो, अमने रास रमाडी रे।
रास रमाड्वाने वनमाँ तेड्याँ, मोहनी मोरली सुणावी रे।
माता जसोदा शाख पुरावे, केशर छाँट्या घोली रे।
इवणाँ वेण समारी सुती, पहेरी कसुंबल चोली रे।
'मीराँ' कहे प्रभ गिरिधर नागर चरण कमल चितचोरी रे ॥३३४॥

चालने सखी मही वेचवा जैये, ज्याँ सुंदर वर रमतो रे।
प्रेमतणाँ पकवान लइ साथे, जोइये रसिकवर जीमतो रे॥
मोहन जी तो हवे मोघो थयो छे, गोपीने नथी दमतो रे।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर रणछोड़ कुबजा ने गमतो रे॥२३५॥

राग गोड़ी

ओ आवे हरि हँसता, सजनी, ओ आवे हरि हँसता।
मुज अबला एकलड़ी जाणी, पितांबर केड़े कसता॥
पचरंगी पाघ केसरियारे वाघा, फूलडाँ मेहेले तोरा।
मारे आँगणीए द्राख बीजोराँ, मेवले भरावुँ तारा खोला॥
प्रीत करे तेनी पुठ न मेले, पासेथी से नथी खसता।
'मीराँ बाई' के प्रभु गिरिधर नागर, हाँ रे वालो हृदय
कमलमाँ वसता॥२३६॥

चाल सखी वृंदावन जइये, जीवण जोवाने,
महीनी मटुकीओ माथे लई।
श्यामसुंदर ने भावे भेटजो, तेणे दुःखडाँ सहु शमावशे रे॥
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर मावजी मारगमाँ आवशे रे।२३७

वहीयाँ जो ग्रही रे, मेरी सुद्ध न रही रे,
काहना वहीयाँ जो ग्रही रे।
झगमग ज्योत जडाव को गेनो,
गज मोतियन की सर लटकी रही रे।
मैं दधि वेंचन जाती गोकुल में रे,
पकड़ी री पालव मेरो जल को मही रे।
जाई पोकारूँ कंस के आगे रे,
तेरो नगरी में मेरो वसवो नहीं रे॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर,
झगड़त झगड़त सारी रैन बीत गई रे॥२३८॥

लेशे रे महीडाँ केराँ दाण, आ तो मोहुँ,
लेशे ते महीडाँ केराँ दाण॥ टेक॥
अमो अबला कँई सबल सुँवालाँ वाला, आवडी शी खेंचाताण॥
नंदना घरनो गोवालियो रे, ओलख्या विना रे अखुभाण।
मधराते मथुरा थी रे नाठो, ते तो अमने नथी रे अजाण॥

वृंदावन ने मारगे जातां, तू तो शेनुं मागे छे रे दाण।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल नुँ चित्तडा में ध्यान।३३९।

नंदलाल नहिं रे आवुँ मज घेर काम छे,
तुलसीनी माला माँ श्याम छे, वाला।
वृंदा ते वन ने मारग जातां,
राधा गोरी ने कान श्याम छे, वाला॥
वृंदा ते वन माँ रास रच्यो छे,
सहस्र गोपी ने एक कहान छे, वाळा।
वृंदा ते वन ने मारग जातां,
दाण आप्यानी घणी हाम छे, वाला।
वृंदा ते वन नी कुंजगली माँ,
घेर घेर गोपीओनाँ ठाम छे, वाला।
आणी तेरे गंगा वाला, पेली तेरे जूमनाँ,
बच माँ गोकुलीयुँ गाम छे, वाला॥
गामनाँ वलोणाँ मारे महीनाँ वलोणाँ,
महीडाँ घुम्यानी घणी हाम छे, वाला।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर,
चरणन में सुख श्याम छे, वाला॥३४०॥

गागरियाँ बेड़ाँ ढलशे ऊढाणी मारी आपो,
गागरियाँ बेडाँ ढलशे॥ टेक॥
साव सोनानी मारी जडित्र चढाणी वाला,
सोनेरी तार मारो खरशे।
कंस ते रायनुं कूडुं छे राज वाला,
कंस ने केहवुं ज पडशे॥
जल रे जुमनानो वाला मोटो छे आरो रे,
नित्य उठी नावा जावुँ पडशे।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर वाला,
गोपीनो स्वामी मुजने मळशे॥३४१॥

चढाणी मोरी आलो रे, गागरियाँ बेढाँ ढरशे।
जल जमना जल भरवा गयाताँ, चीर खस्यो ने बेढुँ पडशे॥
सासु हठीली मारी नणदी धूतारी, नाँघडो दीयरीओ मूजने चढशे।
'मीराँ' गावे प्रभु गिरिधरना गुण चरण कमळ चित हरशे॥३४२॥

नहि जाउँ रे जमुनाँ पाणीडाँ मारगमाँ नंदलाल मळे ।
नंदजीनो रे वालो आण न माने, कामणगोरा जोई चितडुँ चळे ॥
अमे आहिरडाँ सघलाँ सुवालाँ, कठण कठण कानुडो मल्यो ।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर गोपीने कानुडो लाग्यो गल्यो ॥३४३॥

काँकरी मारे धूतारो कान, पाणीलाँ केम करी जइये ॥ काँकरी० ॥
आकाँठे गंगा वहाला, पेली काँठे जमनाजी, वचमाँ गोकुलीउँ गाम ॥
सोना उढाणी मारुँ रूपानुं वेडुं वाला, हलवे चढावत कानो करे काम ॥
मारे मंदिरीए मारी सासु रहे छे वाला, सामा मंदिरीए मारो श्याम ॥
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधरनागर भावे भेटो भगवान ॥३४४॥

हुँ जाऊँ रे जमनाँ पाणीडाँ, एक पंथ दो काज सरे ।
जल भरवुँ बीजुँ हरिने मलवुँ, दुनिया भोळी दामे मरे ॥
अजाण पणामाँ काँइरे नव सूझ्युँ, जसोदाजी आगळ राड करे ।
मोरली वजाडी वालो मोह उपजावे, तलवल मोरो जीव फरफडे ॥
वृंदावन ने मारग जाताँ, जनम जनमनी प्रीत मळे ।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर भवसागर नो फेरो टळे ॥३४५॥

हाँरे मारा श्याम काले मलजो, पेलाँ कह्याँ वचन ते पाळजो रे ।
जल जमनाँ जल पाणी जाताँ, मारग वच्चे वेहेला मलजो रे ॥
बालपणानी वहाळी दासी, प्रीत करी पर वरजो रे ।
वाटे आळ न करिये वहाला, वचन कहुँ ते शुणजो रे ॥
घणोज स्नेह थयाथी गिरिधर, लोक लज्जाथी वलजो रे ।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर प्रीत करी ते पालजो रे ॥३४६॥

राग मारू

कोण भरे रे पाणी कोण भरे, जमनानाँ पाणी कोण भरे ।
घर म्हारुँ दूर गागर शिर भारी, अरे खोटी थाऊँ तो घेर नणदी वढे ॥
शिर पर कलश कलश पर झारे, झारी पे बेठी झारी मोज करे ।
आणी तीरे गंगा पेली तीरे जमुना, वचमां कानुडो रंग रास रमे ॥
साव सोनानो मारो घाट घडुलो, उढणीए तो रत्न कनक जडे ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरण कमल चित्त ध्यान ठरे ॥३४७॥

मने सेली ना जाशो मावा रे, आ व्रज माँ केम वसीए वाला रे ।
जे जोइए ते तमने आणी आपुँ वाला, मिठाई मेवा खावा रे ॥

आ मीजाँ घणाँ घणाँ तमने वाना रे करती,
नहिं देउँ तमने जावा रे।
कबकी ठारी अरज करूँ छुँ, एटळी अरज,
मोरी मानो ब्रज वाला रे॥
जल जमना रे जल भरघा गयाँताँ वहाला,
सुंदर गयाँता न्हावा रे।
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर वहाला,
शामलीयो चित्तथे मनावा रे॥३४८॥

शाने रोकोछो वाटमाँ, जवादो मने शाने रोकोछो वाटमाँ।
जल भरघा जमनाजीना घाटमाँ,
जवादो मने शाने रोकोछो वाटमाँ॥ टेक॥
आज अमारे प्रभु कामनो दिन छे,
हरि मारे जावुँ सहीयरो ना साथमाँ।
मारा सम मारी गागर नहानी,
हाँ रे एणे वचन आप्युंतुं मारा हाथ माँ॥
वृंदावन नी कुंज गलिन माँ,
हाँ रे भलो तपास्यो आ लागमां।
ते माटे कान काळा शुं थावछो,
हाँरे सौ पेर सहीयरो ना साथ माँ॥
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर,
हाँरे प्रभु आव्याछो मारा हाथ माँ॥३४६॥

राग सोरठ तिताला

जावा दे गुमानी कृष्ण म्हाँ रे घर काम छे।
थें हो लँगर नंद महर के, ब्रज बरसाने म्हाँरो गाम छे॥
जानो नहीं तो पूँछ लीजो, श्रीराधा म्हाँरो नाम छे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर नाम थाँको बदनाम छे॥३५०॥

राग काफी

जल भरवा केम जाऊँ, कानो मारी केडे पड्यो रे।
साव सोनानो मारो घाट घडूळो वाला, उँढणीए रतन जडावुँ॥
मारगमाँ वालो पाणीलाँ माँगे, सहीयर देखताँ केम पाऊँ॥
नाथजी हमारा निर्लज थई बेठा वाळा, हुँ निर्लज केम थाऊँ॥
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर वाला, हरिचरणे ध्यान धराऊँ ३५१

राग काफी

भूली मोतिन को हार, सखी तट जमना किनारे।
एक एक मोती मारूँ लाख टकानुं वाला, परोव्युं सुवर्ण केरे तार॥
सासु हमारी अति वढ़कारी वाला, नणदल विखडाँनुं भार॥
परण्यो हमारो परम सोहागी, मार्या छे मोहनाँ पाण॥
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल चित ध्यान॥३५२॥

प्रेम नी प्रेम नी प्रेम नी रे, मने लागी कटारी प्रेम नी रे।
जल जमुना माँ भरवा गया ताँ, हती गागर माथे हमनी रे।
काँचे ते ताँत तो हरि जी ये बाँधी, जेम खेंचे तेम तेमनी रे।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर शामली सुरत शुभ एमनी रे॥३५३॥

झगड़ा लाग्यो श्रीजमुनाजी आरे, अल्या तारे ने मारे शुं छे।
वृंदावन ना मारग जाताँ, हाँ रे आगल आवी काँ घेरे।
वृंदावन नी कुंज गलीमाँ, पालव आवी काँ झेरे।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर गोपीओने छाव छड़ावे रे॥३५४॥

राग मारू

मेलोने मावा, मारगड़ो मेलोनी मावा।
वाटे ने घाटे रोको शामलीया, हाँ रे मारा पालवडा शावा।
रसियाजी शूँ रहोर करो छो, जीवण दो जावा।
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर गुण तो गोविंद ना गावा॥३५५॥

राग मारू

लालने लोचनीए दिल लीधाँ रे,
माडी माराँ लालने लोचनीए दिल लीधाँ रे।
जंत्र भणी वहालो मुज पर डारे वहालो,
वेला फवेलानाँ कामण मने कीधाँ रे।
जल जमनानाँ जलभरवा गयाँ ताँ वहाला,
घुंघटड़ामाँ घेरी लीधाँ रे।
चुन चुन कलीयाँ वाली सेज वनावुं वहाला,
भ्रमर पलंग सुख लीधाँ रे।
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर,
चरण कमल में चित्त चोरी लीधाँ रे॥३५६॥

नाखेल प्रेमनी दोरी, गळामाँ अमने नाखेल प्रेमनी दोरी॥टेक॥
आणी कोरे गंगा वाला, पेली कोरे जमनाँ,
वचमाँ कानुडो नाखे फेर फेरी।

वृंदा रे वनमाँ वहाले धेन चरावी,
वाँसळी वगाडे घेरी घेरी।
जळ रे जमना ना अमे पाणीडाँ गयाँ ताँ,
भरी गागर नाँखी ढेरी।
वृंदा रे वनमाँ वाहले रास रच्यो रे,
कानड काला ने राधा गोरी।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर,
वाहला चरणाँ नी दासी पीयारी तेरी ॥२५७॥

राग काफी

वारो जशोदा तारा दाणी ने, आलीगारो आल करे छे ॥टेक॥
लाडकवायो बाई लाभ ज तमने, तेथी घणो राधा राणी ने।
जल जमना जातां मार्ग, पालव झह्यो मारो ताणी ने।
एक वार सांख्युं बीजी वार सांख्युं, शरम तमारी घणी आणी ने।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर,
चरण कमल चित्त मानी ने ॥२५८॥

हाँ रे कोई माधव ल्यो माधव ल्यो, वेचंती व्रजनारी रे।
माधवने मटुकीमाँ घाली, गोपी लटके लटके चाली रे।
हाँ रे गोपी घेलुं शुं बोलती जाय, मुटकी माँ न समाय रे।
नव मानो तो जूवो उतारी माँही जूवे तो कुंज बिहारी रे।
वृंदावनमाँ जाता दहाडी वालो, गौ चारे छे गिरिधारी रे।
गोपी चाली वृंदावन वाटे, सौ व्रजनी गोपीओ साथे रे।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर,
जेनाँ चरण कमल सुख सागर रे ॥२५९॥

नंद कुँवर तारुँ नाम साँभली, सास थयाँ अमे आव्याँ।
व्याकुल थइने वनमाँ आव्याँ, बालक विण घबराव्याँ।
प्रेमे पय पाणीमाँ भेली, साकर सरसाँ घी ताव्याँ।
अवलाँ तो आभूषण पहेर्यां, नयने सिंदूर सार्यां।
गौ दोहताँ दोणी भूली, वाछइने घबराव्याँ।
दासि 'मीराँ' ने लाल गिरिधर चरण-कमल चित लाव्याँ ॥२६०॥

चढीने कदंब पर बेठो रे, वालो मारो चीर तो हरी ने।
माता जसोदा नो कुँवर कनैयो, नागर नंदाजी नो बेटो रे।
मोर मुगट सिर छत्र विराजे, पहेर्यो छे पीलो लपेटो रे।

नहायाँ धोयाँ अमे केम करी आवीए, नाखोने नवरंग रेंटो रे।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, को उतारो ने एने हेठो रे ॥३६१॥

राग होरी

झट द्यो मेरो चीर, मोरारी मोरारी रे, झट द्यो मेरो चीर।
ले मेरो चीर कदम चढ़ बेठो, में जल बीच उघाड़ी,
हाँ रे लाला, मैं जल बीच उघाड़ी।
ऊभी राधा अरज करत हे, हो चीर दियो गिरिधारी,
प्रभु तोरे पाय पहूँगी।
जो राधा तेरो चीर चहावत हो, जल से हो जा न्यारी,
हाँ रे लाला, जल से०।
जल से न्यारी काना कबुओ ना होवूँगी, तुम हो पुरुष
हम नारी, लाज मोकुँ आवत भारी।
तुम तो कुँवर नँदलाल कहावो, में भ्रखुभान-दुलारी,
हाँ रे लाला, मैं भ्रखुभान-दुलारी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर तुम जीते हम हारी,
चरन पर जाउँ बलिहारी ॥३६२॥

पुनम केरो पूर्ण चंद्र छे रास रमे नंदलालो रे।
नटवर वेश धर्यो नंदलाले, सो जोवाने चालो रे।
गान तान वांजीतर वाजे, नाचे जसोदानो कालो रे।
सोल सहस्र माँ अष्ट पट्टराणी, वचे रह्यो मारो व्हालो रे।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर रणछोड़ दीसे छोगालो रे ॥३६३॥

कठण थयारे माधव मथुराँ जई, कागल न लख्यो कटको रे।
अहियाँ थकी हरि हवडां पधार्या, उद्धव साथे अटक्यो रे।
अंगे सोवराणीया वाघा पहेर्या, शिर पीतांबर पटको रे।
गोकुळ माँ एक रास रच्यो छे, कहान कुबजा संग अटक्यो रे।
कालीशी कुबजा ने अंगे छे कुबड़ी, ए शुँ करी जाणे लटको रे।
ए छे कालो ने तेछे काली, रंगे रंग मल्यो चटको रे।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर खोलामाँथी घुंघट खटको रे ॥३६४॥

राग मारू

हाँरे माया शीदने लगाड़ी, धूतारे वाले माया शीद लगाड़ी।
माया लगाड़ी वाला मेली ना जाशो, एवा न थाओ नाथ अनाड़ी।
वृंदा ते बनमाँ गौधन चारताँ, हाँ रे मधुर सी मोरली वगाड़ी।

वृंदावन ने मारग जाताँ वाला, फूलनी ते वाड़ीओ भेलाड़ी।
हाथ माँ दीवड़ो मे वाल कुँवारी वाला, हाँ रे देवल पूजवाने चाली।
'वाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल बलिहारी ॥३६५॥

राग काफी

गोरस लीजे नँदलाल, रस माँ गोरस लीजे।
मैं हुँ भ्रखुभाण-नंदनी, तुम हो नंदाजी के लाल।
मोर मुगट मुक्ताफल कुंडल, उर वैजंती माल।
मैं दधि बेंचन जात व्रन्दावन, रोकत हे विन काज।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर बाँह गहे की लाज ॥३६६॥

अजब सलूणी प्यारी मृग्यानेणी, तें मोहन वश कीधो रे।
गोकुल माँ सौ वात करे रे व्हाला, कान कुवजे वश लीधो रे।
मकनो सो करीने लाल अँवाड़ो, अंकुशे वश कीधो रे।
लविंग सोपारी ने पाननाँ वीड़लाँ, राधा सुँ राख्यो कीनो रे।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल चित दीनो रे ॥३६७॥

राम मलार

बोले भीणा मोर, राधे तारा डुंगरीया पर बोले भीणा मोर।
ए मोरही बोले पपैया ही बोले, कोयल करे घनशोर।
❀ ❀ भली बीजली चमके, बादल हुवा घनघोर।
भरभर भरभर मेहुलो बरसे भींजे, मारा सालुडानी कोर।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, प्रभुजी म्हारा चितड़ानो चोर ॥३६८

काले परणावशुँ गोपी कुँवर ने, काले परणावशुँ गोपी।
लाज मरजाद सर्व लोपी कुँवर ने, काले परणावशुँ गोपी।
कानवर मारो घोड़े चड़शे, माथे मुगट आरोपी।
राधिका ज्यां मंदिर पधारशे, मंदिर रहेशे ओपी।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर, लीला वाघा ने पीली टोपी ॥३६९॥

काँनी मखे देखन जाऊँ, श्यामलो वैरागी थयो रे।
कोरी मटुकी माँ मही जमावुँ, गुवालेन होकर जाऊँ रे।
कोरी छाबड़ीया माँ फूल भरावुँ, मालण होकर जाऊँ रे।
गोरे गोरे अंग पर विभूत लगावुँ, जोगण होकर जाऊँ रे।
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर, श्यामसुंदर पार पावूँ रे ॥३७०॥

व्रज माँ नाव्या फरीने, गोपी नो वालो व्रज माँ नाव्या फरीने।
गामरे गोकुळीयुँ मेळी मथुराँ पधार्या वालो,
जई वर्या कुब्जा कारीने।
सातरे दिवसनो हरि वायदो करीने गयो छे,
खट मास थया छे हरि ने।
सोळसे गोपीनी साथे रास रच्यो छे वाळा,
ऊभा मुख मोरलो धरीने।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर वाला,
चरण कमळ चित हरी ने ॥३७१॥

बलिहारी रसिया गिरधारी, सुंदर श्याम हो,
तजि अमने मथुरानाँ वासी, आवा न बनीए जी।
बाँसलडी वागे एमां भणकारा वागे जी,
व्रज वाट लागे अमने खारी रे॥
जमना नो काँठो व्हाला खावाने दोड़े जी,
अकळावी दे छे अमने भारी रे।
वृंदावन केरी शोभा, तम विना अमने जी,
आँखे दीठी नव लागे सारी रे॥
गोबर्धन तोल्यो व्हाले, टचली आँगलीये जी,
अम पर ढोल्यो गिरिधारी रे।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर व्हाला,
चरण-कमल-दासी तारी बलिहारी रे ॥३७२॥

कागद कोण लई जाय र, मथुरा माँ लखीए,
प्रीत थोड़ी थोड़ी थाय रे ॥ मथुरा० ॥
प्रीत तमोने मलवाने तलखे, ने जशोमती अन्न न खाय रे॥
वृंदाबनती कुंजगलिन में, रोताँ रजनी जाय रे।
मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण-कमल चित्त चाहे रे ॥३७३॥

कागद कोण लइ जाय रे, मथुरा माँ वसे मेवासी,
मोरा प्राण पियाजी० ॥ टेक ॥
एरे कागद माँ भाकुँ शुँ लखीए, थोड़े थोड़े हेत जणाय रे॥
मित्र तमारा मळवाने इच्छे, जसोमती अन्न न खाय रे॥
सेजलडी तो मुने सूनी रे लागे, रडताँ तो रजनी न जाय रे॥
'मीराँबाई' कहे प्रभु गिरिधरनागुण, चरण कमल माहूँ त्याँ जाय रे ३७४

राग सारंग

कामछे, कामछे, कामछे ओधा, नहिं रे आवुँ मारे काम छे,
शामलीश्रो भीने वान छेरे ॥ ओधा० ॥
आणी तीरे गंगा ने पेली तीरे जमनाँ,
वचमे गोकुलीउँ गाम छे र ॥
सोनुं रुपुं मारे काम न आवे,
तुलसी तिलक पर ध्यान छे रे ॥
आगळी परसाळे मारो ससरो जो पोढ़े,
पाछली परसाळे सुंदर श्याम छे रे ।
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर,
चरण-कमल माँ मोरो बिश्राम छे रे ॥३७५॥

कानुडे कामण कीधाँ, ओधवने वाले कानुडे कामण कीधाँ ॥टेक॥
वृंदावन मां धेन चरावे वाळो, मोरलीए मनडाँ गोपी विंधां ॥
जल जमना भरवाने गयाँ ताँ, पालव पकड़ी मन लीधाँ ॥
* * * राधा तो कंथ कामणगारो ॥
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर वाळा,
भवसागर थी हमने तारो ॥३७६॥

आवजो म्हारे नेड़े, ओधवना वाला, आवजो म्हारे नेड़े ॥टेक॥
मारे आँगणीए आँबो मोर्यो वाला, कानुडो आवीने सार्यो वेडे ॥
अमो जल जमना भरवा गयाँ ताँ वाला, कानुडो पड़्योछे म्हारी केड़े ॥
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर वाला, हरिमलवा मन हेरे ।३७७।

राग झालेरो

व्रजमाँ क्येम रेवाशे, ओधवना वाला, व्रजमाँ क्येम रेवाशे ॥टेक॥
आठ दहाड़ानी अवध करीने गयाछे वाला, षटमास थयाछे हरिने ॥
वृंदावननी कुंज गलीमाँ वाळा, बेठा छे मुख मोरळी धरीने ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर वाला,
अमो रह्याँछे आँसुडाँ भरीने ॥३७८॥

व्रजमाँ केम रेवाशे, ओधवना वाला, व्रजमाँ केम रेवाशे ॥टेक॥
जे रे दाड़ाना जीवन गया छो वाला, दुखडाँ कोने कहेवाशे ॥
बळवंत थइने वाही शुँ मूको वाला, बरद तमारुँ जाशे ।
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर वाला, गोपिका अरज कराँशे ।३७९।

शामले मेल्याँ ते विसारी, ओधव ने वाले
शामले ते मेल्याँ विसारी ॥ टेक ॥
प्रीत करीने पालव पकड़ो वाळा, प्रेमनी कटारी मुने मारी ॥
गोकुळ थी मथुरा माँ गया छो वाला, कुब्जा सें लागी छे ताळी ।
'मीराबाँई' के प्रभु गिरिधर नागर वाळा, चरण कमल बलिहारी ।३८०।

राग मलार

गोविंदा ने देश, ओधा मुने लेई जाजो रे, गोविंदा ने देश ॥टेक॥
मने रे मोहनजी मेली रे विसारी, करहुँ मोरा करम की रेख ।
हार तजूँगी, शणगार तजूँगी, तजूँगी काजल की रेख ।
चीर ने फाड़ी वाळा कफनी पेरूँगी, लेऊँगी जोगन को वेश ।
गोकुल तजूँगी में मथुरा तजूँगी, तजूँगी में व्रज केरो देश ।
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर,
चरण कमल चित्त संग रहेश ॥३८१॥

राग मारू

नारे आव्या व्रज माँ फरीने, ओधवजी वालो,
नारे आव्या व्रजमाँ फरीने ।
आठ दिवसनी अवध करीने, नारे जोयुँ व्रजमाँ फरीने ।
ओधव साथे संदेशो कहाव्यो, कागल ना लख्यो रे परीने ।
कुबजा रे साथे स्नेह करीने, वाळो रह्या त्याँरे ठरीने ।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चित्त माराँ लीधाँ हरी ने ॥३८२॥

काळानाँ कठण हैडाँ रे, ओधवजी, एवाँ कालानाँ कठण हैडाँ रे ॥
टीटुडीनाँ ईडाँ उगार्याँ, मंजारीनां राख्या छइयाँ रे ।
मेहथी गजराज उगार्यो, गोकुलमाँ चारी गइयाँ रे ।
गोकुल सघलुँ रेलतुँ राख्युँ गोवर्धन कर धरिया रे ।
'मीराँ' गावे गिरिधरना गुण, में तो तोरे लागूँ पैयाँ रे ॥३८३॥

दव तो लागेल डुंगर में, कहोने ओधाजी हवे केम करिए ।
केमते करीए, अमे केम करीए, दव तो लागेल डुंगर में ॥टेक॥
हालवा जईए तो व्हालो हाली न शकीए,
वेशी रहीए तो अमे बळी मरिए रे ।
आरे वरतिए नथी ठेकाणुँ रे व्हाला हेरी,
पर वरतीनी पाँखे अमे पूरिए रे ।

संसार सागर महाजल भरियो व्हाला हेरी,
वाँहेडी झालो नीकर बूड़ी मरिए रे।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर हेरी,
गुरुजी तारे तो अमे तरिए रे ॥२८४॥

सत्यभामा का रोष

जाण्युँ जाण्युँ हेत तमारुँ जादवारे लोल,
हेत ज होय तो हैडाँमाँ वरताय जो।
अमे तमारी आँखडिये अळ खामडाँ रे लोल,
वाळ होय तो नयणा माँ मळकाय जो।
पारिजात कनु फुलरे नारद लाविया रे लोल,
जै सोंप्युँ राणी रुक्मिणी ने दरबार जो।
एक पाँखडली मोरे मंदिर न मोकळी रे लोल,
कीधी मुजथीए अदेकरी नार जो।
अचरत पाम्यां ने आनंद उतर्यो रे लोल,
जाओ जाओ नहि बोलूँ सुन्दर श्याम जो।
रुक्मिणी ने मंदिर जैने रंगे रमोरे लोल,
हवे हमारं अमसाथे शुँ काम जो॥
अलगा रहो अलबेला मने अडशो नहीं रे लोल,
तम साथे नहिं बोलूँ नंदकुमार जो।
मोले तो पधारो मानीती तणेरे लोल,
आज पछी नव आवशो मारे द्वार जो।
नारदे कह्युँ सतभामा साँभलो रे लोल,
ए निर्लज ने नथी तमारुँ काम जो।
काला ने वाला करतो ते आवशेरे लोल,
मोटा कुळनी मूकशो मा तमे माम जो।
उतार्या आभ्रणरे सर्वे अंग थकीरे लोल,
लो शामलिया तमारो शणगार जो।
मारारे मैयरनी ओढूँ ओढणीरे लोल,
बीजूँ आपो मानीतीने दरबार जो।
चरणाँ चीर उतारी चोली चुँदडी रे लोल,
उरथकी उतार्यो नवसर हार जो।

काँबी ने कडलाँ रे ओटी दामणी रे लोल,
सर्व सँभाळी ले जो नंदकुमार जो।
आगळथी नव जाण्युँ में तो एवडुँ रे लोल,
घरथि न जाण्यो धुतारानो ढंग जो।
बालपणाँनी प्रीत अमारी पालटी रे लोल,
ए निर्लजने शानो दीजे रंग जो॥
वीरजनी वातो घरथी जाणी नहीं रे लोल,
प्रीत करीने परवश कीधा प्राण जो।
काळजडां कोरी ने भीतर भेदियाँ रे लोल,
मीटडलीमाँ मार्या मोहनाँ बाण जो॥
प्रीत करी पहरवुँ नोंतु पाधरुँ रे लोल,
थोडाँ दिवसमाँ शुँ दीधाँ मने सुख जो।
स्वप्नानाँ सुखडाँ रे स्वप्ने वही गयाँ रे लोल,
देहलडीमाँ प्रगट्याँ दारुण दुःख जो॥
पूरण पाप मल्याँ रे ए अवळा तणाँ रे लोल,
जेनो परण्यो पर घेर रमवा जाय जो।
अघोलडा लीधा रे वाले वेपथी रे लोल,
ते नारी नूँ जोबन झोलाँ खाय जो॥
पाणीडा पीने रे घर शुँ पूछिये रे लोल,
वेरी पिताए पूरण साध्याँ वेर जो।
छछेरी आपी रे एना हाथमाँ रे लोल,
गलथुथीमाँ घोलि न पायाँ झेर जो॥
शोकलडीनाँ वेणमने वहु साँभरे रे लोल,
नयणाँमाथी छूटे जलनी धार जो।
हैहुँ न फाट्युँ रे हजुये अमतणुँ रे लोल,
चर ऊपर काँई ठठरा मेघ मलार जो॥
एवाँ ते वेणाँ शु बोलो मुख थकी रे लोल,
भोलाँ मननी शुँ आणो छो भ्रांत जो।
नारी मत शुँ राखो नारदने कहे रे लोल,
कुलवंती तमे केम करो कल्पांत जो॥
पटराणी तमथी बीजु प्यारी नथी रे लोल,
शुँ सतभामा कुडो आण्यो क्रोध जो।

कपटी नारदियानाँ केहेण न मानियेरे लोल,
घणो वधारे घेर घेर जई विरोध जो ॥
साचुँ जो कहुँ तो तमे नव साँभलो रे लोल,
कहो सतभामा खाऊँ तम आगळ समजो।
कालुडा नागने आयूँ आँगली रे लोल,
तो ए तमारुँ मन नथ माने क्यम जो ॥
मोहन जी कहेरे सती तमे साँभलो रे लोल,
कहोवो मँगावुँ पारिजात नुँ झाड जो।
आणीने रोपवुँ तमारे आँगणे रे लोल,
राखी रोष तजीने मूको राड जो ॥
हरखीने बोल्याँरे हरिथी हेत शुँ रे लोल,
सतभामाने सौंका लाग्याँ पाय जो।
वाजाँ ने वागेरे वाँसली रे लोल,
गीतगान ने नौतम उच्छब थायजो ॥
कुमकुम ने कस्तूरी बेहेके केवडोरे लोल,
चूवा चंदन वडे अबिल गुलाल जो।
आनंद ओछव रे थाय अति घणो रे लोल,
भेरभुंगल ने वाजे मृदंग ताल जो ॥
कशाणुँ गायुँ रे रूडी रीत शुँ रे लोल,
सतभामानाँ मनाव्याँ छे मन जो।
'मीराँ' नो स्वामी रे मोल पधारियारे लोल,
सतभामानाँ जीवन कीधाँ धन्य जो ॥२८५॥

राम नाम साकर कटका हाँरे, मुख आवे अमी रस घट का।
हाँ रे जेने राम भजन प्रीत थोड़ी, तेनी जीभलड़ी ल्योने तोड़ी ॥
हाँ रे जेणे रामतणा गुण गाया, तेणे जम ना मार न खाया।
हाँ रे गुण गावछे 'मीराँबाई' तमे हरि चरणे जाओ धाई ॥२८६॥

राम सीतापति तारी लेह लागी, हो तमने भजे थी मारी भीड़ भाँगी।
घरनो ते धंधो मने नथी गमतो, साधु संगाथे मारी प्रीत बाँधी ॥
कामकाज छोड्याँ में तो लोकलाज मेली, प्रेम मगनयाँ हूँ राजी।
अज्ञानना कोटडी माँ ऊँघ घणो आवे, प्रेम प्रकाशमाँ हूँ जागी ॥
दुरजन लोक मारी निंदा करे छे, वाला लागे छे मने वेरागी।
नाचि कूदिने में तो भक्ति न कीधी, लोकनी लाज में बहु राखी ॥

ध्रुवजीने लागी प्रह्लादजीने लागी, द्रौपदीनी सभामाँ भीड़ भाँगी।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, जनमो जनमनी हूँ त्यागी ।२८७।

चालने सखी मारो श्याम देखाडुँ, वृन्दावन माँ फिरतो रे ।।टेक।।
नखशिख सुधी हीरा ने मोती, नव नवा शणगार धरतो रे ।।
पांवला पाघ कलंकी तोरो, शिर पर मुकुट धरतो रे।
धेनू चरावे ने वेनू बजावे, मन माराँ ने हरतो रे ।।
रूपने सँभारूँ के गुणने सँभारूँ, जीव रणछोड़ माँ भमतो रे।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर, शामलियो कुबजाने वरतो रे ।२८८

आतुर थई छुं मुख जोवाने, घेरे आवो नंदलाला रे ।।टेक।।
गौ तणां मीश करी गया छो, गोकुल आवो मारा वाला रे ।।
मासी रे मारी ने गुणिका रे तारी, टेव तमारी चेशी छोगाला रे।
कंस मारी मात पिता छगार्यां, घणा कपटी नथी भोला रे ।।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर घणाज लागो प्यारा रे ।।२८९।।

हाँ रे जाओ जाओ रे जीवण जुठडा, हाँ रे बात करताँ अमे दीठडा।।
सौ देखताँ वहालो आल करे छे, मारे मन छो मीठडा रे ।।
वृंदावन नी कुंज गलिन में, कुब्जा संगे दीठडा रे।
चंदन पुष्प ने माथे पटको, वली माथे घाल्याँताँ पीछडाँ रे ।।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर, मारे मन छो मीठडा रे ।।२९०।।

भजोलो नी संतो भजोलो नी साधो,
रामजी वीना केसो जीवणरे, हो जी० ।।टेक।।

तनको बनावुँ तंबुरो, जीवनो तार तणावुँ राम।
वन वन बाजे घूघरा, जीवने लाड़ लड़ावुँ राम ।।
आँगणे आँणी आरा आटला, मंदिर लीप्याँ ना दीसे राम।
शेर अनाज ने सेवताँ, जीवडो जाताँ ना दीसे राम ।।
काया ने आशाँ आलियाँ, जम पाछा ना पूरे राम।
सात सहेलीना झुमखमाँ, जीवने आगल वरावे राम ।।
तल तल देह होमीयाँ, जरा अज्ञान मोडुँ राम।
जीवडो जाय तो जावा देऊँ, हरिनी भक्ति ना छोडुँ राम ।।
नदी रे किनारे * * नदणे नीर वहेवडावुँ राम।
कायानी करूँ वाडी हुँ, नदी रे किनारे चंपो रोपावुँ राम ।।
कान्ह जी ना हाथनी रेखा अड़े मिन, चंपे कलियो आवे राम।
द्वारि 'मीराँबाई' नी बिनति ठाकुर, दासी तुज कहावुँ राम ।।२९१।।

मल्यो जटाधारी, जोगेश्वर बाबो, मल्यो रे जटाधारी।
हाथ माँ झारी हुँ तो बाल कुँवारी बाळा, देवल पूजवाने चाली ॥
साडी फाडी ने कफनी कीधी बाला, अंग पर बिभूति लगाड़ी।
आसन वाली बावो मढ़ीमाँ बेठो, बाला घेर घेर अलख जगाड़ी ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर बाला, प्रेमनी कटारी मुने मारी ॥२६२॥

थाल

विट्ठल वहेला आवो रे, वाटडी जोऊँ, हर्खी नरखी मन मोहुँ रे।
वहाला मारा रसोई बनावी छे सारी, कीधी छे सुंदर घाटी रे ॥
वहाला म्हारा कंसार पीरस्यो छे प्रीते, प्रभु जमोपूरण प्रीते रे।
वहाला मारा दाल भात ने कढी, वड़ी सामग्री सर्वे कीधी रे ॥
वहाला मारा राइताँ शाक पापड़ छे सारा, तमो जमो प्रितम मारा रे।
वहाला मारा शरमाशो नहि वारूँ, कई कहेजो खाटु खारूँ रे ॥
वहाला मारा कनकनी झारी भरी लावुँ, तमने आचमन नेवरावुँ रे।
वहाळा मारा मुखवास लावी छुँ सारो, तमे उठो सेजे पधारो रे ॥
वहाला मारा हेते रहो भुजपाश,
गुण गाय तोरी 'मीराँ' दासि रे ॥ ॥ २६३ ॥

राग मारू

नाथ रिसायो रे, बेनी मारो नाथ रिसायो रे।
चोरामाँ जोयो रे चौटामाँ जोयो, फलीयाँ जोयाँ फरी फरीने ॥
हाथमाँ दीवलडो ने घेर घेर जोती, जोती अति घणुँ रोती।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमले चित्त देती ॥२९४॥

राग धनाश्री

मने मलीया मित्र गोपाल, नहिं आऊँ सासरीए ॥ टेक ॥
संसार मारूँ हो सासरूँ ने वैकुंठ मारो वास रे।
लच्च चोरासी मारो हो चुडलो रे,
हाँ रे में तो वर्या गोपाल लाल नाथ ॥
सासु हमरी सुषमणा रे, ससरो प्रेम संतोष रे।
जेठ जुगोजुग जीवजो रे, हाँ रे पेलो नावलीयो निर्दोष ॥
ओढुँ तो नवरंग चुंदडी रे, नहिं ओढुं काँबल लगार रे।
ओढुँ प्रेम रस चुंदडी रे, हाँ रे मारों पाप निवारण करनार ॥
दीएरने दोनुं हे दीकरी रे, दोनुं राजकुमार रे।
एकने सत्ययुग मोही रह्यो राणा, दुजी रही ब्रह्मचार ॥

एकेकनो गुरु गोबिंदजी होरे, दुजी को है संसार रे।
राजा छाँडो चित्रकूटने रे, हाँ रे वाला गामडाँ सोल हजार॥
अपना पिया कुँ जाइने कहेजो, घणा दहाडानो घरवास रे।
बेड करजोडी हो विनवें रे, हाँ रे गुण गाय मीराँबाई दासि॥३९५॥

राग आसा मांड—तीन ताल

जूनो थयुँ रे देवल जूनो थयुँ,
मारो हँसलो नानो ने देवल जूनो थयुँ॥ टेक॥
आ रे काया रे हंसा, डोलवाने लागी रे,
पडी गया दाँत माँयली रेखुँ तो रयुँ॥
तारे ने मारे हंसा, प्रीत्युँ बँधाणी रे,
उडी गयो हंस पाँजरे पडी रे रह्युँ॥
'बाई मीराँ' कहे छे प्रभु गिरिधरना गुन,
प्रेम नो प्यालो तमने पाऊँ ने पीऊँ॥३९६॥

हूँ तो परणी शामलीया वर नी साथे रे,
बीजाना मींढोल नहिं बाँधुँ॥ हूँ तो परणी०
चार चार जुगनी म्हाले चोरीयुँ बँधावी, मेइनो माँडवो माथे।
धर्मनो धूरी म्हालो वचने बँधाणो सतनाँ कंकण पहेर्यां हाथे॥
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, वरीएँ तो वर इगनाथ॥३९७॥

आज की माणेक ठारीयाँ, मोहनजी आज की माणेक ठारीयाँ॥
दूध पौआं ने राइती फेरी उपरथी गवारीयाँ वघारीयाँ रे।
बरफी पूरीने आदां चीरी उपरथी तीखु स्टाइयाँ रे॥
सेव कंसारने कारेला कंटोलाँ, उपर सूरण सवादियाँ रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, भावे करीने आरोगियाँ रे॥३९८॥

म्हारुँ मोहुँ र लक्ष्मीवर ने लटके, घर खोवुँ न खटके॥
आ संसारीडो छे कुंडो, हरि चरणे चित्त अटके॥
मोर मुकुट काने कुंडल, पीतांबर ने लटके॥
वृंदावन नी कुंज गलिन माँ, वेंत वाँस ने कटके॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर रँग लाग्यो रँग चटके॥३९९॥

राग कलिंगड़ा—दीपचन्दी

नाहि रे बिसारूँ हरि, अन्तर माँ थी नहि रे॥ टेक॥
जल जमुना पाणी रे जाताँ, शिर पर मटकी धरी॥

आवताँ ने जाताँ मारग वच्चे, अमुलख वस्तु जडी ॥
आवताँ ने जावाँ बृन्दारे बनमाँ, चरण तुमारे पडी ॥
पीळा पीताम्बर जरकसी जामा, केसर आड करी ॥
मोर मुकुट काने रे कुंडल, मुख पर मोरली धरी ॥
'बाई मीराँ' कहे प्रभु गिरिधरना गुण विट्ठलवा ने वरी ॥४००॥

राग प्रभात

आज मारॉं नेणाँ तृप्त थयाँ, जोयाँ नाथने नीरखी,
सुंदर बदन नीहाली ने, मारा हैडामाँ हरखी ॥
जेवुँ मारे मन हतुं, तेहवुँ नाथजी कीधुँ,
ते प्रभु प्रेमे पधारीया, आलींगन दीधुँ ॥
मारो व्हालोजी बीहारी लाल, जावाने केम दीजे,
हरीने अलगा नवमेलीये, अंतरगत लीजे ॥
शिवरे विरंची महामुनी, तेने ध्याने न आवे,
परम भाग्य व्रीजनारनूँ, वाहालो लाड लडावे ॥
धन्य धन्य रे जमुना त्रटे, धन्य व्रीज ने रहे वास,
धन्य धन्य रे आ भूमीने, वाहालो रमीया रास ॥
अमर लोक अंत्रीक्ष, जोवाने रे आवे,
पुष्पवृष्टी त्यांथती, 'मीराँ' प्रेमे वधावे ॥४०१॥

वाछरडी हारेडी छो लाल, तारी वाछरडी रे।
एवड वेवड नाडी बाँधी, त्रेवड नाडी तोडी रे ॥
दोणी लइने दोवा बेठी, जडवा नाख्या मोडी रे।
ते वाछरडीना पगज बांध्या, लोप ते पाडु मरोडी रे ॥
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर, चली मुकोनी एने छोडी रे ॥४०२॥

नित्य नित्य भजवुँ ताऱुँ नाम, ताऱुँ नाम, ताऱुँ नाम रे।
प्रेम थकी अमने प्रभुजी मल्या होजी ॥
आणी तेडे गंगा व्हाला, पेली तेडे जमना रे।
वच्चे गोकलियुं रुडुं गाम, रुडुँ गाम, रुडुँ गाम रे ॥
म्हारे आँगणेए व्हाला, तुलसीना छोड व्हाला।
पूजा कर्यानुं म्हाऱुँ धाम, म्हाऱुँ धाम, म्हाऱुँ धाम रे ॥
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर व्हाला।
छेल्ली वाकीना राम राम, राम राम, राम राम रे ॥४०३॥

संसार सागरनो भे छे मारे, माँहे भर्यो छे बहु भार।
काम क्रोध वे कटाल उमराव, मद ममता मोह चार॥
शील संतोषी सढ चढ़ावो, हरि नाम ते हलकार।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, राग हृदय मन माँ धार॥४०४॥

राग कल्याण

हरि नंदकुँवर ताहुँ नाम साँभलीने, आशभर्या हमे आव्याँ॥
गाय दोहताँ दोहणी रे भूल्याँ, वाछरडाँ घवडाव्याँ॥
पीपले पीपले पाणी भरताँ ठोकरी माँ घी ताव्याँ।
नंदकुमारे जईने विणा वजाडी, शा अर्थे बोलाव्याँ॥
माय बापनी लज्या मेहली, सहीयेरे समजाव्याँ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल चित्त चलाव्याँ॥४०५॥

राग कल्याण

आँखलडी वाँकी, अलबेला तारी आँखलडी वाँकी।
नैन कमल नो पलकारो रे भारे, तीर मार्या ताकी॥
वृंदावन ने मारग जाताँ तन रे जोयाँ झाँखी।
चाल बणीया माँ वाले चित्त हरी लीधाँ, मोहनलाले भूरकी नाँखी।
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर चरण कमल चित्त राखी॥४०६॥

अबोला सीद लोछो, मारा राज, प्राण जीवन प्रभु मारा।
अमे तो तमारां तमे तो अमारा, टाली दोष शीद दो छो रे,
अमे तो तमारी सेवा करीए, सुख लेईने दुःख दो छो रे॥
जेणे पोतानी मासी मारी, तेनो शो विश्वास रे॥
अमृत पाईने उछेर्या वाहला, विखडां घोळी शीद पाओ छो रे।
ऊँडा कुवामाँ उतार्यां वाहला, वरत वाढी शुँ जाओ छो रे॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरणकमल चित्त रोहो छो रे॥४०७॥

हाँ रे में तो कीधी छे ठाकोर थाली रे, पधारो वनमाली रे॥
प्रभु कंगाल तोरी दासी, हाँ रे प्रभु प्रेमना छो तमे प्यासी,
दासीनी पूरजो आशी॥
प्रभु साकर द्राख, खजूरी, माँहे नथी वासुदी केपूरी,
मारे सास ननदी नी सूली॥
प्रभु भाँत भाँतना लावुँ मेवा, तमे पधारो वासुदेवा,
मारे भुवनमाँ रजनी रहेवा॥

हाँ रे मैं तो तजी छे लोकनी शंका, प्रीतम का घरहे बंका,
'बाई मीराँ' ऐ दीधा डंका ॥४०८॥

मारे घेर आवो रे सुंदर श्याम, सोले शणगार पेरो शोभता रे।
मोतिडे माँग भरावे, वेणी गुँथावुँ सोभे ढलकंती, हुँ तो ऊभी राजद्वार॥
ऊँची हुँ चढुँ उचेरडो रे जोउँ पातलियानी वाट।
वेगे पधारो मारा हो साथ्या, तारे वेसणे माँडुँ पाट॥
मोर मुगट शोहामणो रे, गले गुंजानो हार।
मुख मधुरी तारे हो मोरली रे, तारी चाल तणीछे बलीहार॥
दासि 'मीराँबाई' गिरिधर नागर, हर्षी निर्खी गुण गाय।
कलीयुग माँ असे अवतरीयाँ, मने राखोनी चर्णे करो साय॥४०९॥

कोने कोने कहुँ दिलडानी वात, वारे वारे कोने कहुँ ॥टेक॥
पांडवनी प्रतिज्ञा पाली द्रौपदीनी राखी लाज रे।
सुदामानी वेला वारी, उगार्यो प्रहलाद रे॥
वृंदावन तमे वाहले उगार्युं, सुंदरी ने काज रे।
पहेरी सजी महेले पधारो, रीझे मारो नाथ रे॥
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर * * ।
तमने भजीने हुँतो थई छुँ रे, आणिदिन रलियात रे॥४१०॥

मोरलीए मोह्याँ मोहन, तारी मोरलीए मन मोह्याँ।
थारे कारण शामलीया वाहला, त्रण भुवन मेंने जोयाँ रे।
थारा सरखा प्रभु नव कोई दीठा, त्रण भुवन मनडे न मोह्या रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरण कमल चित प्रोयाँ रे॥४११॥

लीधाँ रे लटके म्हाराँ मन लीधाँ रे लटके।
गात्र भंग कीधाँ गिरिधारीए, जो मार्या झटके।
मन रे मारुँ मोरली से मोह्युँ, पेला वांस तणे कटके।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, हो रंग लाग्यो चटके॥४१२॥

कँही जाइ करूँ रे पोकार, कारी मुने घाव लागो थे।
पीउजी हमारो पारधी भयो थे, मैं तो भई हरणी शिकार रे।
दूर से थो आई गोली लग गई शीरु थे, निकर गई पारमपार रे।
प्रेमनी कटारी मुने खेंच कर मारी थी, थई गई हाल बेहाल रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, हो गई पारमपार रे॥४१३॥

राग धनाश्री

काम नहिं आवे तारे काम नहिं आवे,
प्रभु विना तारे काम नहिं आवे।
रुचि रुचि अन्ननो भोजन बनायो, ता परे तन तापकर लगायो रे।
रतनजतनकरी एही पुतर जायो, क्षणुँ क्षणुँ वाकुँ लाड़ लड़ायो रे।
तरीया कहे तोरी साथ चलूँगी, लुंटो लुंटी वाको धन खायो रे।
काढ काढ करे घरथी वाहरी, क्षणुँ रे रहेवा न पायो रे।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर,
चरणे रही चरण न धरायो रे ॥४१४॥

राग केदारो

वागे छे रे, वागे छे, पेला वनडा मां मीठी वेणु वागे छे,
दुर्जन नो डर लागे छे।
सासु सुती मारी सुख निद्रा माँ, जाऊँ तो रे नणदल जागे छे।
ससरो हमारो परम सोहागी, दीयेरीओ छणछणो दिलमाँ दाभे छे।
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर, जन्म मरण भै भागे छे ॥४१५॥

अरज करे[1] छे मीराँ राँकडी,
ऊभी ऊभी अरज करे छे मीराँ राँकडी[2]।
माणिगर[3] स्वामी मारे मंदीरे पधारो, सेवा करूँ दिन रातडी।
फूलना रे तोरा ने फूलना रे गजरा, फुलना ते हार, फूल पाखँडी।
फूलनी वे गादी ने फुलना रे तकिया, फुलनी ते पाथरी पछोडी।[4]
पय पकवान मीठाई ने मेवा, सेवंया ने सुंदर दहीडी।[5]
लवींग सोपारी ने एलची तजवाली, काथा चूनानी पानवीडी।[6]
सेज विछावुँ ने पासा मँगावुँ[7], रमवा आवो तो जाय रातडी।
'मीराँबाई' कहे प्रभु गिरिधर नागर,
तमने जोतामाँ, ठरे छे मारी आँखडी ॥४१६॥

मुखड़ानी माया लागी रे, मोहन प्यारा, मुखड़ानी माया लागी रे।
मुखडुँ में जोयुँ तारुँ आ जगतडुँ थयुँ वारुँ, मन मारुँ रह्युँ न्यारुँ रे।

---

१. पाठा०—वाट जुवे। २. पाठा०—दीनानाथ रे। ३. पाठा०—मुनिवर। ४. यह पंक्ति दूसरे पाठ में नहीं है। ५. पाठा०—घेवर जलेबी तल साँकली रे। ६. पाठा०—पाननाँ बीडला एलची दोडा ने तज पाँखडी रे। ७. पाठा०—साव सोनानां वाला सोगठां ढलावुँ रे।

संसारी नुँ सुख ऐवुँ झाँझवानाँ नीर जेवुँ, तेने तुच्छ करी पूरी रे।
संसारी नुँ सुख काचूँ परणीने रँडावुँ पाछूँ, तेने घेर शिद जइये रे।
परणुँ तो प्रीतम प्यारो अखंड सौभाग्य मारो, राँडवानो भे टाल्यो रे।
'मीराँबाई' बलिहारी तारी आशा एक मने उरधारी,
छवे हुँ तो वड़भागी रे ॥४१७॥

हाँ रे, चालो डाकोरमाँ जई वसिये,
हाँ रे मने लेहे लगाड़ी रंग रसिये रे।
हाँ रे, प्रभातना पहेर माँ नोबत वाजे,
हाँ रे अमे दरशन करवा जइये रे।
हाँ रे, चटपटी पाघ केशरियो वाघो,
हाँ रे काने कुंडल सोहिये रे।
हाँ रे, पीलाँ पीतांबर जरकशी जामो,
हाँ रे मोतिन मालाथी मोहिये रे।
हाँ रे, चंद्रवदन अणियाली आँखो,
हाँ रे मुखडुँ सुंदर सोइये रे।
हाँ रे, रुमझुम रुमझुम नेपूर वाजे,
हाँ रे मन मोह्युँ मारुँ मोरलीये रे।
हाँ रे, 'मीराँबाई' कहे प्रभु गिरिधर नागर,
हाँ रे अंगो अंग जइ मलिये रे ॥४१८॥

राग मारु

मार्या छे मोहनाँ बाण, वा लीड़े अमने मार्या छे मोहनाँ बाण।
तमारी मोरलीए मार्राँ मनडाँ विंधायाँ, विंधायाँ तन मन प्राण॥
वृंदावन ने मारग जाताँ, हाँ रे मारो पालवडो मो ताण।
जल जमना जल भरवा गयाँ ताँ, कांठले ऊभो पेलो काण।
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर चरण कमल चित आण ॥४१९॥

आवो रे सलुणा मारा मीठडा मोहन, आँखडलीमाँ तमने राखुँ रे।
हरि जेरे जोइये ते तमने आणी आपुँ मिठाई मेवा तमने खावुँ रे।
ऊँची ऊँची मेडी साहेबा अजब झरुखा, झरुखे चढ़ी चढ़ी झाँकु रे।
चुन चुन कलियाँ वाली सेज बिछावुँ,
भमर पलँग पर सुखवारी नाँखूँ रे।
'मीराँबाई' के प्रभु गिरिधर नागर,
तारा चरण कमल में मन राखूँ रे ॥४२०॥

ध्यान धणी केरुं धरवूँ रे, वीजुं मारे शुँ करवुँ शुँ करवुँ रे
सुंदर श्याम, बीजा ने मारे शुँ करवुँ ।
नित्य चठीने अमे नाहिए ने धोइए रे ध्यान धणी तणुँ धरिए रे।
संसार सागर महाजल भरीयो रे वाला, तारे भरुँसे अमे तरिए रे।
साधु जन ने भोजन जमाडीए वाला, जूठूँ वधे ते अमे जमिए रे।
वृंदा ते वनमाँ रास रच्यो रे वाला, रासमंडल माँ तो अमे रमिए रे
हीरने चीर मने काम न आवे वाला, भगवाँ पहेरी ने अमे भमिए रे।
'वाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर,
चरण कमल मा चित धरिए रे ॥४२१॥

काहानो माग्यो दे, धुतारो माग्यो दे,
वर तो राधा नो, मने काहानो माग्यो दे ।
वृंदा रे वनमाँ जे दी रास रम्या ता, सोळसें गोपीमाँ घेलो काहान।
हाथी ने घोड़ा वाई माल खजाना हैया केरो हार ले मान।
तलभर जवभर वछो नव कीधो, जवे तोलीने पाछी ले।
'वाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल चित्त दे ॥४२२॥

क्यारे आवशे घेर कानरे जोसीडा जोस जुओने ।
देहीओ अमारी वाला दुर्बल थई छे रे, थई गई थाकेली पाण रे।
वृंदा ते वनमाँ वाले रास रच्यो छे रे, सहस्र गोपीमाँ एक कान रे।
'वाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, आवे मल्या भगवान रे ॥४२३॥

मारा प्राण पातलिया वहेला आवो रे,
तमरे विना, हुँ तो जनम जोगण छुँ।
नाभि कमलथी सुरतारे चाली, जईने तखतपर रास रचीला रे।।
सुखमना नाडी एनी सेज बिछावे, ते दी रंग भीना छे रासधारी।
तमरे विनानुँ मारे अंतर आँधारुँ रे,
मारा जगना जीवन वहेला आवो रे ॥
साचुँ धरेणुँ मारे तुँ छे रे शमलीया रे,
अवर घरेणुं मारे हाथ नहिं आवे रे।
कुँवर बाई नाँ जेदी मामेराँ पूर्याँ,
तेदी छाव भरीने वहेला आवो रे ॥
साकरे सोनाना हरिना वाघा शीवडावुँ रे,
प्रीतमजी ने प्रणाम करीने।
विट्ठलराय जेदी वखाने आव्या,

ते दीना बिंटाणा छे बरमाले रे ॥

कागलिया नो जेदी फटको न होतो रे,
मखेर मोंघी रे जेदी लेखण न होती रे।
वाहला बिदुर ते जईने श्रेटलुँ कहेजो रे,
तमे एकबार मलवाने, वहेला आवो रे ॥
मधुरी नाद नी मोरली रे बागे रे,
सुरतिया माँ राधा जी जागे रे।
'मीराँ' नो स्वामी जेदी गिरिधर मलशे,
तेदी दासीनाँ दुःखड़ाँ भागे रे ॥४२४॥

नेह लागी मने तारी अल्याजी, नेह लागी मने तारी।
कामकाज मूकयुँ ने धामज, मूकयुँ मनमाँ चाहुँ छुँ मोरारी ॥
खभे छे काँमली ने हाथमाँ छे वाँसली, गोकुळमाँ गायो चारी।
सोळ सहस्र गोपियों ने तमे वरिया, तोय तमे बाल ब्रह्मचारी ॥
'मीराँ' कहे प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल बलिहारी ॥४२५॥

पिया कारण रे पीळी भई रे, लोक जाणे घट रोग।
छुप छुपलाँ में कँई करुँ मोई, पीयुने मिळन लियो जोग रे ॥
नाड़ी वैद तेड़ावीया रे, पकड़ धँधोळे मोरी बाँह ॥
एरे पीड़ा परखे नहिं मोरे, करक काल जड़ानी माँह रे।
जाश्रो रे वैद घेर आपने रे, माहारुँ नाम ना लेश।
हुँ रे घायल हरि नामनी रे, माई केड़ो लेई श्रोषद ना देश रे ॥
अघर सुधा रस गागरी रे, अधर रस गोरस लेश।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, पूरीने श्रमी रस पीवेश रे ॥४२६

कानुडे न जाणी म्हारी पीर, बाई हुँ तो बाल कुँवारी रे,
कानुडे न जाणी मारी पीर ॥टेक॥
जलरे जमुना नाँ अमे पाणीडाँ गयाँ ताँ वाह्ला,
कानुडे उडाड्याँ आछाँ नीर उड्याँ फररररररर रे ॥
वृंदारे वनमाँ वाले रास रच्यो छे,
सोलसें गोपीनाँ ताणयाँ चीर, फाट्याँ चररररररर रे ॥
हुँ तो वरणागी काह्ाना तमारारे नामनीरे,
कानुडे मार्याँ छे अमने तीर, वाग्याँ अररररररर रे ॥
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर,
कानुडे बालीने फेंकी ऊँचे गीर राख उडे फररररररर रे ॥४२७॥

सुंदर श्याम शरीर, मारे दिल सुंदर श्याम शरीर ॥ टेक ॥
कोइने भाव भवानी ऊपर, कोइने बाला पीर ॥
गंगा रे कोइ ने ने जमनारे कोइने, कोइने अड़सठ तीर ।
कोइने रे हस्ती, कोइने रे घोड़ा, कोइने ते महेल मंदीर ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, हरि हलधर केरा वीर ॥४२८॥

बोलमाँ बोलमाँ बोलमाँ रे, राधाकीसन विना बीजुँ बोलमाँ ॥टेक॥
साकर सेरडीनो स्वाद तजीने, कडवो लींबड़ो घोलमाँ रे ॥
चाँदा सूरजनुँ तेज तजीने, आगीया संगाथे प्रीत जोड़माँ रे।
हीरा माणेक झवेर तजीने, कथीर संगाथे मणि तोलमाँ रे ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, शरीर आप्युँ सम तोळमाँ रे ॥४२९॥

राग मारू

वारे वारे कहोने कहीए दिलडानी वातो, वारे वारे कहोने कहीए ।
आगे तमे बोलडा बोल्या मारा राज ।
ते बोलड़ा सँभारी मने कहेताँ आवे लाज ;
पांडवोनी प्रतिज्ञा पाली, द्रौपदीनी राखी लाज ।
सुदामा नी वेला वारी, उगार्यो प्रह्लाद,
प्रजापतिए नीमार्माँ पूर्यो, माँह देवतानो वास ॥
मांजारीनां बचां रे राख्याँ, दया श्री महराज,
वृन्दावन थी सालुडा लाव्या, राधाजी ने काज ।
पहेरी ओढी महेले आव्याँ रीझ्या श्री महराज,
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर,
सोहागी बनी सजी साज ॥ ४३० ॥

राग मारू

राखो रे श्याम हरी लज्जा मोरी, राखो श्याम हरी ॥टेक॥
भीम ही बेठे अर्जुन ही वेठे, तेणे मारी गरज न सरी ।
दुष्ट दुर्योधन चीरने खेंचावे, सभा बीच खड़ी रे करी ॥
गरुड़ चढ़ीने गोविंदजी रे आव्या, चीरना तो बाण भरी ।
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर चरणे आवी तो डगरी ॥४३१॥

मार्यां रे मोहनां बाण, धूतारे मने मार्यां मोहना बाण ॥टेक॥
ध्रुने मार्यो प्रहलाद ने मार्यां, ते ठरी ना वेठा ठाम ॥
शुकदेव ने गर्भवास माँ मार्यां, ते चारे युगमाँ परमाण ।
हिरण्यकश्यप मारी वाले उगार्यो प्रहलाद, दैत्यनो फेड्यो छे ठाम ॥

सायरपाज बाँधो वाले सेन उतारी, रावण हरायो एक बाण ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, हमने पार उतारो श्याम ॥४३२॥

तमे जाणील्यो समुद्र सरीखा, मारा वीरा रे,
आ दील तो खोलीने दीवो करो रे ॥
आरे कायामाँ छे वाडीओ रे होजी,
माँहे मोर करे छे भींगोरा रे ॥
आरे कायामाँ छे सरोवर रे होजी,
माँहे हंस तो करे छे कल्लोला रे ।
आरे कायामाँ छे हारडा रे होजी,
तमे वणज वेपार करोने अपरंपारा रे ॥
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर होजी,
देजो अमने संत चरणे वसेरा रे ॥४३३॥

मंदिरिया माँ दिवडा विनानुँ अँधारुँ ॥ टेक ॥
खलभल्याँ देवल उभी रहो थाँभली, चाटुँ नहिं भाले एना भार रे ॥
हाथ माँ वाटकडी घरोघर घुमती कोई ने आलो ओधारुँ रे ।
उठी गयो वाणियो ने पडी रह्या हाटडो रे जमडा करे छे धींगाणुँ रे
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर,
आवता जमडाने पाछा वालो रे ॥४३४॥

ज्ञान कटारी मारी, अमने प्रेम कटारी मारी ।
मारे आँगणे रे रामजी तपसीओ तापे रे, काने कुंडल जटाधारी रे ॥
मकनो सो हाथी रामजी लाल अँबाडी रे, अंकुश दई दई हारी रे ॥
खारा समुद्र माँ अमृतनुँ वहेलीयुँ रे, एवी छे भक्ति अमारी रे ॥
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरण-कमल बलिहारी रे ॥४३५॥

निज-संबंधी

राम रमकडुँ जडियुँ रे, राणाजी मने राम रमकडुँ जडियु ॥टेक॥
रुमझुम करतुँ मारे मंदिरे पधार्युं, नहिं कोईने हाथे घडियुँ रे ॥
मोटा मोटा मुनिजन मथी मथी थाक्या,
कोइ एक विरलाने हाथे चडियुँ रे ।
सुन शिखरना रे घाटथी ऊपर,
अगम अगोचर नाम पडियुँ रे ॥
'बाई मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर,
मारुँ मन शामलीयाशुँ जडियुँ रे ॥४३६॥

आध वेरागण छुँ राणा जी, मे आध वेरागण छुँ।
मीरा बाँधे घूघरा रे, हाथ लीये करताल।
अमोरे गिरिधर आगळ नाची शुँ रे, गुण गाई शुँ रे गोपाळ।
विषना प्याला राणे मोकल्या रे दीजो मीरा के हाथ।
कर चरणामृत पी गयाँ रे, अमेरे आसी श्री रघुनाथ ॥४३७॥

सोकलडीनुँ साल मारे मोटुँ,
होजीरे घरमाँ सोकलडीनुँ साल मारे मोटुँ।
हमोने हमारे रे मैयर वलाश्रो वहाला,
हावे रहेवानुँ मारे खोटुँ।
कुवेरे पडीशुँ अमो वखडाँ रे पीशुँ,
हावे जीव्यानुँ आल शिर चोटुँ।
सासु हठीली म्हारी नणदी ठगारी वहाला,
नानाँ दीयरीयो मेणुँ मोटुँ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर वहाला,
चरण कमल चित्तने ओटुँ ॥४३८॥

श्याम रे रंगे राचूँ राणा जी, कहान संगे राचूँ।
ताल पखाज वेणाज वाजे, घूघरा बाँधीने हुँ नाचूँ।
कोई कहे मीराँ भई रे बावरी, कोई कहे जोगण मदमाती।
बिखना प्याला राणाजीए भेज्या, पीवाँ आवे मुने हाँसी।
अपनी रे कुलकी शाखा मट गई, मट गई जमरे को फाँसी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, जन्मो जन्मकी तेरी दासी ॥४३९॥

शुँ करूँ राणाजी, मारुँ चितडुँ चोराये, मारुँ मनडुँ बंधाये।
करवाँ न सुझे श्रमने घरनाँ रे काम,
भोजन ना भावे नयणे निद्रा हराम।
जळ जमना ने काँठे उभा बळीभद्रवीर,
बँसरी बजावे वहालो जमना ने तीर।
ऊभी वजारे गजरथ चाल्यो रे जाय,
श्वानभसे तो तेनी संख्या ना थाय।
भखरे मारे रे पेळा दुर्जन लोक,
चितडुँ चोट्युँ तो तेनी शीखामण फोक।
ज्याँ शामळीयो गिरिधारी त्याँ मारी आश,
हरखो निरखो गाय 'मीराँ' दासि ॥४४०॥

जेने मारा प्रभुजोनी भक्ति ना भावेरे, तेने घेर सीद जइये।
जेने घेर संत पाहुणो ना आवे रे, तेने घेर सीद जइये।
ससरो अमारो अग्निनो भड़को, सासु सदानी सूली रे।
एनी प्रत्ये मारूँ काँई ना चाले रे, एने आँगणीए नाखुँ पूळो रे।
जेठाणी हमारी भमरानुँ जाळुँ, देराणी तो दिलमाँ दाजी रे।
नाहानी नणंद तो मो मचकोडे, ते भायगे अमारे कर्म पाजी रे।
❀ ❀ ❀ ते बलतामाँ नाँखे छे वारी रे।
मारा घर पछवाड़े सीद पड़ी छे, बाई तूँ जीती ने हुँ हारी रे।
तेने खूणे बेसीने मैं तो भोगु कात्युं, ते नथी राख्यु काँई काचुं रे।
दासी 'मीराँबाई' गिरिधर गुण गावे,
तारा आँगणिआ माँ थेई थेई नाचुँ रे ॥४४१॥

राग परज

गोविंदो प्राण अमारो रे, मने जग लाग्यो खारो रे।
मने मारो रामजी भावेरे, बीजो मारी नजरे न आवे रे।
मीराँबाईना महेळमाँ रे, हरि संतननो वास।
कपटी थी हरि दूर बसे, मारा संतन केरी पास।
राणोजी कागल मोकले रे, दे राणी मीराँ ने हाथ।
साधुनी संगत छोड़ी द्यो, तम वसोने अमारे साथ।
मीराँबाई कागल मोकले रे, देजो राणाजी ने हाथ।
राजपाट तमे छोड़ी राणाजी, वसो साधुने साथ।
विषनो प्यालो राणे मोकल्यो रे, देजो मीराँने हाथ।
अमृत जाणी मीराँ पी गयाँ, जेने सहाय श्री विश्वनो नाथ।
साँढ वाला साँढ शणगार जे रे, जावुँ सो सो रे कोश।
राणाजी ना देशमाँ, मारे जलरे पीवानो दोष।
डाबो मेल्यो मेवाड़ रे, मीराँ गई पश्चिम माय।
सरव छोड़ी मीराँ नीसर्याँ, जेनुँ माया माँ मनडुँ न काय।
सासु अमारी सुषमणा रे, ससरो प्रेम संतोष।
जेठ जगजीवन जगतमाँ, मारो नावलियो निर्दोष।
चुंदड़ी ओढुँ त्यारे रंग चुवे रे, रंग बेरंगी होय।
ओढुँ हुँ काला काँबलो, दूजो दाग न लागे कोय।
'मीराँ' हरिनी लाडली रे, रहेती संत हजूर।
साधु संघाते स्नेह घणो, पेला कपटी थी दिल दूर ॥४४२॥

प्रीत पूरवनीने शुँ करूँ, ओ राणाजी म्हारी प्रीत पूरवनीने शुँ करूँ।
हो मेवाड़ा राणा, मनडुँ लोभाणुँ तेने शुँ करूँ। ओ राणा जु०
रामजी भजूँ तो म्हारूँ हैयुं ठंडुं थाय।
भोजनीयाँ न भावे, नयने निंदलडी न आय। ओ राणा जु०
कंठे माला दोवडी, म्हारे शीलवरत शणगार।
केम करी विसरूँ रामने, म्हारा भव भव नो भरथार। ओ राणा जु०
पेड़आ बासक भेजिया ने दीया मीराँ ने हाथ।
हार गला माँ नाखियों ने, म्हारो मेहेल भयो ऊजास। ओ राणा जु०
बिखना प्याला भेजिया ने, दो मीराँ ने हाथ।
करि चरणामृत पी गयाँ, म्हारा रामतणो विश्वास। ओ राणा जु०
विखना प्याला पी गयाँ ने, भजन करे राठौड़।
तारी मारी नहिं मरूँ, मने राखणवालो ओर। ओ राणा जु०
राठौड़ाँ नी दीकरी ने सीसोदाँ ने साथ।
लइ जती वैकुंठडे, म्हारी प्रथम न मानी बात। ओ राणा जु०
'मीराँ' दासी राम की ने, राम गरीब निवाज।
'मीराँ' की लज्या राखजो, म्हारी बाँह ग्रह्यानी लाज।
ओ राणा जु० ॥४४३॥

शुँ करव छे राणाजी रे,
बीजा ने मारे शुं करवुँ छे।
ध्यान धणी नुं धरवुँ छे रे,
बीजा ने म्हारे शुं करवुँ छे।
ऊंडा सायर नो राणा संग न करीये,
काँठड़े वेसी ने नाहीये रे।
प्रभाते उठी म्हारे न्हावुँ ने धोवुँ राणा,
ध्यान धणीनुँ धरवुँ छे।
हीर नाँ चीर म्हारे काम न आवे राणा,
भगवी चादरे म्हारे करवुँ छे।
सोना नो थाल म्हारे काम न आवे राणा,
तुलसी नी मालाये मारे तरवुँ छे।
मंदिर म्हालियाँ म्हारे काम न आवे राणा,
पडेली झुँपडी माँ मारे मरवुँ छे।
बाई 'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर राणा,
वर विट्ठल ने मारे वरवुँ छे ॥४४४॥

परिशिष्ट

[जन मीराँ छाप के तथा पंजाबी-बिहारी भाषा-मिश्रित संदिग्ध पदों का संग्रह]

करना फकीरी क्या दिलगीरी, सदा मगन में रहेना रे।
कोई दिन गाड़ी ने कोइ दिन बंगला, कोई दिन जंगल रहेना रे।
कोई दिन हाथी, कोई दिन घोड़ा, कोई दिन पाउँ से चलना रे।
कोई दिन मोजाँ ने कोई दिन जोड़ा, कोई दिन फक्कम फक्का रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधरनागर जो कछु आय पड़े सो सहेना रे।४४५।

राग सिंधड़ा

थाँरो बिरुद घटै कैसे माई।
जात न जानी पाँत न जानी सधना जात कसाई।
दुरजोधन का मेवा त्याग्या साग बिदुर का खाई।
भीलनी के बेर, सुदामे के तंदुल, कबीर की गोण लदाई।
सैन भगत के काज सँवारे आप भये हरि नाई।
प्रहलाद भगत की लज्जा राखी रविदास की चणि आई।
जहिर प्याला राणे दीया पीवै 'मीराँबाई'॥४४६॥

राणाजी म्हारो काँई करसी म्हें तो सैयाँ छे श्री भगवान।
पगाँ बजावैं मीराँ घूँघरू रे, हाथाँ बजावै मीराँ झाँझ।
साँवरियो म्हाँने दर्शन देसी, परभाते और साँझ।
नाग पिटारी राणो भेजी, वे तो ह्वै गयो सालिगराम।
दुसरो प्यालो राणाजी भेज्यो चरणामृत कर कियो पान।
साधाँ री संगति मीराँ छोड़्यो साधाँ री सन्त स्वभाव।
साधाँ री संगीत राणा ना छोड़ा, णोतो गहरो लाग्यो घाव।
राणाजी म्हारो काँई करसी, म्है तो सैयाँ छे श्री भगवान॥४४७॥

राग सोरठ

हरि जन धोबीआ मनि धोइ।
ऐसे धोबनि धोवि रे धोबी आवा गौन न होइ।
सुरति सावन निरति जल करि खिमा सांति समोइ।
सुखमना के घाट धोबी धोइ निर्मल होइ।

मन सुआ तन पिंजरा विचि आय वसिआ सोइ।
दासि 'मीराँ' लाल गिरिधर जीवना दिन दोइ ॥४४८॥

माई मो कौं मिलै मिंत गोपाल।
नहीं जाऊँ सासुरे हो रामु, रहूँ वेरे आसुरे हो रामु।
सासु हमारी सुखमना, सुसरा त परम सँतोख।
जेठ जुगत कर जानिए मेरा पीव रहियो निरदोख।
नंद हमारी नाम है, देवर तु दीनदयाल।
कंत हमारा वही है जिन काटिआ जंजाल।
चौरासी लख चूड़ियाँ पहिरौं न बारंबार।
बार बार के पीहरने मेरी करै लोक उपचार।
चार कुराट मेरे सासुरे बैकुंठ कियौ घरवास।
जोई सिमरै सोई उधरै जसु कहै 'मीराँ' दासि ॥४४९॥

नेह समद बीच नाँद परी बेली, नाहिं लगै बहि जात है बेरी।
मलाहन करत झार नदो है आस रहही गोबिंद तेरी।
लाज को संगर टूट गयो है बूझत हूँ बिन दामन चेरी।
अब तो पार लगावो नहीं (तो) प्रभु लोग हँसैंगे वजाइ हथेरी।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर
मेरी सुधि लीज्यौ प्रभु आय सवेरी ॥४५०॥

हमरे रौरे लागलि कैसे छूटै।
जैसे हीरा हनत निहाई, तैसे हमरौ रे बनि आई।
जैसे सोना मिलत सोहागा, तैसे हमरौ रे दिल लागा।
जैसे कमल नाल बिच पानी, तैसे हमरौ रे मन मानी।
जैसे चंदहि मिलत चकोरा, तैसे हमरौ रे दिल जोरा।
जैसे 'मीराँ' पति गिरिधारी, तैसे मिलि रहु कुंजबिहारी ॥४५१॥

मैं तो लागि रहौं नँदलाल से ॥
हमरे वाटहिं दूज न पार।
लाल लाल पगिया झिनझिन वार ॥
साँकर खटोलना दुई जन बीच।
मन कइले वरषा तन कइले कीच॥
कहाँ गइलें बछरु कहाँ गइलीं गाय।
कहाँ गइलें धेनु चरावन राय॥

कँह गइलीं गोपी कँह गइलें बाल।
कँह गइलें मुरली बजावन हार॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर लाल।
तुम्हरे दरस बिन भइल बेहाल॥४५२॥

माई मेरो मन मानियो माधउ मिळ रहिये रामु तेरी सरना।
वुनिन तनिन को कबीरा लीजै मति बुधि जांका चेरी।
खेति बोवन को धनरा लीजै थोड़ी माहि बहुतेरी।
पढ़िनि गुनिन को जैदेउ लीजै वाचत वेद पुराना।
रंग रँगनि कौ सीवन सीवन को लीजै छीपा नामा।
खिचड़ी करन कौ करमाबाई लीजै कलस भरन कौं रंका बंका।
सोसन जोखन कौ सधना लीजै तेग वाहन कौ पीपा।
तेल लावन कौ सैना लीजै हरि चरना लपटाना।
पनीश्रा गढ़न कौ बोझ ढोवन कौ लीजै रविदासा सरना।
सभ भगतनि मिल बेड़ा लादियो सूर भली गत पाई।
अगम निगम को जहाज ठिलियो है जसु गावै 'मीराँबाई'।
सुत के हेतु अजामलु तारि ओ नाराइन बोलाई।
धन्नै भगति का खेतु जमायो रबिदासै सौ वनि आई।
जहिर कटोरि राणे भेजी पीवै 'मीराँबाई'॥४५३॥

दसीयो मोहन किस दानी।
आवंदा जावंदा नजर न आवे अजब तमाशा इसदानी॥
दधि मेरी खायो मटुकिया फोरी लोभीयह गोरस दानी।
मात यशोदा दही विलोवे, माखन लै लै नसदानी॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर लूं लूं दे विच रसदानी॥४५

टुक देइ ग्वारन मक्खन कुडे।
थोड़ा देनीयां बहुत मंगदा छिक्यों लाहुदा ढक्कन कुडे॥
नौ लख धेनु लवेरी घर नंद दे अजे भी आवंद तक्कन कुडे।
त्रैलोकीदा ठाकुर मंगदा मखनेंदा की रक्खन कुडे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागरचरण कमल चित रक्खन कुडे॥४५

राग देस

साँवरे दी भालनमाये सानूँ प्रेम दी कटारियाँ।
सखी पूछें दोऊ चारे व्याकुल क्यों भैयां नारे

रंग के रंगीले मोहे दृग भर मारियाँ।
व्याकुल बेहाल भैयाँ सुध बुध भूल गैयाँ
अजहूँ न आये श्याम-कुञ्ज विहारियाँ।
यमुना की घाटी बाटी असां तेरी चाल
पछाती बँसिया बजावो कान्हा भैयाँ मतवारियाँ॥
'मीराँबाई' प्रेम पाया गिरिधरलाल ध्याया तू
तो मेरो प्रभुजी प्यारा दासी हौं तिहारियाँ॥४५६॥

राग कमोद

वारियाँ वे लाल वारियाँ।
तुसां अमनां फेरा पामनां कुञ्ज हमारियाँ॥
कौन सखी के तुम रँग राते हमसे अधिक प्यारियाँ।
ऊँची अटारियाँ ते लाल किवारियाँ तक रहियां बाट तिहारियाँ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर या छबि पर बलिहारियाँ॥४५७॥

राग कनड़ी

हो काँनाँ किन गूँथी जुलफाँ कारियाँ॥ टेक॥
सुघर कला प्रवीन हाथन सूँ जसुमतिजू ने सँवारियाँ॥
जो तुम आवो मेरी बखरियाँ जरि राखूँ चंदन किवारियाँ॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर इन जुलफन पर वारियाँ॥४५८॥

राग कनड़ी

बंदे बंदगी मति भूल।
चार दिना की कर ले खूबी ज्यूँ दाड़िमदा फूल॥
आया था ए लोभ के कारण मूळ गमाया भूल॥
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर रहना वे हजूर॥४५९॥

माइ हौं गिरिधर कै रंग राँची।
म्हा सीचि परो मति कोई बात चहौं दिसि साँची।
जागत निसा रहत उर ऊपरि ज्यौं कंचन मनि पाँची।
और सबै ही जाहरी हौ परगट होय नाँची।
मिलवी सो न बजाव कृष्ण के जो कछु कहौं सो साँची।
'जन मीराँ' गिरिधर की प्यारी मो मति नाहीं काँची॥४६०॥

राणा जी वो गिरिधर मित्र हमारै।
साँच मूठ को न्यारो छाँणै, नहीं और कै सारै।

साधाँ को रक्षा कै कारण, जनम करम कौं धारै।
दुष्ट जीवाँ को दंड कै करता, संता कौं निसतारै।
मिरतक जीव बैकुंठ पठावै, जीवत नरक मैं डारै।
अकरण करण अगाध अगोचर, निगम नेति कहि हारै।
जप तप तीरथ दान व्रतादिक, लोक वेद कै पारै।
जो कोइ आइ रहै सरणागत, ताकूँ वेगि उधारै।
अजामेलि से 'पतित आदि से, जन के संकट टारे।
'जन मीराँ' वाही के सरणैं, भगति न बिरद लजा रे ॥४६१॥

यों तो रंग धनां लग्यो हे माय।
कहा कहौं कछु कहत न आवै भयौ घुमाय खुमाय।
गुर परताप साधरी संगति हरि जन मिलिया आय।
कृपा करी छातैं प्यालो प्यावो, दूजो कहा ये समाय।
राणेजी बिषरो प्यालो भेज्यो, म्हे सिरि लियो छे चढ़ाय।
चरणामृत रो नाव जो लीयो, पी गई प्रेम अघाय।
पीवत ही अति चढ़ीये घुमारी, रहि गई थकित लुभाय।
'जन मीराँ' मतवारी कीना, पूरब जनम रै भाय ॥४६२॥

करणाँ सुणि[1] स्याम मेरी, मैं तो होइ रही तेरी चेरी।
दरसण कारण भई वावरी बिरह बिथा तन घेरी।
तेरे कारण जोगण हूँगी दूँगी नग्र विच फेरी।
कुंज सब हेरी हेरी॥
अंग भभूत गले मृगछाला यो तन भसम करूँ री।
अजहुँ न मिल्या राम अबिनासी बन बन बीच फिरूँ री।
रोऊँ नित टेरी टेरी॥
'जन मीराँ' कूँ गिरिधर मिळियाँ दुख मेटण सुख भेरी।
रूम रूम सीता भइ उर में मिटि गइ फेरा फेरी।
रहूँ चरननि तरि चेरी ॥४६३॥

राणा जी गिरिधर प्रीतम प्यारो।
लोग कहै कारी कामरि वारो म्हारो तो प्रान अधारो।
गौतम-नारि अहल्या तारी कीर कुटुंब सब तार्यो।
कबीर परां बारदि भरि लायो नरसी नो कारज सार्यो।

---

१. पाठा०—करणा सुणो।

नामदेव की छानि छवाई हस्ती जाय उबारथो।
द्रुपद-सुता को चीर बधायो दुस्सासन पचि हारथो।
पहलाद की परतिग्यां कारण सिंह रूप हरि धारथो।
अपनां जन कौ राषि लियो है हिरणाकुस नृप मारथो।
जनम जनम को मोहन प्रीतम राणौंजी कौण विचारो।
थे तो म्हारा झूठा प्रीतम साँचो संबोवारो।
जौ तू हमारो कर कूं पकरै षबरदार मन थारो।
'जन मीराँ' गिरिधर कै ऊपरि तन मन धन सब वारो ॥४६४॥

साजन घर आज्यो जी मिठ बोला।
म्हारै तो येक लागि रही छे राम नाम की झोला।
आरति बहुत बिलम नहिं करना आयाँ ही सुष होला।
तन मन प्रान करूँ नौछावरि अब प्रभु कहा कहोला।
आव निसंक संक मति मानौ आया ही होई रँग ठोला।
थारै कारण सब कछु त्याग्यौ काजल तिलक तमोला।
कब की मैं ठाढ़ी पंथ निहारूँ कर धर रही कपोला।
'जन मीराँ' विरहिनि व्याकुल भई छिण मासा छिण तोला ॥४६५॥

लागी सो ही जाणै कठण लगण दी पीर।
बिपति पड़्याँ कोइ निकट न आवै सुख में सबको सीर।
बाहरि घाव कछू नहिं दीसै रोम रोम दी पीर।
जन 'मीराँ' गिरिधर के ऊपर सदकै करूँ सरीर ॥४६६॥

थारे गुण रीझियो रसिक गोपाल।
सो पतिवरत टरथो मति टारथो जिन बिसरो नदलाल ॥
राणेजी विष रो प्यालो भेज्यो आप करो प्रतिपाल।
गिरिधर लाल साँवरो मूरति वह मेरे रछपाल ॥
कोऊ निंदो कोऊ विंदो चलूँ भावती चाल।
प्रेम भरी 'मीराँ' जन गरजत हिरदै गिरिधरलाल ॥४६७॥

राणा जी मैं गिरिधर रे घर जाऊँ।
गिरिधर म्हाँरो साँचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ।
रैन पड़े तब ही उठ जाऊँ भोर भये उठ आऊँ।
रैन दिना वाके सँग खेलूँ ज्यों रीझै त्यों रिझाऊँ।
जो पहिरावे सोई पहिरूँ जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उनके प्रीत पुरानी उन बिन पल न रहाऊँ।

जहँ बैठावे जितही बैठूँ बेचैं तो बिक जाऊँ।
जन 'मीराँ' गिरिधर के ऊपर वार वार बल जाऊँ ॥४६८॥

राणा जी म्हाँरी प्रीत पुरबली मैं काईं करूँ।
रामनाम बिन घड़ी न सुहावे राम मिले म्हाँरा हियरा ठराय[1]।
भोजनियाँ नहिं भावे म्हाँनें नींदलड़ी नहिं आय।
बिष का प्याला भेजिया जो जावो मीरा पास।
कर चरणामृत पी गई म्हाँरे रामजी के विश्वास।
बिष का प्याला पी गई जी भजन करे राठौर।
थाँरी मारी ना मरूँ म्हाँरो राखणहारो और।
छापा तिलक बनाविया जी मन में निश्चय धार।
रामजी काज सँवारिया जी म्हाँने भावे गरदन मार।
पेट्याँ वासक भेजिया जो ये है चन्दन हार।
नाग गले में पहिरिया म्हाँरो महलो भयो उँजार।
राठौड़ाँ री धीयड़ी जी सोसोद्याँ रे साथ।
ले जातो वैकुंठ कूं म्हाँरी नेक न मानी वात।
'मीराँ' दासी राम की जो राम गरीब नेवाज।
'जन मीराँ' को राखज्यो कोई बाँह गहे की लाज ॥४६९॥

---

[1] पाठा०—राम नाम बिन नहीं आवड़े, हिवड़ो झोला खाय।

टिप्पणी

१—परसि—स्पर्श करो, प्रणाम करो। त्रिविध-ज्वाला—तीन प्रकार के तापकारक कष्ट, शारीरिक, मानसिक तथा दैविक। हरण—हरनेवाला, नाश करनेवाला। जिण—जिन, जिस। धरण—धारण या प्राप्त करनेवाले हो गए। नख सिखाँ—पैर के नख से चोटी तक अर्थात् सर्वांग में। सिरी—श्री, शोभा। परसि लीने—छू लेने मात्र से। गौतम-घरण—गौतम की स्त्री अहल्या। गोपलीला-करण—गोपों सा कार्य करने के लिये। मद—गर्व, घमंड। अगम—अगम्य, जिसे पार करना संभव नहीं। तारण-तरण—उद्धार करने के लिए तरणि या नौका के समान, निस्तारकर्ता।

२—पटरानी—मुख्य रानी, पट्टमहिषी। दरस-परस—दर्शन-स्पर्श। अघ—पाप। मंजरी—कोंपल, दानों युक्त निकला हुआ कल्ला। श्रीपति—विष्णु भगवान। नैवेद्य—भोग। हुलसानी—प्रसन्न हुई। भक्ति··· महरानी—तुलसीजी ने कृष्ण-भक्ति मुझे दान दिया।

३—म्हाँने—मुझको, हमें। दरसण—दर्शन। सिंघासण—सिंहासन। फीको—सत्वहीन, निस्सार।

४—पार्णी—पानी, जल। कान्हो—श्रीकृष्ण। लियाँ—लिए हुए। बलबीर—बलभद्रजी। हीर—हीरा। सीर—वह भूमि जो जमींदार की निजी होती है, जिस पर पूर्ण अधिकार होता है।

५—भसम गोला—विभूति, भस्म। शिखर—पर्वत का शृंग। गौरी—पार्वतीजी। बम भोला—भोलानाथ, शिवजी।

६—काइ करन को—क्या करने के लिये अर्थात् उनका कर्तव्य क्या है? अविनाशी—जो नश्वर नहीं है, परमेश्वर।

७—लौ—प्रेम, लगन। धरयो—धारण किया। बैरागी—विरक्त साधु। मोहन—मोहक, आकर्षक। डोरि कटि बाँधी—साधु होने पर कोपीन बाँधने के लिये कमर की डोरी। श्याम किशोर—श्याम वर्ण के श्रीकृष्ण। नवगोरा—गौरांग महाप्रभु। कोपीन—कौपीन, लँगोटी, चीर। रसना—जिह्वा। दास भक्त—श्रीचैतन्य महाप्रभु के छ प्रधान शिष्यों में से एक श्रीरघुनाथदास गोस्वामी से तात्पर्य है।

८. बाँके बिहारी—श्रीकृष्ण, वृंदावन में बाँकेबिहारीलालजी का

मंदिर प्रसिद्ध है। मोर मुगट—मोरपंख का मुकुट। कुंडल अलकाकारी को—लटकते हुए काले अलकों या लटों के कुंडल। अधर—ओंठ। रीझ रिझावै—स्वयं रीझते हुए रिझाते हैं, मोहित होते मोहते हैं।

९—निपट—अत्यंत, बहुत। बंकट—टेढ़ी, त्रिभंगी। छवि—सौंदर्य, शोभा। मदन-मोहन—कामदेव को भी मोह लेनेवाले श्रीकृष्ण, वृंदावन में मदनमोहनजी का मंदिर प्रसिद्ध है। पियूख—पीयूष, अमृत। न मटके—आँख नहीं झपकतीं, एकटक देखती रहती हैं। वारिज भवाँ—कमलरूपी भौंहें। अलक—बाल की लट। मनो···अटके—कमल तथा बाल की सुगंधि में मानों उलझ गए हैं। पाग—पगड़ी, साफा। लर—लड़ी, मोती आदि की पाग से लटकती हुई लड़ी। नागर नट—चतुर आकर्षक तात्पर्य श्रीकृष्ण से है, जिनका नटवर नाम ही पड़ गया है।

१०—जेताइ—जितना। दीसे—दिखलाई देता है। धरण-गगन-विच—पृथ्वी तथा आकाश के बीच में, दृश्य जगत। तेताइ—उतना। उठि जासी—उठ जायगा, नष्ट हो जायगा। कासी-करवत—काशी में एक स्थान है जहाँ पहिले आकर लोग अपने को ईश्वर के नाम पर बलि चढ़ा देते थे। देही—देह, शरीर। यो—यह। चहर की बाजी—पक्षियों का खेल, जो संध्या होते ही समाप्त हो जाता है। साँझ पड्याँ—संध्या होते। भगवा—गेरुआ रंग का वस्त्र। जुगत—युक्ति, योग का साधन। उलटि··· जासी—युक्ति के न जानने से उलटे पुनः जन्म लेना पड़ेगा अर्थात् मुक्ति नहीं मिलेगी। अरज—प्रार्थना। काटो जम की फाँसी—जन्म मृत्यु से मुक्त कर दो।

११—गुणा—गुणों को। अविकार भजन सूँ—भजन करने के कारण। अविस्वास—यदि विश्वास न हो। साखि—साक्षी, प्रमाण। जाको रचत—जिसे बनाते हुए। तरुण—युवा। रूप घना—अधिक सौंदर्य। मगना—मग्न, डूबा हुआ। गणना—गिनती।

१२—भाखत—कहते हैं, वर्णन करते हैं। जहान—संसार। नीच भीलनी—शबरी। सुनिए दीने कान—ध्यान देकर सुनिए।

१३—कठिन बनी है—भारी संकट आ पड़ा है। म्हाँरो—मेरा। कूण—कौन। धनी—स्वामी, संकट हरनेवाला। दुखिया कूँ···कीजो—प्राकृत जन के समान दीन दुखी समझकर देर मत लगाना प्रत्युत् अपने स्वभाव के अनुसार शीघ्रता करना। कीजो—कीजिए। बिरियाँ—समय, अवसर। और घनी है—अनेक अन्य अवसर हैं। दुसमन—शत्रु, माया, मोह आदि। हरख—हर्ष, प्रसन्नता। जमदूँ—यमराज। फौजाँ—सेना।

आन पड़ी है—घेर लिया है। मोटा—बड़ा। चरण···खड़ी है—आप ही की शरण में है।

१४—एकसार—समान, बराबर। हीरा पण—हीरा के प्रकृत गुण। जबही—जब, जभी। सरीखा—समान। जगतों—संसार की माया में पड़े हुए सांसारिक लोग। आवरे—आवृत, छद्म में। भगतों के आवरे हैं—भक्तों के रूप में छिपे हुए हैं। बोल—आक्षेप, व्यंग्य। दइये—दीजिए।

१५—काज सारे—काम पूरा किया। पवन वेगि—वायु के समान वेग से। प्रेम-भक्ति—प्रेम से उत्पन्न या युक्त भक्ति।

१६—अधम उधारण—पतितों का उद्धार करनेवाले। जग तारण—संसार को तारनेवाला। अरज गरज—प्रार्थना पूरी करने की इच्छा से। निवारण—दूर करनेवाला। द्रुपद-सुता—द्रौपदी। वधायो—बढ़ाया। मान-मद-मारण—अभिमान तथा उन्मत्तता को नष्ट करनेवाला। विदारण—फाड़नेवाला। रिखि-पतनी—अहिल्या। विडारण—नष्ट करनेवाले। बंदी—दासी। एती अवेरि—इतनी देर।

१७—बेड़ा—नावों का समूह। बेड़ा···पार—हमारी संकटों से भरी हुई स्थिति से रक्षा कीजिए। इण भव—इस संसार। संसा—संशय, शंका। सोग—शोक, दुःख। अष्ट कर्म—आठ कर्तव्य-कर्म। तलब—माँग, अवश्य करणीय। धार—प्रवाह। या संसार···धार—यह सृष्टि चौरासी लाख योनियों ही में बहती या घूमती रहती है। आवागवन—आना जाना, जन्म-मृत्यु। निवार—दूर करो।

१८—बिकट—भयंकर। सटके—चुपचाप चल दिए। खगराज—भगवान के वाहन गरुड़जी। अटके—रुके, ठहरे, अवरुद्ध गए। अनतहि—अन्य, दूसरा स्थान।

१९—पार लगैया—पार लगैंगे। बलभद्र जू के भैया—श्रीकृष्ण। बल गइया—बलि गई।

२०—रामरतन - राम नाम रूपी रत्न। खूटे—कम होता है। सवायो होत—बढ़ता है। जाले—जलावे। धरणी धरयो न समायो—भूमि पर रखने से उसमें समा नहीं जाता।

२१—खत—खाता, पाप-पुण्य का लेखा। कनक—सोना। इम्रत—अमृत। नटै—अस्वीकार करे। तनमन—शरीर तथा हृदय दोनों से। पटै—प्रसन्न करो।

२२ रावलो—आपका। बिरद—विरुद, प्रशंसा। रुड़ो—अच्छा, भला। पीजित पराये प्राण—दूसरे की स्तुति से आत्मा को कष्ट मिलता है

अर्थात् केवल आपकी स्तुति मुझे भली लगती है। जहान—संसार। बूड़त दियो छे जान—डूबते हुए को प्राण दिया। आन—दूसरे का।

२३—लेतौं—लेने से। लोकड़ियाँ—लोग, मनुष्यगण। लाजाँ—लज्जा से। पावलिया—पैर। झगड़ो थाय—झगड़ाई होतो हो। त्याँ—वहाँ। दौड़ीने—दौड़कर। मूकी ने—छोड़कर। भवैया—नाचनेवाला। बैसी रहे—बैठा रहेगा। जाम—याम, प्रहर। लांछर—कलंक। वाधुं—सारा, पूरा। ठाम—आश्रय।

२४—अरजी—प्रार्थना। थाँरी—तुम्हारी, आपकी। मरजी—मर्ज़ी, इच्छा। यौ—इस। सगा—पास का सबंधी। कुटुम कबेलो—परिवार-वाले। मतलब—स्वार्थ। गरजी—स्वार्थी, चाहनेवाले।

२५—सत्गुरु—सत्य गुरु, परमेश्वर, श्रीकृष्ण। निभाज्यो—निबाहना। थे—तुम, आप। छे—हो। ओगुण—अवगुण। म्हाँरूँ—मेरे। धीवे—धैर्य देते हैं, संतोष दिलाते हैं। पतीजे—विश्वास करता है। सुणाज्यो—सुनाना। रमता—घूमते फिरते। लगाज्यो—लगा देना।

२६—मनुआँ—मन। रँग में भीजे—उसी रंग में रंग जाना, उसी पर पूर्ण भक्ति करना।

२७—भीर—कष्ट, संकट। चीर—वस्त्र, साड़ी। नरहरि—नृसिंहजी। धीर—धैर्य।

२८—ललना—लालन, बालकों के लिए प्यार का शब्द। रजनी बीती—रात्रि समाप्त हो गई। कँगना—कंकण, कड़ा। शरण आयाँ—जो शरण में आ चुका है।

२९—थारी—तुम्हारी, अपनी। काँवरी—जलपान की पेटिका। हुँ—मैं। मेकजो—छोड़ा। मोहे—मुझको। खिजावें—चिढ़ावें। जाताँ—जाते हुए। जीनी—छोटी, महीन।

३०—कमल-दल-लोचना—हे कमल के पत्र से नेत्रवाले। नाथ्यो भुजग—कालिय नाग को श्रीकृष्ण भगवान ने डोरी से नाथा था, उसी से तात्पर्य है। पैठि—पैठ कर, डूब कर। पियाल—कालीदह, जमुना जी का दह अंश जिसमें कालिय नाग रहता था। निर्त—नृत्य।

३१—छिटकाई—छिटका दिया, हटा दिया। डगर—मार्ग, रास्ता। रारि—झगड़ा। बीर—सखी, सहेली।

३२—अनारी—नासमझ, अल्हड़। बैठी—बैठा हुआ है। गैल पड़्यो—रास्ते पड़ना, छेड़ छाड़ करना। छो—थी। ऊभी—ऊब गई, खड़ी रही। उघारी—नंगी। वारी—निछावर।

३३—चीत—मन, चित्त।

३४—गाँधु—बंधन। सत सुरनि ताननि की फाँसुरी—वंशी मानों सुरों तथा तानों की बीनी फँसाने की जाल है।

३५—नागर—चतुर। नेहरा—स्नेह, प्रेम। ब्यौहार—व्यवहार, कार्य कलाप। गृह-अँगना—घर का आँगन, घर। पारधि—व्याधा, अहेरी। बेधि दई—छेद डाला। जाएई—जानता है। सुभाइ—स्वभावतः, स्वभाव से।

३६—सैना—दृष्टि, संकेत। निहाल—प्रसन्न।

३७—कल्याण—एक राग का नाम। ठाढी भैयाँ—खड़ी हुई। भूल गैयाँ—भूल गई। छौने—बालक। कान पैयाँ—कान में पहुँची। बिरहो वाले कान्ह—विरहा गानेवाले श्रीकृष्ण। ध्याया—ध्यान किया। देह सों विदेह भैयाँ—शरीर का भान नहीं रह गया, कृष्ण-प्रेम में अपना आपा खो दिया। लागो पग ध्यान—मन श्रीकृष्ण-चरण में रम गया।

३८—बाँके—सुंदर सुसज्जित। आनके—आकर। आन तान—अंट संट, यह वह। पुरातन—पुरानी।

३९—रसिया—रसिक, प्रेमी। मृदुलासी—कोमल, मंद। झलासी—चमकती हुई। संचारी—घूमनेवाला।

४०—अनियारी—नुकीली, तिरछी। डारी—त्याग दिया। नवल—नया। नटनागर—चंचल चतुर, श्रीकृष्ण का विशेषण।

४१—जा—जिस। हा हा करना—हा हा खाना, शरण आना। तरस खाओ—सहानुभूति दिखलाओ, कृपा करो।

४२—गुजरिया—गूजर की स्त्री, मालिनी। छौना—बालक। सलोना—लावण्य सहित, सुंदर। सुघर—चतुर, सुंदर। रस लोना—लावण्य रस से युक्त, अति सुंदर।

४३—छकी है—अघाई हुई है, मत्त है। औरहि औरै बोलै—जो कहना चाहिए वह न कह कर और कुछ अंट संट कहती है। चेरी भई बिन मोले—बिना मूल्य की दासी।

४४—मन अटकी—मन में अटक गई। मुकुट लटक—मुकुट पहिरने से उत्पन्न मनोहर शोभा। खौर—तिलक, टीका। पद्म—कमल। गुंज-माल—श्वेत-लाल गुंजों की माला। तीरे—पास, तट। सुरत—स्मरण। छैयाँ—छाया, साया। मटुकी—हाँडी।

४५—बरसाना—व्रज का एक ग्राम। ईंडुरी—कपड़े या मिट्टी का गोलाकार मेंडरा, जिस पर कमोरा गगरा आदि रखा जाता है। हार-

शृंगार—आभूषण आदि। गलमाल—माला।

४६—मोर-मुकुट—मोर के पंख का मुकुट। मकराकृत—मगर की आकृति का। अरुन—लाल। राजत—शोभा पाती है। वैजंती-माल—विष्णु भगवान की वैजयंती माला। घंटिका—करधनी। भगतबछल—भक्तवत्सल।

४७—लोकलाज हारी—सांसारिक लज्जा या मर्यादा को खो दिया।

४८—जसुमति के लाल—यशोदा के पुत्र श्रीकृष्ण। कालिंदी—यमुना नदी। छाँहियाँ—छाया। दुवरवाँ—द्वार। बरजहु—रोको, मना करो। दुलरवा—प्रिय पुत्र।

४६—जदुबर—श्रीकृष्ण। पग धारो—लाए गए, वसुदेवजी कंस के भय से कृष्ण को जन्मते ही गोकुल में नंदजी के यहाँ पहुँचा गए थे। अधम उधारन हारी—पतितों को मुक्त करनेवाले। पूतना—बकी राक्षसी कृष्ण को मारने आकर मुक्त हो गई। जल डूबत—इंद्र के कोप करने से अति वृष्टि होने पर श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाकर उसकी छाया में ब्रज की रक्षा की थी।

५०—कुंडल की......मिलन आई—जब कान के कुंडलों की छाया गालों पर पड़ती है तब ऐसा ज्ञात होता है कि मानों मीन सरोवर को छोड़कर मकर से मिलने आई है। नेत्र की मीन से और कुंडल की मकर से उपमा देते हुए यह उत्प्रेक्षा की गई है। टौना—जादू, आकर्षण। अधर सधर—ऊपर व नीचे के दोनों ओठ। दामिनि—चपला, बिजली। चारु—सुंदर। ग्रीवा—गला। अनूप—अनुपम, जिसके समान दूसरा नहीं।

५१—इस पद का तथा ५०वें पद का भाव एक सा है पर तब भी पाठ भेद इतना अधिक है कि इसे अलग देना ही उचित जान पड़ा। सुधि—ध्यान, स्मरण। उलझि परीं—झगड़ने लगीं। किरीट—एक प्रकार का मुकुट।

५२—बहुरि सके नहि आय—लौट नहीं सके। रूँम रूँम नखसिख—एक एक रोम तथा सिर से पैर तक, सारे अंग प्रत्यंग। ललकि—पाने की उत्कट इच्छा से। हेली—हे अली, हे सखी, कौन। अटक—रोक, आदेश। पर हथ गये बिकाय—ये नेत्र मानों दूसरे के हाथ बिक गए हैं मेरे रहे ही नहीं। सब लई सीस चढ़ाय—सब अंगीकार किया, मान लिया।

५३—मो तन—मेरी ओर। हेरो—देखा। लखिकै—लखकर।

५४—सालति है—कसकती है, चुभती है। छकी—मस्त हुई। नालति है—धिक्कार है।

५५—बान परी—आदत हो गई, स्वभाव हो गया। अरी—अड़कर रह गई।—जीवनमूरि—जीवन को बनाए रखने की औषधि।

५६—निवरी—निवृत्त हुई, छुट्टी पाई।

५७—बिहाल—विकल, खराब हालत। गोरस—दुग्ध। व्याप्यो—व्याप्त हो गया, भर गया। नीके—अच्छी प्रकार। बिहारी—श्रीकृष्ण, विहार करनेवाले।

५६—बनवारी—श्रीकृष्ण। न्यारी—निराली।

६०—लाल—अत्यंत प्रिय, श्रीकृष्ण। पायल—छागल, पैजेब। झगरी—झगड़ा किया। सगरी—सब, बहुत। अलमस्त—उन्मत्त। सुधरी—सुधर गई, पवित्र हो गई।

६१—सागर—समुद्र अनत—अन्यत्र, दूसरे स्थान।

६२—डेरो—निवास-स्थान; नूर—प्रकाश तेज।

६४ कुसुमल—कुसुम के रंग का, लाल-पीत। केसरिया—केसर के रंग का। चीर-साड़ी। दरयाई—एक प्रकार का बहुमूल्य वस्त्र। लँगो—लहँगा। अंगिया—चोली, कुरती किसन—कृष्ण। ऊमी—उमंग के साथ।

६५—आनद-सुख-रासी—आनद तथा सुख के कोष अर्थात् देनेवाले। अरगजा—एक सुगंधि द्रव्य। सुवासी—सुगंधित की हुई। नवल—नया, सुंदर।

६६—क्रूर—कठोर, निर्दय। रई—रह गई। बिदारि—फटी। तई—तपी, जली।

६७—ओट—आड़। कथा—साधुओं के पहिरने का लंबा कुरता। तोपखाना—तोपों का समूह। पेसखाना—सेना या राजाओं की सवारी के कूच के पहिले जो भाग आगे भेजा जाता है, उसे पेशखाना कहते हैं। बागों—बाग़ आराम, उद्यान। हेत—संबंध, प्रेम। सुनाई गाय—गाकर कुल वृत्त सुना दिया।

६८—कुण—कौन। कागद—(कागज़) पत्र। साथी—मित्र, प्रेमी। वाला—(गुजराती हाला) प्रिय। राती—लाल। नीरज—कमल। पान—पका हुआ पान श्वेत-पीला पड़ जाता है। जिवड़ो—प्राण। डूब तिरयो हाथी—गजेंद्र डूबते हुए भी राम नाम लेते ही उबर गया। साँकड़ा—संकट में पड़ा हुआ। रो—का।

६९—भी—भी। साँवरा—श्याम कृष्ण। हार सिंगार—आभूषणों का धारण करना। भगवा वेश—गेरुआ वस्त्र पहिर कर सन्यासी वेश धारण करना। ढूंढ़ि—ढूँढ़ा। करम की रेख—कर्म में लिखा हुआ चिह्न अर्थात् लेख।

७०—वैरागिन—विरक्त स्त्री पर यहाँ विरहिणी से तात्पर्य है। भूषण वस्तर—आभूषण तथा वस्त्र। बिसरानो—भूल गया। गत—गति, अवस्था। पातपात''मिटी विरहिन की–सर्वत्र ढूँढ़ लेने पर विरहिणी को जब निश्चय हो गया कि वह व्रज में नहीं है प्रत्युत् द्वारिका में बस गए तब उसकी यह पीड़ा मिट गई कि अब उनके पुनर्मिलन की आशा है, अब केवल विरागिनी होकर ध्यानमात्र करना ही बच रहा है।

७१—माइड़ी—माता। माहिले—आंतरिक। धीहड़ी—पुत्री, बेटी। रैणज—निद्रा। गेली—हो गई। चौमास्याँ की बावड़ी—चातुर्मास, वर्षाकाल के जल से भरी हुई बावली। नाले—सोता। सुरंगा—लाल, सुंदर।

७२—परण गया—परिणय कर लिया। सोती—सुप्त, सोनेवाली। बिस्वा बीस—पूर्ण निश्चित, निस्संदेह। आल जंजाल—झंझटों का घर। हल्दी करी—विवाह के समय उबटन में हलदी मिला कर लगाया। जान—यान, सवारी, यहाँ बारात से तात्पर्य है। अचल सुहाग—अमिट सौभाग्य।

७३—थारे—तुम्हारे। आन—प्रण, प्रतिज्ञा। मने—मुझे। निहाल—अत्यंत प्रसन्न।

७४—ऊदाबाई—मीराबाई की ननद। दाग—धब्बा, कलंक। गुमाई—गँवाया, खो दिया। बड़ा घरा—उच्च कुल। हिंदवाणे सूरज—उदयपुर के महाराणाओं की एक पदवी है, सूर्यवंशीय होने से हिंदवाण अर्थात् हिंदुस्थान के सूर्य कहे जाते हैं। लारी—लार, साथ। मीराँ बात नहीं जग छानी—संसार ने मीरा की वस्तुस्थिति नहीं समझी। सत—सत्य। ने—को। सौगन—सौगंध, शपथ। भरतार—स्वामी।

७५—रूड़ी—सहज सुंदर। पावणा—पावन, पवित्र। चौबारयाँ—चौबारा, अटारी। चीतौड़—इस दुर्ग के नाम से महाराणा के उच्च वंश से तात्पर्य है। राजजी—राजा स्वामी। पीहर—मायका, नैहर। बोलण दो—बोलने दो। देखतड़ाँ ही—देखते ही। बासक—बासुकि, मारा पुराना सर्प। अमर''केलिया—किसी अमर राजा ने मुझे पृथ्वी पर दान दिया है। ऊभाछी—ऊब गया, असंतुष्ट हो गया।

निभावण—निर्वाह करनेवाला। लोप—मेटो, अस्वीकार करो। भीड़ी—कष्ट पड़ने पर रक्षा करनेवाला।

७६—गाल—कलंक, लांछन। ईडर गढ़—राजस्थान में एक राज्य है, जहाँ मीराबाई की ननद ब्याही हुई थी। ओलवा—उपालभ। निवार—छोड़ो, त्याग दो।

७७—पाटवी कुँवर—उदयपुर के राजघराने में युवराज को पाटवी राजकुमार कहते हैं, पट्ट या पाट राजसिंहासन को कहते हैं और उस पर बैठने का अधिकार जिसे वर्तमान नरेश के अनंतर हो उसे पाटवी राजकुमार कहा जाता है। सीसफूल—सिर का एक अलंकार। गुजारी—एक प्रकार का हार। नेवर—हाथ का अलकार जिसे जंजीरी भी कहते हैं। गारी—कलंक। छोह—पुत्री। मोसाली—माता की बहिन का घर।

७८—पण—अब। सरवरियाँ—सरोवर। पाल—तट, किनारा। सौंपड़े—काम करना। सामी—सामने। बिरंगी—विचित्र। तने—तुम्हें। पारखी—परीक्षक, समझनेवाला। सुरंग—लाल। पाँखड़ी—पंख, पर। बारखे—द्वार पर।

७९—साकट—शाक्त, दुष्ट। अठ सठ—अड़सठ, अनेक। थासे—होगा। अपग—पंगु, अंगहीन।

८०—घत्ताँ—तेज़, अधिक। घूम घुमाय—घुमटा आना। अमल—नशा। नौलख—नौ लख का। काँचो—कच्चा।

८१—अँचाय—पीकर।

८२—इव—इस प्रकार। हजारी—हज़ार प्रकार से, बढ़ बढ़ कर। इक सारी—एक समान। धनढ—धीर, असीम शक्तिमान। धणी—स्वामी। सुमरणी—माला। जोब—जो अब। दिलगीरी—दुःख, कष्ट। क्रोड़—करोड़। धमस—बजना। यारी—प्रेम, भक्ति। चरण अधारी—चरण ही का जिसे आधार या आश्रय है।

८३—रँगराती—प्रेम में रँगी हुई, प्रेम में मत्त। अविनासी—अविनाशी, ईश्वर। माती—मस्त।

८४—हजारी—अनेक प्रकार से बनाकर। गुज—गुंजा। इक सारी—एक समान। न्यारी—अलग।

८५—कुलनासी—कुल को डुबानेवाली, कलंक लगानेवाली।

८९—काल-ब्याल—काल रूपी सर्प। खारो—कुस्वादु, बुरा।

९०—तने—प्रति, ओर। आरोगी—पीना, खाना।

९१—थे—तुमने। बारा बाणी—चोखा, स्वच्छ। काण—कान्ति,

प्रतिष्ठा। गरक गयो—बिब गया, डूब गया। सनकारणी—तेज़ी से।

९२—क्यॉनें—क्यों। इसड़ा—इस प्रकार, ऐसे। कैर—करील। थाँरो—तुम्हारा। टीकी—टीका, तिलक।

९३—निंदो—प्रशंसा करो। साँकली—पतला, सकरा। अपूठी—अनभिज्ञ। बाबज—बातचीत। दीठी—देखा।

९४—गास्याँ—गाना। तिर'जास्याँ—तर जाऊँगी। देवल—मंदिर। प्यास्याँ—पीना। निरत करॉं—नृत्य करना। भौजल—भवसागर। सिरकै साटै—सिर पर। उमहड माड्यौ—क्रोध किया।

९५—सीसोद्या—सिसौदिया, महाराणा उदयपुर सीसोद ग्राम के होने से सीसोदिए कहलाते हैं। उणाँरो—उसी का। वेगाँ—वेग से। बिड़द—विरुद, प्रशंसा।

९६—थाँरो—अपना। निसाँण—झंडा। घुरास्याँ—फहराना। झाझ—जहाज़, जल-पोत।

९७—बाजीगर—जादू का खेल करनेवाला। सरवणा—श्रवण, कान। टोऱ्यो—टाल लिया, पी लिया। नेकी-बदी—भलाई-बुराई। निसान—डंका।

९९—नुगुणी—गुणों से हीन। सुगुणा—गुणों से युक्त। अवगुण-धारी—जिसमें दुर्गुण हों। चरणामृत को पण—चरणामृत को अवश्य पान करने की प्रतिज्ञा। पत—कानि, प्रतिष्ठा। अरज—प्रार्थना।

१००—बानि—आदत, स्वभाव। पूरबली—पूर्व की, पहिले की।

१०१—सलोनो—लावण्य युक्त। मेलिकै—डालकर। लूमि—लटकती हुई। वारणें—निछावर हुई।

१०२—सीप भऱ्यो—सीपी भर अर्थात् थोड़ा सा। टाँक—टंक, तीन चार माशा। मेड़तणी—मेड़ता की निवासिनी। सेल—माला। पीहर—नैहर, पित्रालय। रती—रत्ती, तनिक। सिसोद—सीसोदिया महाराणा। देवड़ी—दुलड़ी, हार। मोरों—मोल। साँच्यो—ऊँच्यो। मोकल्यो—भेजा। तारण—तारनेवाली। मुरक चली—मुड़कर चल दी। दरावण—शूरता, साहस। ख्वार—नष्ट, कलंकित। अमल—नशा।

१०३—हिरदै—हृदय। बहरो—अधिक। घणा—घना, बहुत। गामणी—गाँव गाव। मेह—बादल, जल। राती—अनुरक्त। माती—मत्त, मस्त। मोर—मौर, मुकुट। अमल—अधिकार। आदो—ओर। आरोर—आग, मद। अकरार—मर्यादाहीन। मोकल्या—भेजा। सोती थारी दान—उचित हो गयी है।

१०४—तूर—तुरही, बाजा। हतलेवा—पाणि-ग्रहण, हाथ पकड़ना। सिगार के—सजाकर। डाबो—डब्बा, गठरी। मेल्यो—मेजा। मुरड़ चली—कुपित होकर गई। रती—रत्ती, तनिक। दुहेलडी—वधूटी, प्रिया।

१०५—जोहड़—तालाब। हौज—बावली, जल से तात्पर्य। धार—सेना, वाहिनी। टाँडा—यात्रा के सामान को ले जाने के लिए पशुओं का समूह। पुष्कर—अजमेर के पास का पुष्कर क्षेत्र।

१०७ देसवलो—देश, राज्य। रँगरूडो—बिना रंग का। कूडो—असाधु, असज्जन। गहणा गाँठी—गहना कपड़ा। जूड़ो—वेणी, बाल।

१०८—गोमती—द्वारिका जी के पास समुद्र का एक भाग इस नाम से पुकारा जाता है। झालरि—एक प्रकार का बाजा। रास—राशि, ढेर।

१०९—राती—लाल। पीती—पीली। जग-जजाल—संसार के झगड़े। सगाई—विवाह।

११०—कदे—कभी।

१११—वारक पार—आरपार। गाँसी—तीर का नोक।

११२—परीति—प्रीति, प्रेम। माज्यो—मिले। नौमाह—नव मास।

११३—हेला दीजो—हाँक देना, पुकारना। गुमान—घमंड।

११४—यह पद सं० १०६ का पाठांतर मात्र है पर भूल से पुनः छप गया है। मेल्यौ—रखा, नियत किया। दाइ—दाय, स्वत्व, प्राप्य।

११५—धुतारा—धूर्त, कपटी। वेरिया—बेर, बार। सेलो—छोटा दुपट्टा, गाँती। कोल—कौल, प्रतिज्ञा। झोल—ढिलाई।

११६—हटकी—रोका, मना किया। चूकौ—भूल करो। घुरी—डूबी, भीजी। रसना—जिह्वा। मद की हस्ती—मत्त हाथी। गटकी—निगल गई, पी गई।

११७—जाँचूँगी—परीक्षा लूँगी। सुरत—स्मृति, याद।

११८—कुमति—बुरे विचार, दुर्बुद्धि। बाँची—बची, सुरक्षित हुई। जाँची—याचना की, माँगी।

११९—पंचरँग—पाँच रंगोंवाला। चोला—कपड़ा, साड़ी। झिरमिट—लुकने छिपने का खेल, छिपने का स्थान। पाती—पत्र चिट्ठी। धरण—पृथ्वी। अकासी—आकाश। सुरत—ईश्वर प्रति ध्यान। निरत—लीन होना। दिवला—दीप, दिया। अगम—समझ के परे।

घाणि—घान। सिंचायो—सींचा, डाला। मटी—मट्टी जिसपर मद खींचा जाता है। सैन लगाती—प्रेम करती।

१२२—छानी—छिपा हुआ। बाजूबंद—हाथ का एक आभूषण।

१२३—कुलनसी—कुल को नष्ट करनेवाली। दीप-आगरी—प्रकाश करनेवाली। नाम-रंगया—नाम रूपी प्रीतम। रसी—रस का आस्वादन लेनेवाली। खाँड—खाँड़, खड्ग।

१२४—वारणै—निछावर। भागण—भाग्यवान।

१२५—पावों—प्राप्त हो, मिलें। कसूमल—कुसुमी रंग का, लाल।

१२६—कानूड़ो—कान्ह, कृष्ण। झकझोर—चमक।

१२७—नंद को गुमानी—जिसपर नंद को गुमान है, कृष्ण। मनड़ो—मन, हृदय।

१२९—दामन—पल्ला, आश्रय। निहाल—प्रसन्न। रछपाल—रक्षक।

१३१—पारधि—व्याधा, अहेरी।

१३३—बरजी—रोकी, मना की हुई। चेतन—चैतन्य। सेती—से।

१३४—जासी—जाओगे। करवत लूँगी कासी—काशी-करवत में पहिले लोग ईश्वर के नामपर अपने को बलिदान कर देते थे।

१३५—गोहनै—साथ साथ। गुल—फूल।

१३६—मछियाँ—मछली। चारा—घास पात।

१३७—अटकी—अटक गई अर्थात् आसक्त हो गई। नट—नटवर श्रीकृष्ण। रमत—रमी हुई, प्रेम किया। रही न घर हटकी—रोकनेपर भी घर में नहीं रही।

१३८—रमियो—रमना, रहना। पुरबलो—पूर्व का, पहिले का।

१३९—जीमों—भोजन करो। बिजन—व्यञ्जन, खाद्य पदार्थ। पावो—भोजन करो। जन-प्रतिपाल—पालनेवाले। राजभोग—प्रातःकाल का भोग। आरोगो—भोजन करो। उपासी—उपासक, पूजक। निहाल—प्रसन्न।

१४०—बगसणहारा—बखशनेवाला, क्षमा करनेवाला।

१४१—गणगौरी—चैत्र कृष्ण तृतीया का गनगौर त्योहार।

१४२—परवीणा—प्रवीण, प्रौढ़।

१४३—जोय—संजोकर, बालकर। हेली—सखी। सुसक—सुसकते हुए, रोते हुए। बिरियाँ—समय।

१४३—सेली—दुपट्टा। म्हेली—डाल दिया, कर दिया। वाला-

वेली—विकलता । बिलमाए—फुसला लिया । वेली—वेलि, लता । दुहेली—दुखी, व्यथित ।

१४६—खारी—निस्वादु, बुरी । अँदेशा—शंका, भय । कंथ—कंत, पति । जर—ज्वर, ताप । मेहर—कृपा । तारी—उत्कट इच्छा ।

१४७—अरज—अर्ज, प्रार्थना । पाट पटोरी—रेशमी वस्त्र या साड़ी । डोरी—बंधन, आकर्षण । तमोली—पान ।

१५०—मना—मन । बिन—बीन, वीणा ।

१५४—दाँवन—दामन, आँचल । सावणियो—बादल । लूम रह्यो—छा रहा है, लटक रहा है । बलबीर—श्रीकृष्ण ।

१५५—म्हेल—महल । दामिण—बिजली ।

१५६—बहार—वसंत ऋतु ।

१५८—बिलमाई—बहला लिया है ।

१६२—ऐंडो—इतराता हुआ, टेढ़ा मेढ़ा । धमार—होली का गीत, धमाचौकड़ी ।

१६३—बगड़ पड़ोसण—बगल की पड़ोसिन । पोट—गठरी । निबारो—निवारण, दूर रहना ।

१६४—लँगर—नटखट, ढीठ । अनरीति—कुचाल ।

१६५—कायकूँ—किसलिये, क्यों । दीधो—दिया । जँयुवा—जाने में ।

१६६—सारो—काम, मतलब । पतियारो—विश्वास । परम पुरुष—परब्रह्म परमेश्वर । लहर—विष की लहर या वेग । कारो—काला सर्प ।

१६७—बोल—बोली, व्यंग्य ।

१६८—मधुवन—मथुरा नगर का बाहरी भाग, यहाँ मथुरा से तात्पर्य है ।

१६९—बाटड़ली—बाट, मार्ग । निहारी—देखती हुई । गाढ़ी—दृढ़, कठोर । नाधो—बीच में । रली—केलि, क्रीड़ा । लाडी—जिसपर विशेष लाड प्यार हो, प्रिय । आड़ी—तिरछी ।

१७०—पलक उघाड़ो—देखो, कृपादृष्टि करो । हाज़िर नाज़िर—आँखों के सामने उपस्थित । कद—कब । साजनियाँ—संबंधीगण । कड़ी—बुरी । सौ पर एक धड़ी—भारी बोझ में छोटा सा बाट ।

१७१—थाने—तुम्हें । मनमानी—पसंद आई । राज—प्रिय । विष लागे—अच्छी नहीं लगती, अप्रिय जान पड़ती है । चोलना—साधुओं का लंबा कुरता । छाछ मछोलना—निस्सार वस्तु को फेंटना ।

१७२—नैन लगे तब घूँघट कैसे—जब प्रेम हो गया तब उसकी

सजा केसी। नेकी-बदी—भलाई-बुराई। मन-हाथी—हाथी रूपी हृदय को। प्रगट निशान बजाय—स्पष्ट, डंके की चोट। धनी—प्रिय, स्वामी।

१७३—कठे—कहाँ। अठे—यहाँ। बसवो—बसना। काँई लाडू बँटे—क्या मुफ्त में मिठाल अर्थात् सुख मिलता है। पटे लीनी—पट्टा लिया। सुमिरौं सूँ—स्मरण करने से।

१७४—तमोला—तांबूल, पान। बिहावै—बितावे, व्यतीत करे। छिन माशा छिन तोला—क्षण क्षण में हालत बदलती रहती है। कपोला—गाल।

१७५—लाधो—पाया, मिल गए। जोई—देखा, ढूँढा। वाधो—व्याघात हुआ, बाधा पड़ी अर्थात् नहीं मिले। मही—मक्खन। घनेरो—बहुत। खावो—खाया। साधो—साधा, प्रयत्न किया।

१७६—आज्यो—आइए। खारा—निस्सार, नीरस। दुखियारा—दुःखी।

१७७—नायँ—नहीं। गुसाईं—स्वामी। सिरताज—मुकुट, सर्वस्व। किण—कहाँ। हिवड़ारो—हृदय के। साज—शृंगार, सब कुछ।

१७८—चाकर—सेवक, नौकर। रहसूँ—रहूँगी। बाग लगासूँ—वाटिका लगाऊँगी। पासूँ—पाऊँगी। गासूँ—गाऊँगी। चाकरी—सेवा कार्य का पारिश्रमिक, वेतन। सुमिरण—नाम जप। खरची—व्यय के लिए मिला धन। जागीरी—वेतन के बदले में मिली भूमि, जागीर। सरसी—भली, सरस। क्यारी—केदार, बगीचे में थोड़े थोड़े अंतर पर बने हुए मेंड़ों के बीच की भूमि। करण कूँ—करने के लिये। गहिर गँभीरा—अत्यंत गंभीर स्वभाव के। सदा रहो जी धीरा—हे मन धैर्य रखो। देहैं—देंगे। प्रेम नदी के तीरा—शुद्ध निश्छल प्रेम हो जाने पर।

१७९—वारी—निछावर, बलिहारी। कल न पड़त—सुख नहीं मिलता, पीड़ा होती है। रँग राते—प्रेम के फंदे में पड़ गए हो। तकसीर—कसूर, भूल, अपराध। भवजल—संसार-सागर।

१८०—उदक—जल। दादुर—मेंढक। पीनयत है—पीन, मोटा बनाता है। बिसरै—बिछुड़ जाय। ज्यों काठ घुन खाई—जिस प्रकार घुन के लगने से काठ सत्त्वहीन हो जाता है। औषध मूल न संचरै—दवा काम नहीं करती।

१८१—सइयाँ—सखियो। काठ—कठोर, काठ सा कठिन। अजहूँ—आज तक, अब तक। बचन—प्रतिज्ञा, वादा। कैसे करि—किस प्रकार। फाटत हियो—हृदय फट रहा है।

१८२—जोय—संजोकर, बालकर। सिसक सिसक—रो रोकर। हिवड़ो—हृदय। बिरियाँ—समय, अवसर। होसी—होगी।

१८३—नींदलड़ी—निद्रा। दिवानी—पागल। बीती सोइ जाने—जिसने इस प्रकार का विरह कष्ट उठाया है वही इसे जान सकता है। मरण''हाथ—हमारा मरना जीना उन्हींके हाथ में है।

१८४—राम की दिवानी—राम के प्रेम में पागल। शेषनाग पै सेज पिया की—विष्णु भगवान क्षीरसागर में शेषनाग की शैया बनाकर उसी पर रहते हैं, जिनके अवतार श्रीकृष्णजी हैं। दरद—पीड़ा, विरह-कष्ट।

१८५—सोवत ही—सोती थी। पलका—पलंग। पलक लगी—सोते ही। मन के भाये—मनचाहा, इच्छानुसार। देण कूँ—देने को। सूति गमाये—सोकर खो दिया।

१८६—ना सरै—काम नहीं चलेगा। कमठ—कच्छप, कछुआ। अगिन—अग्नि, प्रेम की ज्वाला। कसर मिटि जाई—जो कुछ कमी है वह सब पूरी हो जायगी। देखिए पद सं० १८०

१८७—डाल''फाँसी—मोहन यह प्रेम का फंदा गले में डालकर चला गया। अटाली—आवाद, घर। मेहुडा—मेघ, बादल। जसी—जैसे, मानों। गाँसी—लोहे की नोक। आँबुवा—आम। उदासी—विरक्त, उदासीन। थारी भई हाँसी—तुम्हारे लिये तो यह खेल है।

१८८—ज्यूँ जाण्यो त्यूँ—जैसी इच्छा हो वैसे। छीजै—क्रमशः नष्ट होना।

१८९—नेहड़ा, स्नेह, प्रेम। सँगाती—साथी, प्रिय। बाती बराय—बत्ती जलाकर, आग लगाकर। छो—हो।

१९०—पेख—भेंट। अवधि—वादा, समय। अजूँ—आज भी। पंडर—श्वेत।

१९१—मोतियन की लड़ पोवै—आँसुओं की लड़ी पिरो रही है, रोती है। बिहानी—बीत गई।

१९२—म्हासूँ—मुझ से। पातों—पत्ते, पान। पिंड रोग—पाँडु रोग जिसमें रोगी पीला पड़ जाता है। छाने—छिपाकर। लाँघण—लंघन, उपवास। जोग—योग, निमित्त। बावळ—बावा। करक—कसक, पीड़ा, हड्डी। दाधी—जलाई हुई। दारू—दवा। मूँदडो—मुँदरी, अँगूठी। रह रह—ठहर, चुप रह। साम्हले—सुन ले। लिण—क्षणमात्र। मंदिर—घर में। आँगणे—आँगन में। जाँ देसाँ—जिन देशों में, जहाँ।

१९३—हेरी—एरी, अरी। दरद—प्रेम की पीड़ा। दिवाणी—

दीवानी, पगली। घायल—जिसे घाव लगा हो, व्यथित। गति—दशा, हालत। जिण लाई होय—जिसने वह पीड़ा लगाई हो। जौहरी—रत्नों का व्यापारी, रत्नों का पारखी। जौहर—जवाहिर, रत्न, गुणी। सेज—शैया। गगन-मंडल—आकाश, शून्य वातावरण। जद—जब।

१९४—दरस—दर्शन। जब के—जिस समय से। सबद सुणत—नाम सुनते ही, स्मरण आते ही। काहूँ—किससे। पेन—ठीक ठीक। पाट गई करवत—आरी चल गई अर्थात्—अत्यंत पीड़ा हुई। कल न परत—शांति नहीं मिलती। छमासी—छ महीने के समान लंबी। दुख-मेटण—पीड़ा दूर करने को। देण—देने को।

१९५—आवदे—सुहाता, रहा जाता। मोय—मुझसे, मुझे। तुम हो...होय—तुम्हीं हमारे प्राण हो तब तुम्हारे बिना मेरा जीवन कैसे रहेगा। धान—चावल, अन्न। गमाइयो—गँवाया, बिताया, खोया। झूरताँ—विरह-कष्ट से सूखते हुए। डगर बुहारूँ—मार्ग स्वच्छ करती हूँ। ऊभी—ऊब गई।

१९६—कै—या तो। कहुँ—कहीं, किसी स्थान पर। गैल—मार्ग, रास्ता। भुलावना—भूल गए। सँतावना—सताने, कष्ट देने।

१९७—वेर वेर—बार बार। टेरहूँ—पुकारती हूँ। अहे—अजी। पंछी दुख होई—पक्षियों को कष्ट होता है। असाढ़ाँ—आषाढ़ महीने में। कुरलाहे—कलरव करेगा। चात्रग—चातक। घन चात्रग सोई हो—उसी प्रकार बादल को देखकर चातक मधुर रव करेगा। झड़ लागियो—वर्षा की झड़ी लग गई है। तीजाँ—श्रावण शुक्ला तृतीया का त्योहार। भादरवै—भाद्रपद, भादों महीना। दूरी जिन मेले हो—परस्पर में दूरी मत डालो अर्थात् विरह दूर कर मिलो। आसोजाँ—आश्विन, कुँआर में। सीप...झेलती—सीप स्वाति नक्षत्र ही की वर्षा का जलबिंदु ग्रहण करती है। देव कातिग में पूजहे—कार्तिक महीने में देवोत्थान एकादशी को विष्णुदेवकी पूजा होगी। मेरे...हो—मेरे देव तुम्हीं हो अतः पूजा कराने के लिए आ जाना। मगसर—मार्गशीर्ष, अगहन। सम्हालो—शीघ्र आकर मेरी रक्षा करो, मुझे सँभालो। महीं—में। घणों—बहुत, अधिक। न्हालो—नहा लो। माह—माघ। फागाँ—गान, होली के गीत। फागाँ खेलहैं—फाग खेलेंगे। बगुराय—उड़ावत—कौए को उड़ाकर शकुन देखना कि प्रिय पति। घरि—घर। माँहिने—में,

भीतर। तपत—ताप, जलन। बिहावै—बीत जाती है। बिलम—बिलंब, देर।

१९९—हरि हू—हरि प्रियतम ने भी। न बूझी बात—मेरी दशा न पूछी और न समझी। पिंड—शरीर। पाट—द्वार, घूंघट। साँझ भई परभात—संध्या से सवेरा हो गया। अबोलणाँ जुग बीतण लागो—न बोलने का युग ही बीतने लगा, बिना बोले युग का युग ही बीत चला। कुसलात—क्षेम कुशल, आनंद। आवण—आने को। निरास—निराश होकर। सुपन—स्वप्न। उघड़ आया—खुल गया। सारूँ—फाड़ूँ। राती—अनुरक्त।

२००—रह्योह—रहा ही। आस—आशा।

२०१—जीवण—प्राण। धारणा—धारण करना, लेना। डार—डालकर, त्यागकर। बार—वारि, जल। धार—अस्त्र का तेज़ किनारा।

२०२—जोऊँ थाँरी वाट—तुम्हारा मार्ग देखती हूँ, प्रतीक्षा कर रही हूँ'। नेक—तनिक, थोड़ा। कपाट—किवाड़, द्वार, यहाँ पलक से तात्पर्य है। उचाट—उदासीनता, घबड़ाहट। निराट—निराश्र, आश्रयहीन।

२०३—रसभरि टेर—मधुर संबोधन, मीठी बात। नेह···चढ़ाय—प्रेम की नौकापर बैठा कर। मधुपुरी—मथुरा।

२०४—पितवना—देखना। दोर—दौड़, पहुँच, शक्ति की सीमा। हम सी—हमारे ऐसी। अरज—प्रार्थना। देस्यूँ—दूँगी। अँकोर—अँकवार, भेंट।

२०५—जजमान—यजमान, यज्ञ करनेवाला, दान देनेवाला। कृष्ण करो जजमान—भाव यह है कि हे कृष्ण तुम पुरोधा बनो और हमें अपना यजमान बना लो अर्थात् पूज्य-पूजक भाव स्थापित करो। साखी—साक्षी, प्रमाण।

२०६—नैणाँ—नेत्र। नेरा—पास। निरखण—निरखना, देखना। घणेरो—अत्यधिक। सवेरा—शीघ्र, जल्दी। तपन—जलन।

२०७—तरसावो—वाँछित वस्तु न देकर व्यथित करना। बिथा—व्यथा, कष्ट। अंतर—भीतर।

२०८—जिवूँ—जीऊँ। ओखद—औषधि, दवा। मूल—जड़ी। संचरै—असर करती है। बौराइ—पागलपन। कमठ—कछुआ। दादुर—मेंढक। मुरली धुनि पाई—बंशी का शब्द सुनकर। सुखदाइ—सुख को देनेवाले।

२०९—नसानी—नष्ट हो गई। बिहानी—बीत गई। मानी—

स्वीकार किया, पसंद किया। कल—चैन, आराम। ठानो—निश्चय किया। छीन—क्षीण, दुर्बल। पीर—व्यथा, दुःख। सुध बुध—चेतनता, बुद्धि। बिसरानी—भूल गई।

२१०—चितारयो—चेता, ठाना। सूती छी—सोई हुई थी। दाझ्या—जले हुए। लूण—लवण, निमक। हिवडे—हृदय में। करवत सारयो—आरे से चीर डाला। सारयो—फाड़ा।

२११—पिव की वाणी—पी पी का शब्द। पावेली—पावेगी। रालेसी—डालेगी। कालर—काला। मेला—मिला। थारी—तुम्हारी। सोवनी—सुवर्ण की, सोने की। धान न खाय—भोजन नहीं करती।

२१२—रस की बतियाँ—प्रेमालाप, प्रेमपूर्ण बातें। हम से रहे चित चोरी—हम से चित्त चुराए रहते हो। शरणागत—शरण में आई हुई हूँ।

२१३—आकुल व्याकुल—अत्यंत घबराई हुई। कथत—बोलते हुए। तपन—ताप, जलन। परी तुम्हारे पाय—तुम्हारे चरणों में पड़ी हुई हूँ।

२१४—आज्यो—आ जाओ। बारी बैस—थोड़ी अवस्था। कौल—प्रतिज्ञा, वचन। आदि की—आरंभ ही से। सँदेस—समाचार लेना-देना तात्पर्य परिचय से है। हुइ—होकर। टेरूँ—पुकारती फिरी। तेरा न पाया भेस—तुम्हारा रहस्य न मालूम हुआ। सुरत—ध्यान, स्मरण। सनेस—परिचय, प्रेम।

२१५—हूँ—मैं। जन—दास, दासी। अवधि बदीती—समय दिया था, मीआद दी थी। दुतियन सों—दूतियों से।

२१६—मिठ बोला—मधुर भाषी, मीठा बोलनेवाला। थाँहीं—तुम्हारे ही। आया—आने से। निसंक—निश्शंक, शंका रहित होकर। रहेला—रहेगा, होगा। मोहेला—प्रेम। आतुर—अधीर, व्यग्र। बिलम—विलंब, देर। तमोला—पान। कल—चैन, सुख। दिल की घुंडी—हृदय की छिपी बात, मन का रहस्य।

२१७—काठ—काष्ठ के समान कठोर। वचन—प्रतिज्ञा।

२१८—वेगाँ—शीघ्र, जल्दी। आदि अंत रा—अथ से इति तक, अर्थात् जीवन भर। यार—प्रेमी, प्रिय। लाज्यो—लाना, देना। मनशाँ—मन से। नजरि परै—देखने पर। सुरति—प्रेम। बीछरियाँ—बिछुड़े हुए। दिखाज्यो—दिखलाना। रखाज्यो—रखना। तुलाज्यो—तौलाना, ध्यान देना। बिरद लजाज्यो—दीन दयाल कहे जाने के अपने विरद

को लज्जित करना। बावरियाँ—विश्वास। उणवात—अनुमान। खरो अनेसा—सच्ची शंका।

२१९—वाँण—आदत, स्वभाव। दाँवन—दामन, पल्ला, यहाँ शरण से तात्पर्य है।

२२१—दिल—हृदय में। बोल—व्यंग्यपूर्ण बात।

२२४—ठारी—ठाढ़ी, खड़ी।

२२५—बाँहलड़ी—बाँह, हाथ। थे—तुम। निभावण—निर्वाह करनेवाले।

२२६—हिया—हृदय। आरति—विरह-कष्ट। विकार-सागर—दुर्गुणों का समुद्र। बेरी—बेड़ा, नाव। नेरी—पास।

२२८—लुभाणी—लुब्ध, लुभा गई। तिरता—तरते हुए। पाहण—पत्थर। सुकिरत—सुकृत, पुण्य। कुमाणी—कमाया, किया। कीर—तोता। बसाणी—बस गई। कुंजर—हाथी। अवधि—अंतकाल। छूटानी—नष्ट हो गया, निकल गया। पसु-जूण—पशु-योनि। परतीति—प्रतीति, विश्वास। रावली—आपकी।

२२९—धीजै—धैर्य दिलाता है। पतीजै—विश्वास करता है।

२३०—म्हारे···आज्यो राज—मेरे घर होते हुए आप आइएगा। टाला दे जाज्यो—टाल जाना, बहाने से न आना। सिर···विराज—आदर से सदा हृदयस्थ रखती हूँ। सिरताज—मुकुट, सर्वस्व। पावणड़ा—अतिथि, पाहुना। छाँ—हैं। घणो री—अधिक, बहुत। गरिबनिवाज—दीनों के प्रतिपालक। पाज—ढेर, राशि।

२३१—तपत—ज्वाला, ताप। खूब्री—अच्छापन। जिस लागी—जिसे विरह का कष्ट हो। जिन लाई—जिसका विरह हो, जिसने विरह-ताप लगाया हो। सोखे—सुख देने पर।

२३२—काईं—क्या। वाल्हा—प्यारा। निवारी—दूर की जा सकती। जोवते—देखते हुए। मोती चौक पुराऊँ—मोतियों से आँगन में चौकोर चित्र पूरना या सजाना। सगपण—सगापन, संबंध। जुग सूँ—दूसरों से नहीं। न्यारी—विलग।

२३३—लारों—साथ, पीछे। कलोल—खिलवाड़। अनमोले—अमूल्य धन, प्रिय।

२३४—राधावर—श्रीकृष्ण। सिरताज—सिरमौर, अग्रणी।

२३५—संत—सज्जन।

२३६—जोगिया—योगी, महायोगी श्रीकृष्ण। ने—दे। आदेस—

संदेश, समाचार। कंथा—साधुओं का लंबा कुरता। मुद्रा—योगियों के कान में पहिरने का आभरण। भेष—साधु बाना ग्रहण करना। खोष—खोलड़ा शरीर। तिनका तोष—संबंध त्याग कर।

२३७—नाह—नहीं। प्रतिपाल—कृपा, दया। रावलिया—रावल या प्रिय की। पीली पड़ी······वेस—युवावस्था ही में पीली पड़ गई। पेस—भेंट, समर्पण।

२३८—जोऊँ बाट—मार्ग देखती हूँ। दुहेलो—दुर्भेद्य, कठिन। आडा—टेढ़ामेढ़ा। औघट—अटपटा, विकट। रम गया - बहल गया। भोली—सरल स्वभाव की, सीधी। अंतरि—भीतर, हृदय में। गुमायो—खो दिया। आरति—विरह की पीड़ा।

२३९—नातरि—नहीं तो। झूरै—पीड़ा से सूख रहा है। पंडर—पीला। पलट्या—बदल गया।

२४०—स—से। आदेश—निवेदन। रावल—प्रिय। विलमाइ—बहलाकर। वेहाल—विकल। बीछड़ियाँ—बिछुड़ने से। दूभर—कठोर। बेरी—बार। देह फेरी—फेरा दो, आओ।

२४१—चेरी—दासी। पैंडा—मार्ग। गैल—रास्ता। जोत—ज्योति, आत्मा।

२४२—सेली—साधुओं का कुरता। ग्रिह—गृह, घर।

२४३—क्रियाँ—करने से। मित—मित्र। मोह—मुझको।

२४४—जब का··संदेस—बिछुड़ने के अनतर न फिर मिले और न समाचार ही दिया। खोर—क्षौर, मुंडन। अनेस, दुविधा, आशंका।

२४५—प्रीतड़ी—प्रीति, प्रेम। रो—का। जेज करत—देर करता है। चँपली—चंपा, चमेली। हिवड़ा—हृदय।

२४७—धुतारा—धूर्त, कपटी। एक रसूँ—एक रस, एक चाल से। विदीत—विदित, प्रकट। गुह्यियाँ—गूढ़ या रहस्यमय बातें। सदन—गृह, आकर। ऊभी—व्याकुल होकर। जोऊँ—देखती हूँ। सेली—योगियों का वस्त्र। नाद—शृंगी बाजा। बटवो—कपड़े का बटुवा। अजूँ—अब। मुनी—योगी। चढ़ती वैस—उठती अवस्था, यौवन। अणियाले—नोकदार। बिन मोल—बिना मूल्य के।

२४८—कुसी—खुशी, प्रसन्नता।

२४९—जोगीड़ा—योगी। अलख—अप्रत्यक्ष ईश्वर का स्मरण। धूणी—तपस्या करने के लिए जली अग्नि। सबद—ईश्वरी ध्वनि।

२५०—मरम—मर्म, रहस्य। आसण माँडि—आसन मार कर या जगाकर। हाजरियो—ध्यान-वदना के लिए माला।

२५१—आवत आस्याँ सामा—आने पर शांति मिलेगी। मिलियाँ—मिलने पर। सरैं—पूर्ण होते हैं। मीराँ के मन ओर न माने—मीराँ का मन अन्य कुछ नहीं मानता या चाहता।

२५२—जाँचूँगी—परीक्षा लेकर पता लगाऊँगी। घँघरा—घाँघरा। ओढ़नी—एक वस्त्र। फाछूँगी—पहरूंगा।

२५३—रमियो—बस गया है। बिरह-पिंजर—बिरह के कारण हुआ पीत वर्ण। बाढ़—बाढ़, अधिक। हुलसाऊँ—प्रसन्न करूँ, बहलाऊँ। सजूँ—सजाऊँ। दूर गमाऊँ—दूर कर दूँ, नष्ट करूँ। सुरत—स्मरण, जप। डाको—डंका। मोरचंग—एक प्रकार का बाजा। अमरापुर—अमरों का स्थान, गोलोक।

२५४—तारन—तारने के लिए। लव—प्रेम, चाह। कुरँग—हरिण।

२५५—हिवड़ो—हृदय। कुण—कौन। कुबुध को भाँडो—कुबुद्धि का पतंन। ठाणे—ठानता है, करता है। चौराशी—जीवन की चोरासी लाख योनि। परम पद—मुक्ति।

२५६—राम—यहाँ श्रीकृष्ण से तात्पर्य है। फूलड़ियाँ—फटने के दाग, बिवाई। उभाणे—उघाड़े, नंगे। चलतैं—चलने से। बालपणे—बाल्यकाल। मिंत—मित्र, संगी। ताँदुल—तंदुल, चावल। पसे—एक अंजुलि का आधा, पसर। टपरिया—झोपड़ी, कुटी। लाल—माणिक। जड़े—जड़े हुए। द्वार बिच—द्वार में। हसती—हाथी।

२५७—दुखावे—पीड़ित कर स्वस्थ बैठने नहीं देती, व्यथित कर घुमाती है। जोत—ज्योति, प्रकाश। मँदिर—गृह, घर। दाय—बराबरी, क्रम। अलूणी—अलोनी, फीकी। बिहावे—बीत जाती है। ऊलर—छा जाना। काया—शरीर। लहर लहर—प्रत्येक लहर पर, सर्प का विष चढ़ना। बतलावे—बात करे।

२५८—आरति—आर्ति, पीड़ा। तलफत—व्याकुल होकर। कल—शांति, चैन। भुवंग—भुजंग, सर्प। हलाहल—कड़ा विष। लागी—साथ, वही। उमँग—चाह, इच्छा।

२५९—कुसुम-सर—कामदेव, आकर्षक। कंचन—सुवर्ण, सोना।

२६०—झुक बाती—झगड़े की बात। कल—धैर्य, शांति। हियो फटत मोरी छाती—वक्षस्थल के भीतर मेरा हृदय फटता है।

२६१—रमइया—राम, कृष्ण। तरस—व्याकुल होकर।

२६२—ओलूँ—याद, स्मरण। आवण—आने को। लगनि—निष्ठा, प्रेम।

२६३—मिलण रो—मिलने का। घणो—अत्यधिक। उमावो—उमंग। वाटड़ियां—मार्ग। जक—चैन, आराम। फाँसड़ियाँ—फाँसी। दासड़ियाँ—दासी। नामि न बैठे—पेट के भीतर नहीं जाती। पासड़ियाँ—पास। आँटड़ियाँ—आँट गाँठ, ऐंठ। आसड़ियाँ—आशा।

२६४—उमरण-सुमरण—ध्यान करना, स्मरण। निरत—नृत्य।

२६५—दिवानी—प्रेम में पागल। लशकर—सेना। साहेब—स्वामी। कोरा घड़ा—स्वच्छ नया घट। निर्वानी—मुक्त।

२६६—बिसरानी—भूल गई। मोहिं—मुझसे। सारँगपानी—विष्णु भगवान, शारंग धनुष धारण करनेवाले।

२६८—रमता—भ्रमण करनेवाला। अतीत—एक प्रकार के साधु। मॉड—लगाकर। अडिग—स्थिर, अचंचल। आव—आते हुए। जात—जाते हुए। चीत—चित्त, मन।

२६९—थाँरे रंग राती—तुम्हीं में अनुरक्त हूँ। गूँज करूँ—प्रतिध्वनित करती रहती हूँ। चूवा—एक सुगंधि-द्रव्य के रंग का। रमवा—खेलने। गलबाटी—गले मिलकर। भठी—भट्टी, जिस पर मदिरा उतारी जाती है। छकी—मत्त, पूरे नशे में। सुरत—स्मरण। निरत—लीनता। पूरत—रूई की बत्ती बनाती हूँ। आगम—अगम्य, अज्ञेय। घाणि—घान, कोल्हू के पेरने के लिए जितनी वस्तु एक बार डाली जाय। पीहरिये—मायका। लाती—लगाती।

२७०—हेली—हे सखी। लगनी—लगन का, लीनता का। बहार—बसंत ऋतु, यौवनकाल। वरी—वरण किया। चूड़ो—चूड़ी, सौभाग्य-चिन्ह। सुरमो—सुरमा, काजल। सार—लगाकर। दार—स्त्री।

२७१—बाँहड़ली—बाँह, हाथ। थे—तुम। निभावण—निबाहनेवाले। म्हाँ—मुझ। बहो—उठाओ।

२७२—सतगुरु—सत्यगुरु, परमेश्वर, श्रीकृष्ण। सीर—निज की भूमि। बुवाज्यो—खेती करा देना। बीछड़ियाँ—बिछुड़कर। कुरलाऊँ—करुण शब्द करती हूँ। बाघण—बाघिन, शेरनी। खीन—क्षीण, खिन्न। ऊगो भाण—उगा हुआ सूर्य। करोला—करोगे। धरोला—धरोगे।

२७३—बिरह-माल—बिरह रूपी माला। जँजीर—पाँव, सिकड़ी, बेड़ी। पीर—पीड़ा।

२७४—कछुवै—कुछ भी। जग-माया—संसार के सभी कार्य। तरनन—तरने के लिए, पार करने को।

२७५—पंगा—पंगु, लूँला। रूम—रोम। जस्या—जैसा।

२७६—दीदार—मुख। अंसरी—अंश, भाग।

२७७—मनमानी—अपने मन की। सुरत सैल असमानी—स्मरण का आकाशगामी सैल सपाटा, ईश्वर भजन। वा घर की—उस गृह की, ईश्वर की। सालत—कष्ट देती है। फसक—टीस। कसकानी—टीस उठती है। बिहानी—व्यतीत हो गई। भेदी—रहस्य को जाननेवाला। पिछानी—पहचाननेवाला। फेरी—की। भरमो—भटकूँ। खानी—किसी ओर। सहदानी—चिह्न, निशानी। खाक—धूलि। खलक—संसार।

२७८—मनुवाँ—मन। कबीला—स्त्री, पत्नी।

२७९—जाज्यो—जाना। बूझि लीज्यो—पूछ लेना।

२८०—नाम-रतन-धन—नाम रूपी रत्न। अमोलक—जिसका कोई मूल्य नहीं आँका जा सकता। खूटै—समाप्त होता। सत—सत्य। खेवटिया—केवट, खेनेवाला।

२८१—भीतर—अंतर में। चरणजनाँ—भक्तों के चरणों की।

२८२—न्याती—संबंध, नाता। कुचाली—कुमार्ग पर चलनेवाला। मदमाँतो—मत्त, मस्त। राती—लाल, अनुरक्त।

२८३—खुमारी—सोने या नशा उतरने पर जो थकावट होती है। मेहड़ा—मेघ, बादल। सारी—सारी, सब। रिमझिम···सारी हो—प्रेम रूपी बादल के बरसने से सारा शरीर प्रेममय हो गया। भरम-किवारी—माया या अज्ञान का द्वार। घट—शरीर। न्यारी—अलग, निर्लिप्त। दो पग जोऊँ ज्ञान का—ज्ञान मार्ग का दो पग देखती हूँ। अगम-अटारी—अगम्य अनंतरूपी ऊँचे गृह पर। इमरत—अमृत।

२८४—गली—मार्ग। चारों—चारों ओर की, सर्वत्र की। रपटीली जिस पर पैर फिसले। ठहराय—टिकता। झीणो—सँकरा, सूक्ष्म। सुरत—स्मरण, ध्यान। झकोला—झोंका। पहरा—रक्षा के लिए नियुक्त सैनिक। पैंड—मार्ग। बटमार—डाकू, लुटेरा। जुगन—अनेक युग, बहुत दिनों से।

२८५—चाख चाख—चीखकर कि मीठे हैं या नहीं। भीलणी—शबरी, भिल्लिनि। अचारवती—अच्छे आचारवाली। रती—रत्ती, थोड़ा। कुचालणी—कुमार्गगामिनी। झूठे—जूठे, चीखे हुए। प्रतीति—ज्ञान,

विश्वास। रसीलणी—रस को जाननेवाली। विमाण—स्वर्ग से आनेवाले विमान। हेत—प्रेम, भक्ति।

२८६—जोशी—ज्योतिषी। होशी—होगा।

२८७—जोसीड़ा—ज्योतिषी। जीव—भक्त प्राणी। पाँच सखी—पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ। परसिकै—छूकर, पाकर। ठामूँ ठाम—सर्वत्र। भवन गवन कियो—घर में आए।

२८८—साजन—प्रिय। जोवती—प्रतीक्षा करती, मार्ग देखती। आरति—आर्ता। सनेसड़ा—संदेश, समाचार। निवाजूँ—अनुग्रह मानती हूँ। रली बधावणाँ—बधावा बधा। आणँद—आनंद, प्रसन्नता। मावै—समाता। हरिसागर—हरि रूपी समुद्र। नेहरो—स्नेह, प्रेम। नैणाँ बँध्या सनेह—नेत्र प्रेम से बँधे हुए हैं। दूधाँ वूठा मेह—दूध से भरा हुआ मेघ।

२८९—ओलगिया—प्रवासी, परदेश गया हुआ। हिल-मिल—मिल कर। यूँ—उसी प्रकार। भौ का दरद—सांसारिक पीड़ा। कमोदणि—कुमुदिनी, कोईं। काया—शरीर। दुख-दुँद—कष्ट का द्वंद।

२९०—रावरी—अपनी। पतिवरता—पतिव्रता, एकनिष्ठ। पतीज्यौ—विश्वास किया।

२९१—वनज—कमल। नैनन…साहिब पाऊँ—याद मैं स्वामी को पाऊँ तो उन्हें नेत्र-कमलों में बसाऊँ। पलक न लाऊँ—पलक नहीं लगाती। त्रिकुटी महल—दोनों भौंहों के बीच के कुछ ऊपर का स्थान। झाँकी—दर्शन, ध्यान। सुन्न महल—ब्रह्मरंध्र। सुरत—समाधि, ध्यान।

२९२—मिलण—मिलन, मिलाना। सजना—साजन, प्रियतम। अँगना—आँगन में आकर। अभागण—अभागिनी। कंथा—विरक्तों का कपड़ा। बखेरूँ—बिखरा दूँ, अस्तव्यस्त कर दूँ। मोय—मुझको।

२९३—सुरत—(सु + रति) प्रेम, भक्ति। दीनानाथ—परमेश्वर, श्रीकृष्ण। सुहागण नार—सौभाग्यवती स्त्री। लगनी—लग्न की, लीनता का। बहार—बसंत ऋतु, यौवन। पावणा—पावना। सार—लगाओ। मकवेवर—झुलनी। परले पार—दूसरी ओर का तट। मोरचा—सेना की रक्षा के लिए बनाए गए दृढ़ स्थान। छिन में…बिगोय—क्षणमात्र में तोड़कर गिरा दिया। झणकार—झंकार कर, जोर से नाम लेकर। पोल—फाटक, द्वार। करै छे—करती है।

२९४—बड़े घर—परमेश्वर का गृह। ताली—संबंध, लगन। मन री—मन की। उणारथ—स्वार्थ, लालसा। छीलरिये—पानी के

छिछले गड्ढे पर। डाबरिये—बरसाती गंदे पानी से भरा गड्ढा। कुण आव—कौन आवे। दरियाव—समुद्र, सागर। हाल्याँ मोल्याँ—राजी मुहाली, साधारण मनुष्य। सीख—शिक्षा, उपदेश। कामदाराँ—कर्मचारियों। आप करूँ दरबार—स्वयं राणा के पास पहुँचती हूँ। काच कथीर—सीसा। सीर—निजी संपत्ति। पीपा—प्रसिद्ध भक्त पीपाजी। परचो—परिचय। पूर—पूरा, भरा। हजुर—सामने, प्रत्यक्ष।

२९५—निभायाँ बनेगी—निबाहना ही होगा। बाँह गहे—शरण देने, रक्षा करने का वचन देने। सरब सुधारण काज—जो सभी कार्य सुधार सकता है। अपरबल—प्रबल, शक्तिशाली। निरधाराँ—निराश्रयों के। अकाज—हानि। भीर—कष्ट, दुःख। मोच्छ—मोक्ष, मुक्ति।

२९६—रली कराँ—खेलें, आनंद करें। गवण—गमन, जाना। निवारि—छोड़कर। जगमग—चमकती हुई। पोति—काँच की गुरियों की माला। पटंबरा—रेशमी वस्त्र। दिखणी—दक्षिणी, महकीली। बुहाइ दे—बहा दो, सुहार दो। भोगनि—खाद्य वस्तु। दाग—कलुषता। अलूणो—अलोना, बिना निमक का। साग—शाक भाजी। पिराणो—दूसरे का। निवाँण—नीची उपजाऊ भूमि। खीज—क्रोध। कालर—कड़ी भूमि, कम उपजाऊ भूमि। नीपजे—पैदा होती है। हीणो—हीन। साधारण। सूँ—सा, समान। वाल्हा—वल्लभ, प्रिय। यही—यह।

२९७—आरति—प्रेम-पीड़ा, व्यथा। साँझ सवेरी—दिन-रात। दिवला—दीपक। मनवा—मन, हृदय। बालूँ—बालती हूँ। पाटी पारूँ—सिर के बाल को बीच में से दो सम भाग में सँवारती हूँ। सेजड़िया—शैय्या। चंगा—स्वस्थ, भला, बहुत। पधारया—चले गए। साइयाँ—स्वामी।

२९८—भेषाँ—वेश में। समता—एक समान रहना। निरंजन—माया से निर्लिप्त, परमेश्वर। मुद्रा—वैरागियों के कान में पहिरने की एक वस्तु। कींगरी—किन्नरी, छोटी सारंगी।

२९९—मन की मैल—हृदय के कल्मष, मनोविकार। दियो तिलक सिर धोय—केवल सिर धोकर टीका लगा लिया। काम-कूकर—इच्छा-रूपी कुत्ता। चंडाल—श्वपच, दुष्ट मन। काम…चंडाल—जिस प्रकार चांडाल कुत्ते को डोरी से बाँधता है उसी प्रकार दुष्ट मन मुझको इच्छा तथा लोभ से बाँधे हुए है। घट—शरीर। विषया—भोगविलास की इच्छा। विषया लालची रे—विषयासक्ति जितनी तृप्त की जाती है उतनी ही बढ़ती है इसलिए लालची है। अभिमान…ठहराव—अहंकार

रूपी अनेक टीलों पर रहने से उस पर उपदेश रूपी जल नहीं ठहरता है। । हिय अंतर की— हृदय के भीतर की। मणिया—माला का मनका। सहज—सुगम।

२००—कछु पुण्य प्रगटे—किसी पुण्य के प्रताप से। मानुषा अव-तार—मनुष्य का शरीर। बढ़त···बार—क्रमशः प्रतिक्षण मनुष्य बढ़ता है तथा उसकी आयुष्य घटती रहती है और जाते समय जरा भी देर नहीं लगती। विरछ···डार—जिस प्रकार टूटा हुआ पत्ता फिर वृक्ष में नहीं जुटता उसी प्रकार मृत्यु होने पर फिर वह मनुष्य नहीं लौटता। जोर—शक्तिमान, प्रबल। ऊँडी—गंभीर, गहरी। परली—दूसरी। चौसर—एक प्रकार का खेल, जिसमें चार रंगों की चार गोटियों तथा तीन पासों से खेला जाता है। मँडी—बिछी है, सजी है। चौहटे—चौराहा, चौमुहानी, बाजार। सुरत—नाम-स्मरण। बाजी—खेल। जीवणा—जीना।

२०१—करमगति—प्रारब्ध की चाल, कर्म का लेख। टारे नाहिं टरे—मिटाए नहीं मिट सकती। सतवादी—सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ। हाड़—हड्डी तात्पर्य शरीर से। गरे—गलाया। लेण—लेने के लिए। घरे—भेज दिया। बिस से अम्रित करे—कर्म बुरे को भला कर देता है।

२०२—न्यारी—दूसरी, निराली। मरघन—मृगन। बड़े नैन—बड़े नेत्र संपन्नता तथा ऐश्वर्य के लक्षण हैं। उघारी—नंगे। दीयत—देता है।

२०३—अवधूत—साधु, योगी। मढ़ी—साधुओं के रहने का स्थान। पंथी—यात्री, मार्ग चलनेवाला। हतो—था। ते—वह। पंथे लाग्यो—रास्ता पकड़ा। भभूत—भस्म। सुघर्यो—सुधरा। नीकळ्या—निकला, हुआ। सूल—सोकर।

२०४—रज—धूलि। उधारी—उद्धार किया। पटरानी—धर्मपत्नी।

२०५—हरिया—हरि, श्रीकृष्ण। तारी—तुम्हारी। गति—चाल, माया। मरिया—मरा हुआ। पड़ी—पड़े हुए। तरिया—तर गया।

२०६—गुमान—घमंड। परेचे—कराए। बिछरी—बिछुड़ी हुई, अलग।

२०७—काय कुँ—किसलिये। तूँने—तुझे। पालणे—पालना। पौढ़ायो—सुलायो। दे—हमने। रूड़ो—अच्छा, भला। गुमायो—गँवा दिया।

२०८—खजूर—लंबा ऊँचा ताल वृक्ष, जिसके सिरे पर फल पके रहते हैं। पड़े—गिर पड़े। चकनाचूर—खूब पिसकर चूर्ण हो जाना।

बकतर—रक्षा-कवच। ओट—आड़। दूरे पूरे—पूरा शूरवीर। पारखा—परीक्षा, चिह्न। धणी—स्वामी। जोर—खूब, पूर्ण रूप से। कहूँ—कभी। लागे हार—पराजित होना पड़े।

२०९—रणछोड़—द्वारिकाजी में रणछोड़ जी का मंदिर है। जब श्रीकृष्णजी जरासंध के आगे से युद्ध में भागकर द्वारिका चले आए तब उनका यह नाम पड़ा और इसीलिए वहाँ की मूर्ति का यह नाम है। छवि ओर—निराली छवि। गोमतीजी—द्वारिकाजी में समुद्र का एक भाग जिसे इस नाम से पुकारते हैं और यहाँ स्नान करने से पुण्य-प्राप्ति होती है। कलोल—लहरें लेना। धजा—ध्वजा, पताका। बहुत्याँ—बहुत से। फरके—फहराता है। झालर—बंदनवार। झकझोल—हिलना।

२१०—जगत—संसार, सांसारिक माया। डार—डारकर, डालकर। अमरबेलि बोई—ऐसी लता लगाई जो अमर हो गई। तारण—पार करें चलें। संत—साधु, भक्त।

२११—भजन भरोसे अविनाशी—ईश्वर के भजन ही का मुझे भरोसा है। जगत में उदासी रे—मैं इन सब से उदासीन हूँ।

२१२—अबला—स्त्री, असहाय। मोटी—बड़ी। मीरांत—भाग, अंश। बाई—पाया। सांवलो···बांधु रे—श्यामसुंदर मेरे सच्चे प्रियतम हैं। बाली—कान का आभूषण। घड़ाऊँ—गढ़ाया, बनवाया। हुये—हुई है। चूड़लो—चूड़ी। झाँझरिया—पैर का गहना। कण्ठा—गला। काँठी—कंठी। बिछुवा—पैर का गहना। घुँघरा—घुँघरू से युक्त एक गहना। अणवट—पैर की उँगलियों का गहना। त्रिकम—त्रिविक्रम। नामनूँ—नाम का। वालु—वाला। कुँची—ताली। सासर वासे—ससुराल में। समिने—समकर। काँचूँ—कच्चा।

२१३—जीवणा—जीना। कुण—कौन। जंजार—जंजाल, जीवन का प्रपंच। करतार—विधि, सृष्टिकर्ता। कह—किसी ने। सार—संबंध, साथ।

२१४—स्थावर—अचल। जंगम—चल वस्तु। कुदरत—प्रकृति, माया। कुरबान—निछावर। बारे—बाल्यकाल। तंदुल—चावल। खावी—खाना, खाया। रथवान—सारथी। ना कोइ मारे ना कोइ मरता—न कोई किसी को मारता है और न कोई मरता है। चेतन जीव—आत्मा। बाँदी—दासी।

३१५—आयगो—संसार से उठ जायगा, मरेगा। लख चौरासी—चौरासी लाख योनियाँ। सरे—होवे।

३१६—नाँव—नहीं। सुनणाँ—सुनना। खेवटिये—केवट, भवसागर को पार करानेवाला ईश्वर।

३१७—रँगराती—आसक्त, प्रेममग्न। दुनियाई—सांसारिकता, माया।

३१८—बनमाला—जंगली फूलों की माला। प्रतिपाला—प्रतिपालक, पालनेवाले, पालक। वैजंती माला—वैजयंती अर्थात् पाँच रंगों की माला।

३१९—निवारी—छुटकारा दिया। पैज—टेक, प्रण। पारी—पूरी की। धारी—धारण किया। बिसारी—भूल गए।

३२०—नागर—चतुर, कुशल व्यक्ति। नंदा—नंद के पुत्र। हैं—हैं। तारन—तारे। चरण'''फंदा—पद हृदय के लिए फंदा हो गए हैं अर्थात् चित्त उसीमें फँसा हुआ है।

३२१—ने—निश्चयवाचक न। जगना—संसार का। नजरे—आँखों के सामने। म्हने—मुझे। धंधा—काम। आडु अवलु—स्त्रियों के माथे पर का आड़ा टीका। जोयुं—देखा। मोहनी—मोह लेनेवाली।

३२२—ओम की सुरता—परब्रह्म का स्मरण-ध्यान। शर्वरी—रात्रि। स्तंभ—जड़, अचल। घट पई रही—जम गई है।

३२५—पौरि—द्वार। संज्यावली—संध्यावली, एक नाम। आँब मौर—आम्र वृक्ष की मंजरी, बौर। अमरन—देवतागण। केली—क्रीड़ा, खेल। चोवा—सुगंधि द्रव्य। बूका—अभ्रक का चूरा। बंदन—रोली। महुवर—एक बाजा।

३२६—होड़े—ओढ़े। कामली—कंबल। हरिहजु—हरिजी ही। जंजीर—पैर का गहना। घट—तट, किनारा। ख्याल—ध्यान।

३२७—वधावनो—बधावा, जन्मोत्सव। गहमह—आनंदपूर्ण। रावल—अंतःपुर। थाँसू—तुम से। आजिरो—आज का। भावनो—प्रसन्नतापूर्ण।

३२८—तुरी—अपनी०। चरावना—चराने। मावदली—माता। छाशलणी—छाछ। ने—के। भीणी—छोटी। काँकलडी—कंकरी। राखलणी—रखती हूँ।

३२९—वागी—बजी। वागी छे—बजी है। घेलाँ कीधाँ—उन्मत्त सा किया। कामण—कामना, इच्छा। काँवली—कम्मल।

३३०—वागे छे—बजती है। गगन माँ—आकाश में। वालो—

प्रिय। जरकसी—बुनहले तार से बिना कपड़ा। पटका—कमर में बाँधने का दुपट्टा। भाँजे छे—दूर हो जाता है।

३३१—चालोनी—चलो न। जोवा—देखने। सुतीती—सोई थी। भवकीने—झटक कर। जोवा—देखने के लिए। शामो—श्याम, कृष्ण। मल्यो—मिले। सुहागी—सौभाग्यवाल। नेहे—प्रेम।

३३२—थुँ—से। पींछ—पंख।

३३३—नंदनो—नंद का। नानपीयो—नन्हा बालक। तालबंध—ताल से युक्त। ताली—करतल ध्वनि। भणंता—कहता। मोही—मुग्ध हो। त्याँ—वहाँ।

३३४—पैलो—पहिला। अमने—हमको। रास रमाडी—रास रचाकर। रमाडवाने—रचने के लिये। तेड्याँ—टेर देकर। मोहनी—आकर्षक। सुणावी—सुनाया। शाख पुरावे—तरकारी बनाती है। हवणाँ—अभी। वेण—बहिन। सुती—सोई। कसुंबल—लाल रंग।

३३५—मही—मक्खन। रमतो—घूमता फिरता है। प्रेमतणाँ—प्रेम का। जीमतो—खाते हुए। हवे—अब। मोंघो—महँगे, अमूल्य। थयो—हुए हैं। दमतो—समझते। गमतो—जाते हैं।

३३६—एकलडी—अकेली। पाघ—पाग, पगड़ी। वाघा—वागा, वस्त्र। फूलडाँ—फूल का। मेहेल—सुंदर। तोरा—कलगी। द्राख—द्राक्षा, मुनक्का। मेवले—मेवों से। खोला—थैली। पुठ न मेले—रक्षा नहीं करता, प्रेम नहीं करता। खसता—हटता।

३३७—जीवण—जीवन के सर्वस्व, प्रिय। जोवाने—देखने। महीनी—मक्खन की। शमावशे—शांत करेंगे, सान्त्वना देंगे। मावजी—प्रसन्न चित्त।

३३८—वहीयाँ—बाँह। ग्रही—पकड़ा। कान्हा—श्रीकृष्ण। जड़ाव को गेनो—जड़ाऊ गहना। सर—लड़ी। पालव—पल्ला, आँचल।

३३९—लेशो—लेगा। महीडाँ—मक्खन। केराँ—का। दाण—दान। मोहुँ—दुष्प्राप्य। अमो—हम। कँई—के। हुँवालाँ—अत्यधिक प्रिय। खेंचाताण—खींचतान। नो—का। गोवालियो—ग्वाल। ओलख्या—जानपहिचान। अखुमाण—वृषभानु। नाठो—नृत्य करो, नाचो। अजाण—अज्ञात।

३४०—मज—मुझे। घेर—घर। कान—कान्हा, कृष्ण। श्याम—साँवला। कहान—कृष्ण। आप्यानी—देने-लेने की। घणी—बहुत।

हाम—इच्छा। ठाम—स्थान। आणी तेरे—इस ओर। पेली तेरे—दूसरी ओर। वच—बीच। वलोर्यों—विलोया हुआ।

२४१—गागरियाँ—गागरी, घपा। वेर्यों—समय, वेला। ढळशे—ढल रही है, बीत रही है। ऊढणी—ओढनी। आपो—दो। साव सोनानी—शुद्ध सोने की। जडित्र—जड़ी हुई, बीनी हुई। खरशे—खसकेगी। कूडूँ—कपट, कठोर। केरवु—करना। पडशे—पड़ेगा। नापा—नहाने। मलशे—मिलेगा।

२४२—गयातों—गई थी। खस्यो—गिर गया। नाँधवो—पार करना। दीयरीओ—देहली। हरशे—प्रसन्न होता है।

२४३—पाणीडाँ—पानी के लिये। मळे—मिलता है। आण—आन, मर्यादा। कामणगोरा—कामदेव सा सुंदर। चाले—चलायमान हो जाता है। आहिरडाँ—अहीर का। घणाँ सुवालाँ—अत्यंत प्रिय। कानुडो—कान्ह, कृष्ण।

२४४—काँकरी—कंकड़। केम—कैसे। आफाँठे—इस ओर। वेढुँ—बेल।

२४५—सरे—पूरा हो। बीजुँ—दूसरे। मलवुँ—मिलना। दाफे—ईर्ष्या से। आगल—पहिले। दाव—रार, झगड़ा। वजाणी—बजाकर। वळावळ—बड़पता हुआ। फेरो—फेरा, आवागमन।

२४६—फाले—फल। मळजो—मिलना। पेलाँ—पहिले का। पाळजो—पालना, पूरा करना। वच्चे—बीच में। प्रीत करी पर—प्रेम कर लेने पर। वाटे—मार्ग में। आल—झगड़ा। शुणजो—सुनो, सुनना। घणोए—अधिक। थयाणी—हो गई है। वळजो—बचो।

२४७—खोटा पाऊँ—देर करूँ। वढ़े—लड़ेगी। झारी—छोटा कलश। मोज करे—आराम करे। आणी—इस। साव—शुद्ध। पाट पटुलो—साड़ी, वस्त्र।

२४८—मेली जाओ—मिल जाओ। तमने आणी आपुँ—तुम्हें लाकर दूँ। बाना करती—मना करती। जावा—जाने। ठारी—खड़ी हुई। एटली—इतनी। शामलियो—श्याम को।

२४९—शाने—किसलिये। जवादो—जाने दो। कामनो—काम करने का। सहीयरो—सखी भी। मारा सम—हमारे समान। एणे—वह। आप्युं—दिया था। तपास्यो—तपाया, तपस्या कराया। माटे—समान। आव्या छो—आए हो।

३५०—जावा दे—जाने दो। गुमानी—घमंडी। लँगर—ढीठ पुरुष। गाम—ग्राम, गाँव। थाँरो—तुम्हारा।

३५१—केडे पड्यो—पीछे पड़ा है। सहीयर देखताँ—सखी के देखते हुए। पाऊँ—पिलाऊँ। थाऊँ—हो जाऊँ।

३५२—सखी तट—सखी के पास। परोव्युं—पिरोया है। नङकारी—क्रोधी। नणादल—ननद। विसडाँनुं झार—विष के ऊपर का झाग। परण्यो—जिससे विवाह हुआ है। मार्यो छे—मारा है।

३५३—प्रेम नी—प्रीति की। ताँ—थी। हती—थी। हमनी—हमारे। काँचे···बाँधी—कच्चे सूत से तो श्रीहरि ने ही बाँध लिया है। तेमनी—उसीकी इच्छा। एमनी—ऐसी ही।

३५४—आरे—पार। अल्या—अहिल्या। आगल—आगे। पालव—पल्ला। मेरे—पकड़ कर खींचता है। लाड़ लडावे—प्रेम करता है।

३५५—मेलो ने—गिराओ मत। मावा—दूध का खोया। पालवडा—आँचल। शूँ—क्यों। स्होर—शोर, होरा। जीवण—जीवन सर्वस्व।

३५६—वालने—लाल की, कृष्ण की। लीधाँ—ले लिया। मारॉ—हमको। मंत्र भणी—मंत्र पढ़कर। वेला—समय। कवेलानाँ—कुसमय की। कीधाँ—किया है। वाली—सुखदायक।

३५७—नाखेल—डाल लिया। दोरी—डोरी। आणी—इस। कोरे—ओर। नाखे—डालता है। चरावी—चराता है। वाँहली—बंशी। वगाडे—बजाता है। नाँखी ढेरी—गिरा दिया। कानड—कृष्ण।

३५८—तारा—तुम्हारा। दाणी—दान लेनेवाला। आलोगारो—झगड़ालु। आल—उपद्रव, झगड़ा। लाड़कायो—लाड़ या प्यार करके। ताणी ने—तानकर। वाल्युं—समझाया। बीजी—दूसरी। धरम हमारी घणी आणी ने—तुम्हारा विचार करके।

३५९—वेचंती—बेंच रही हूँ। ने—को। घाली—डालकर। लटके लटके—मटकती हुई। घेलुं शुं—उन्मत्त सी। नव—नहीं। जूवे—देखे। दहाणी—दही।

३६०—तारुँ—तुम्हारा। झीमली—लेते हुए। श्वास भर्या—स्वाँस भरती हुई। आव्याँ—आई। विण—बिना। पय—दूध। मेली—मिला दिया। साकर—शक्कर, चीनी। सरसाँ—रस भरी। सार्या—लगाया। दोहताँ—दुहते हुए। दोणी—वह पात्र जिसमें दूध दुहा जाता है।

३६१—चढीने—चढ़कर। हरी ने—हर कर, उठा ले जाकर।

लपेटो—दुपट्टा। श्रावीए—आऊँ। नाखोने—डाल दो। नवरंग—नौ रंग का रँगा हुआ। रैंटो—एक प्रकार का वस्त्र।

३६२—मोरारी—मुरारि श्रीकृष्ण। उघाडी—नंगी। ऊभी—ऊबी हुई। न्यारी—अलग। फबुओ—फबी। भानुमान-दुलारी—वृषभानु की प्रिय पुत्री।

३६३—पुनम—पूर्णिमा। केरो—का। बाजीतर—वाद्ययंत्र, बाजा। सोल—सोलह। वचे—बीच में। दीसे—दिखलाई पड़ता है। छोगालो—चतुर।

३६४—कठण—कठोर। जई—जाने से। कागल—पत्र। लख्यो—लिखा। कटको—एक टुकड़ा। अहियाँ—आँखें। एवडाँ—अभी तक। सोवरणीया वाघा—सुनहला वस्त्र। पटको—पटुका, दुपट्टा। कहान—श्रीकृष्ण। काली सी—काली सी।

३६५—माया—प्रेम, मोह। खीदने—कष्ट पाने। लगाडी—लगाकर। मेली न जाशो—छोड़ न जाना। एवा—इस प्रकार के। चारतां—चराते हुए। वगाडी—बजाया। वाडीओ—वाटिका को। दीवडो—दीपक। देवल—मंदिर।

३६६—गोरस—दूध। मुक्ताफल—मोती।

३६७—अजब—विचित्र। सलूणी—सलोनी सुंदरी। मृग्यानेणी—मृगनयनी। तें—तुमने। कीधो—किया है। मकनो—छोटी। करी—हाथी। अँवाडी—अमारी, हौदा। पीठडाँ—पीढ़ा। कीनो—द्वेष।

३६८—झीणा—मंद, धीमा। डुँगरिया—छोटी पहाड़ी। मेहुलो—मेघ। सालूडानी—गहरे लाल रंग की साड़ी का।

३६९—परणावशूँ—विवाह करूँगी। लोपी—मिटा दिया। कानवर—श्रीकृष्ण दूलहा बनकर। चपशे—चढ़ेगा। आरोपी—पहिरकर। ज्या—जित। ओपी—प्रकाशमय।

३७०—कोनी पखे—किस प्रकार। मही—मक्खन। छावडीया—टोकनी। मालण—मालिन। विभूत—भभूत, भस्म। पार—पास।

३७१—नाव्या—नहीं आया। फरीने—फिरकर। मेली—छोड़कर। जई वर्या—जाकर वरण किया। सात रे—साथ। वायदो—प्रतिज्ञा, वचन। करीने—करके। ऊभा—खड़े होकर, उठाकर।

३७२—आवा न बनीए—आते नहीं बनता। मणकारा—झंकार के साथ। काँठो—तट, किनारा। अकलावी—व्याकुल। नव लागे सारी—सब नई सी लगती है, अनजान सी। तोल्यो—तौला, उठा लिया।

इचली—कानी, छोटी। दोल्यो—दुराया, छाते की तरह लगाया।

३७३—कागद—पत्र। तमोने—तुम्हारी, तुमसे। मलवाने—मिलने के लिए। तलखे—तड़पती है। रोतां—रोते हुए।

३७४—मेवासी—प्रधान, मुख्य। भाछुं—कटा फटा, छिद्रयुक्त। हेत—अर्थ। मुने—मुझे। रडतां—रोते।

३७५—कामछे—काम है। ओधा—उद्धवजी। मीने—समाया हुआ। आगली—आगे की। परसाल—पड़शाला, कमरा।

३७६—कानुडे—श्रीकृष्ण। कामण—मोहयुक्त। विंधा—बेध दिया, फँसाया। कंथ—कंत, पति। कामणगारो—अत्यंत सुंदर।

३७७—आवजो म्हारे नेडे—मेरे पास आना। आँगणीए—आँगन में। मोर्यो—मोड़ लिया। आवीने—आकर। सार्यो वेडे—बेड़ा पार किया। केडे—पीछे।

३७८—क्येम—किस प्रकार। रेवाशे—रहना होगा। दशाश—दस दिन। अवध—अवधि, मीआद। रहाँछे—रहती हूँ।

३७९—दाडाना—दिनों का। काँने कहेवाशे—किससे कहना है। वरद तमारुं जाशे—तुम्हारा विरुद चला जायगा। कराँशे—करती हैं।

३८०—शामले—श्रीकृष्ण। मेलडो—मेलजोल, प्रेम। वाली—आकर्षण।

३८१—मेली विसारी—भूल गए। करडुं—कठोर। पेरुंगी—पहिरूंगी। रहेश—रहेगा।

३८२—आव्या—आया। फरीने—फिरकर।

३८३—काळानों कठण छेडो—काल कठिन है। एवो—इस प्रकार। टीटुडीनों—टिटहरी का। ईंडा—अंडे। उगार्या—बचाया। मंजारी—बिल्ली। छईयों—छाया, शरण। ग्रेह थी—ग्राह से। चारी—चराया। सघलुं—कष्ट में। रेलडुं—पड़े हुए।

३८४—दव—आग। डुंगर—बस्ती। दालवा—एकदम, शीघ्रता। बेसी—बैठ रहिए, अधिक। आरे—इस प्रकार। वरतिए—वरतें। ठेकाणुं—ठिकाना। पर—दूसरी प्रकार। पाले—पंख। पूरिए—लगाइए। बाँहेडी झालो—बाँह का सहारा दो। नीकर—नहीं तो।

३८५—जाएवुं—जाना। हेत—प्रीति। जादवारे लोक—यादवों के प्रिय। हैडाँ माँ वरताय जो—अन्यत्र उसे बरतना। खामणाँ—क्षाम, क्षीण, घटा हुआ। वाल—प्रेम। कनु—का। लाविया—लाये। जे सोंप्युं—लाकर सौंप दिया। पाँखडली—पँखुड़ी। मोकली—भेजा।

मुझथीए—मुझी से । अदेकरी—निरपराध, निर्दोष । अचरत—आश्चर्य । लैने—लाकर । अमसाथे—साथ । अछशो—अयो । मोले—शीघ्र । मानीती—मानिनी के पास । तणेरे—अपनी । पछी—पछे । आवशो—आना । ने—से । मोटा—बड़ा । मूकशो—त्याग दो । माम—ममता । आभ्रण—आभरण, गहना । मारारे—अपने । मैयर—मायका । आपो—दो । उरपकी—छाती पर की । नवसर—नौ लड़ियों का । काँबी—काँप, कान का आभूषण । कडलाँ—एक गहना । शोटी दामणी—एक प्रकार का आभूषण । आगल थी—पहिले से । नव—नहीं । एवडुँ—इस प्रकार का । वरपि—पहिले से । पालटी—बदल गई । मेदियाँ—रहस्य । पहरवुँ—पहिरना । नोतु पावरुँ—नवीन पाग । शुँ—जो । स्वप्ने वही गयाँ—स्वप्न में बीत गया । देहलडी माँ—घर के भीतर । मल्याँ—मिला । जेनो—जिसका । परण्यो—विवाहित । पर वेर—दूसरे के घर । अबोलणा—न बोलना । झोलाँ—झोंका, ढीला । वेरी—बैरी । आपी—देकर । गलथुथी—गले में । झेर—जहर, विष । वेणमने—बेमन, विमनस । मेघ—एक राग । मल्लार—एक राग । ते—तुम । मणाँ शुँ—मुझसे । आणो छो—लाती हो । भ्रांत—भ्रम, भूल । नारी मत—स्त्री बुद्धि । शुँ—क्यों । नारद ने—नारद के । कल्पांत—भ्रांत विचार । तम थी—तुम हो । बीजू—दूसरी । कुडो—कठोर । केहवु—कहना । वधारे—बढ़ाता है । नव साँभलो—नहीं समझोगी । समजो—शपथ । कालुश नाग ने—काले सर्प के । झाड—वृक्ष । आणीने रोपवुँ—लाकर लगा दूँगा । मूको वाड़—झगड़ा छोड़ो । हरि थी—श्रीकृष्ण का । नौतम—उत्तम, नवोत्तम । वेहेके—सुगंधित है । भेरभुंगल—एक बाजा । रुसाणुँ—रोष का गीत । रुडी—अच्छी । मनाव्याँ—मनाने का । मोल—शीघ्र ।

३८६—साकर कटका—मिश्री की डली ।

३८७—तारी लेह—तुम्हारी भक्ति । भजे थी—भजने से । भीड भाँगी—कष्ट नष्ट हो गए । गमतो—अच्छा लगता । मेली—त्याग दिया । राणी—प्रसन्न ।

३८८—तुवी—उगा हुआ । पाघ—पाग, पगड़ी । कलंकी—कलगी । तोरो—तुर्रा, शिरपेंच के बगल में लगाने का एक आभूषण । ममतो—भ्रमण करता है, रमता है । वरतो—वरण करता है ।

३८९—आतुर—घबराई हुई । गौ वणाँ—गायों को । मीश—

छोकर। मासी—माता की बहिन। येशी—ऐसी। छोगाला—चतुर, चंचल। घणा—अधिक। घणाघ—बहुत।

३९०—जीवण—जीवन सर्वस्व। जुठणा—झूठे। दीठडा—दिखलाई दिए। आल—रार, झगड़ा। घाल्याँवाँ—डाल लिया था। पीछड़ो—मुकुट के पीछे का वस्त्र।

३९१—तंबूरो—तानपूरा। तणावुँ—लगाऊँ। घूघरा—घुँघरू। आँगणे—आँगन में। आणी—लाकर। आटला—देर, पटाला। दीसे—दिखाया। हीसे—प्रसन्न होना। पूरे—करे। झुमखणाँ—झूमक। बरावे—बजाकर चले। तघतल—घोड़ा योड़ा। बहेवडावुँ—बहाती हूँ। वाडी—उद्यान। रोपावुँ—लगाऊँ।

३९२—जोगेश्वर बावो—योगेश्वर बाबा, श्रीकृष्ण से तात्पर्य है। झारी—जल चढ़ाने की कलशी। कफनी—साधुओं का कुरता।

३९३—वहेला—प्यारा। वाटडी जोऊँ—प्रतीक्षा करती हूँ। हर्खी नर्खी—प्रसन्नता से देखकर। कंसार—पंजीरी। पीरस्यो—परोसा। जमो—भोजन करो। राइताँ—दही में साग मिला कर बना हुआ पदार्थ। शरमाशो—लज्जा करो। खाटु खारुँ—खट्टा खारा। कनकनी—सोने की। लेपरावुँ—कराऊँ। मुखवास—पान, लायची आदि।

३९४—नाव—नहीं तो। चोरा—चौराहा। चौटा—बजार। जोयाँ—देखा। फरी फरी—फिर फिर। जोती—देखती हूँ।

३९५—मळीया—मिले। सासरीए—ससुराल। वर्या—वरण किया। सुषमणा—सुषुम्ना नाड़ी। पेलो—पहिला। लगार—लुगरी। दीकरी—पुत्री। एकेकतो—एक को।

३९६—जुनो—पुराना। हँसनो नानो—छोटा हंस। हंसा—हंस से तात्पर्य आत्मा से है। पाँजरे—पिंजड़ा, शरीर।

३९७—परणी—ब्याही। बीजाना—दूसरे का। मींढोल—संबंध। चोरीयुँ—चोरी से। माँडवो—मंडप। बँधाणो—बँध गया। सवनाँ—सत्य का। इग नाथ—एक स्वामी।

३९८—माणेक ठारियाँ—भोजनोत्सव। उपर थी—ऊपर से। वघारियाँ—छौंकन देना। बीलु—तंदुल। कारेला कंटोलाँ—तरकारियाँ। सवादियाँ—स्वादिष्ट। आरोगियाँ—भोजन।

३९९—लक्ष्मीवर—विष्णु। लटके—अंगभंगी। खोवुँ—खोना। खटके—खटकता। संसारीओ—सांसारिक लोग। कुंडो—निरर्थक, नष्ट। झटके—समूह।

४००—वच्चे—बीच में। अमुलख—अमोलक, बहुमूल्य। जर-कसी—जरी का। आड़—तिलक। विठलवा—श्रीकृष्ण।

४०१—थयाँ—हुआ। जोयाँ—देखा। नीहाली—प्रसन्न होकर। हैया—हिवड़ा, हृदय। जेवुं—जिस प्रकार। हतुं—था। नवमेलीये—मत डालो। व्रजनार नूँ—व्रजबालाओं का। लाड लडावे—प्यार करे। रहेवाय—रहना। अंतीक्ष—अंतरिक्ष, अदृश्य। त्याँ थकी—वहाँ से।

४०२—वाछरडी—बछड़ा। एवड बेवड—टेढ़ा मेढ़ा। नाडी—डोरी। नेवए—देहरी। दोणी—दुहने का पात्र। दोवा—दुहने। नाख्या—गिरा दिया। पगज—पैर को। तोष्ठ—पतली डोरी। पाटु—लात।

४०३—तारूँ—तुम्हारा। रुडुं—अच्छा। छोड—पौधा। छेलछी वाली ना—बचे हुए लोगों को।

४०४—मे—मय। भारे—भारी, बड़ा। वे—दो। हठ—हठ। हलकार—तरंग, प्रेम। धार—धारण करो।

४०५—साँमलीने—शरण लेने पर। आशभर्या—पूर्ण आशा। ठोकरी—टूटा हुआ मिट्टी का बरतन। वीणा—बीन। मेहली—भूली। सहीयेरे—सखियों को।

४०६—पशकारो—कटाक्ष। झाँखी—झाँककर। वणीचा—अच्छी।

४०७—अबोला—न बोलकर। सीद—कष्ट। मारा—हमारा। अमे—हमें। तमारा—तुम्हारा। टाली—देर, अधिक। पोतानी—अपनी। पाइने—पिलाकर। पाओ छो—पिलाते हो। ऊँडा—औंधा। उतार्या—उतार कर।

४०८—कीधी छे ठाकोर थाली—तुम्हें अपना स्वामी बनाया है। तमे—तुम्हारे। पूरवो आशी—आशा पूरी करना। सकर—मिश्री। द्राख—मुनक्का। वासुदी—वसौंधी, मलाई। रहेवा—रहने के लिए। बंका—वक्र, टेढ़ा।

४०९—सोते—सोवार। पेरो—पहिरो। मोतिडे—मोती से। ऊभी—खड़ी। ठचेरडी—अटारी। पातलियानी—प्रिय की। साहेबा—स्वामी। वेसवे—बैठने के लिए। माँडूँ—रखूँ, बनाऊँ। पाट—पीढ़ा, आसन। शोभामणो—सुहावना। तारे—तुम्हारे। वागी—पर। अवतरीयाँ—जन्म लिया है।

४१०—कोने कोने—सर्वत्र। वेला वारी—कष्ट दूर किया।

उगार्यु—रक्षा किया। महेले—महल में। आणिदिन—आज के या दूसरे दिन। रलियात—प्रसन्न होना।

४११—मोरलिए—मुरली ने या से। जोयाँ—देखा। सरखा—समान, सरीखा। नव—नहीं। प्रोयाँ—पिरो दिया, लगा दिया।

४१२—लटके—लटक-मटक, अंगभंगी। मारुँ—मेरा। पेला—पहिले।

४१३—कारी—मर्ममेदी। मुने—मुझे। पारधी—अहेरी। गोली—बंदूक की गोली। शीष—सिर। बेहाल—व्यथित।

४१४—रुचि रुचि—अच्छे। पुतर—पुत्र। जायो—पैदा किया। लाड लडायो—प्यार किया। तरीया—स्त्री। लटी लटी—लूट लूटकर। घर थी—घर से।

४१५—वागे छे—बजती है। पेला—आगे के। सुती—सोई है। नणदल—ननद। दीयेरीश्रो—देवर।

४१६—अरज करे छे—प्रार्थना करती है। राँकणी—रंक, दीन। ऊभी ऊभी—खड़ी खड़ी। माणिगर—तेजस्वी। बोरा—मस्तक का आभूषण। गादी—गद्दी, तोशक। पछोडी—पिछुवाई, एक प्रकार का पर्दा। दहीडी—दही। एलची—लायची। तजवाली—सुगंधि द्रव्य खाने का। पासा—चौसर खेल की तीन टुकड़ियाँ। जोता—प्रकाशमय सौंदर्य।

४१७—माया—मोह। न्यारुँ—सबसे अलग। संसारी नु—संसार का। झाँझवानाँ नीर जेवुँ—छेदवाले पात्र में रखे हुए जल के समान अस्थायी। तुच्छ करी पूरी—हीन समझती हूँ। काचूँ—कच्चा। परणीने रँडावुँ पाछूँ—विवाह करने पर रँडापा मिलता है अर्थात् अस्थायी है। राँडवानो मे—रँडापे का भय।

४१८—डाकोर—गुजरात का एक नगर। जई—जाकर। लेह लगाडी—प्रेम लगाया। प्रभात—सवेरा। नौबत—शहनाई आदि। पाघ—पगड़ी। केशरिया वागो—केशर के रंग में रँगा हुआ वस्त्र। सोहये—शोभा देता है। अणियाली—अनीदार, नुकीली। नेपुर—नूपुर।

४१९—मार्यां छे—मारा है। वालीये—प्रिय। विधाया—विंध गया, आकृष्ट हो गया। पालवडो—पल्लव, कोमल नया पत्ता। ताण—तानकर। काँठले—किनारे पर। ऊभो—खड़ा था। आप—लगाओ।

४२०—सलूणा—सलोना, सुंदर। मीठडा—माधुर्य युक्त। आपुँ—दूँ। मेडी—मंडप। झरूखा—खिड़की। भमर—भ्रमर, भौंरा। नाखूँ—डालूँ।

४२१—धणी—प्रेमी, स्वामी। बीजू—दूसरा, अन्य। नाहिए—स्नान करना। मरुँसे—भरोसा, आश्रय। जमाडिए—जिमाना, कराना। जूठूँ···जमिए—बचा जूठन हमें खाना है। हीर ने चीर—बहुमूल्य वस्त्र। भमिए—घूमना है।

४२२—काहानो—श्रीकृष्ण। घेलो—बावरा, प्रिय। तल—तिल।

४२३—कारे—क्या। आवशे—आवेंगे। काग—श्रीकृष्ण। जोस—ज्योतिष की पुस्तक, पत्रा। देहीओ—शरीर भी। थाकेली पाण—प्राण भी थक गया है।

४२४—पातालिया—प्रिय। जनम-जोगण—जन्म ही से योगिनी। सुरता—ध्यान, स्मरण। सुखमना नाड़ी—हठयोग तथा तंत्र की तीन नाड़ियों में यह मध्य नाड़ी है। अंतर—भीतर, हृदय। घरेणुँ—घर के लोग। कुँवरबाई—भक्त नरसी की पुत्री का नाम। जेही—यदि। मामेराँ पूर्या—ननसारा पूरा किया। छाब—टोकनी। वाघा—वागा, परिधान। सीवडावुँ—सिलाऊँ। कागलिया—कागज। कटको—टुकड़ा। मसेर—मसि। मोंघी—महँगी। जईने—जाकर। एटलूँ—इतना। मलशे—मिलेंगे। तेदी—तब।

४२५—नेह—प्रेम। खमे—कंधे पर। चारी—चराया। वरिया—वरण किया।

४२६—घट रोग—पिंड रोग जिसमें रोगी पीला पड़ जाता है। कहँ करूँ—क्या करूँ। देखाविया—दिखलाया। धँधोले—झकझोरे। करक—टीस, पीड़ा। कालजडानी—कलेजे में। लेश—लेना। देश—देना। पूरीने—अच्छी प्रकार। पीवेश—पीना।

४२७—पाणीडाँ—पानी के लिए। उडाड्यों—छींटा उड़ाया। ताण्यों—ताना, खींच लिया। वरणागी—पहिले की वरण की हुई। गीर—उठाकर।

४२८—कोइने-किसीको। भाव—भक्ति या श्रद्धा का भाव। भवानी—उमा देवी। पीर—फकीर। तीर—तीर्थ। हलधर केरा वीर—श्रीकृष्ण।

४२९—वोलमों—बोलना। साकर—मिश्री। सेरडीनो—सरबत। लींबडो—नीबू। आगिया—अग्नि। झवेर—जवाहिर। कथीर—गूदड़। वोलमों—तौलना।

४३०—वारे वारे—बार बार। बोलडा—बोली, बात। कहेतों—कहते हुए। एवा—ऐसे। सालूडा—लाल साड़ी। सोहागी—सौभाग्यवती।

४११—ही—भी। तेणे—उनसे। गरज—काम।

४१२—ध्रू—ध्रुव। परमाण—प्रमाण। ठाम—स्थान। सायर-पाज—पुल।

४३३—जाणील्यो—जाना, समझा। वीरा—वीर, प्रिय। आ—यह। काया—शरीर। वाडीओ—वाटिका। झीगोरा—रव, बोलना। सरोवर—तालाब। कल्लोला—क्रीड़ा, खेल। हारडा—बाजार, हाट। वणज—वाणिज्य। वेपार—व्यापार। वसेरा—वास, निवास।

४३४—मंदिरिया—गृह, घर। दिवला—दीपक। सलसल्यों—हलचल या हल्ला मचा। ऊभी रही थाँभली—थाम कर खड़ी रही। वातुं—मीठी बात। झाले—उठा सकती। एता—इतना। वाटकडी—कोई पात्र। आलो—प्रकाश। ओधारुँ—उधार। वाणियो—वणिक। हाटडी—हाट, बजार। धींगाणुँ—उपद्रव।

४३५—मझनो—छोटा। अँबाणी—हौदा। बहेलीयुं—दहा दिया। एवी—ऐसी।

४३६—रमकडुं—अनुराग, प्रेम। चढियुँ—चढ़ गया है। घडियुँ—बनाई गई। मोटा—बड़ा। विरला—अलग, किसी किसी के। सुन-शून्य। श्यामलियाशुँ—श्रीकृष्ण में।

४३७—आद्य—आरंभ ही की। घूँघरा—घाँघरा, लहँगा। अमो—हम। मोकलया—भेजा।

४३८—सोकलडी—शोक। सांल—वेदना। मोटुँ—अधिक। मैयर-मैका। वळावो—विदा करो। हावे—अब। खोटुँ—अशुभ, बुरा। कुवेरे-कुस्थान या कुसमय। पढिशुँ—पड़ी हुई हूँ। वखडाँ—विष। पीशुँ—पीऊँगी। जीव्यानुँ—जीवन का। आल—झंझट। मेणुं—मेरी। ओटुँ—रटूँ।

४३९—पखाज—पखावज, मृदंग। वेणाज—बीन, बाँसुली।

४४०—चितडुं—चित को। मनडुं—मन को। वेधाये—वेध दिया। करवाँ—करना। अमने—हमें। कांठे—तीर पर। बलभद्रबीर-श्रीकृष्ण। गजरथ—हाथियों द्वारा खींचा जानेवाला रथ। श्वानमसे-कुत्तों के द्वारा। चोट्युँ—चानल है। खिलामणा—खिलाना। फोक—व्यर्थ। ज्याँ—जहाँ। आश—आशा।

४४१—जेने—जिन्हें। घेर सौद जइए—घर नष्ट हो जायगा। अग्निनो भडको—आग का भभका। वूली—कष्ट देनेवाली। ऐनी प्रत्ये—इनके प्रति। काइं—कुछ। नाखुँ—डालूँ। पूली—मूँज का गट्ठा। मम-

४२१—धणी—प्रेमी, स्वामी। बीजु—दूसरा, अन्य। नाहिए—स्नान करना। भरँसे—भरोसा, आश्रय। जमाडिए—जिमाना, कराना। जूठूँ···जमिए—बचा जूठन हमें खाना है। हीर ने चीर—बहुमूल्य वस्त्र। भमिए—घूमना है।

४२२—काहानो—श्रीकृष्ण। वेलो—बलुआ, प्रिय। तल—तिल।

४२३—कारे—क्या। आवशे—आवेंगे। काग—श्रीकृष्ण। जोस—ज्योतिष की पुस्तक, पत्रा। देहीओ—शरीर भी। थाकेली पाण—प्राण भी थक गया है।

४२४—पातालिया—प्रिय। जनम-जोगण—जन्म ही से योगिनी। सुरता—ध्यान, स्मरण। सुखमना नाड़ी—हठयोग तथा तंत्र की तीन नाड़ियों में यह मध्य नाड़ी है। अंतर—भीतर, हृदय। घरेणुँ—घर के लोग। कुँवरबाई—भक्त नरसी की पुत्री का नाम। जेदी—यदि। मामेरॉं पूर्या—ननसारा पूरा किया। छाब—टोकनी। वाघा—बागा, परिधान। शीवडावुँ—सिलाऊँ। कागलिया—कागज। कटको—टुकड़ा। मसेर—मसि। मोंघी—महँगी। जईने—जाकर। एटलूँ—इतना। मलशे—मिलेंगे। तेदी—तब।

४२५—लेह—प्रेम। खभे—कंधे पर। धारी—धराया। वरिया—वरण किया।

४२६—घट रोग—पिंड रोग जिसमें रोगी पीला पड़ जाता है। कई करूँ—क्या करूँ। देखाविया—दिखलाया। धँधोले—झकझोरे। करक—टीस, पीड़ा। कालजडानी—कलेजे में। लेश—लेना। देश—देना। पूरीने—अच्छी प्रकार। पीवेश—पीना।

४२७—पाणीडाँ—पानी के लिए। उडाड्यों—छींटा उड़ाया। ताण्यों—ताना, खींच लिया। वरणागी—पहिले की वरण की हुई। धीर—उठाकर।

४२८—कोइने-किसीको। भाव—भक्ति या श्रद्धा का भाव। भवानी—उमा देवी। पीर—फकीर। तीर—तीर्थ। हलधर केरा बीर—श्रीकृष्ण।

४२९—बोलमाँ—बोलना। साकर—मिश्री। सेरडीनो—सरबत। लींबडो—नींबू। आगिया—अग्नि। झवेर—जवाहिर। कथीर—गूदड़। बोलमाँ—बोलना।

४३०—वारे वारे—बार बार। बोलडा—बोली, बात। कहेताँ—कहते हुए। एवा—ऐसे। सालूडा—लाल साड़ी। सोहागी—सौभाग्यवती।

४३१—ही—भी। तेणे—उनसे। गरज—काम।

४३२—ध्रू—ध्रुव। परमाण—प्रमाण। ठाम—स्थान। सायर-पाज—पुल।

४३३—जाणील्यो—जाना, समझा। वीरा—वीर, प्रिय। श्रा—यह। काया—शरीर। वाडीश्रो—वाटिका। भीणेरा—स्व, बोलना। सरोवर—तालाब। कल्लोला—क्रीड़ा, खेल। हारदा—बाजार, हाट। वणज—वाणिज्य। वेपार—व्यापार। बसेरा—वास, निवास।

४३४—मंदिरिया—गृह, घर। दिवला—दीपक। खलभल्यों—हलचल या हल्ला मचा। ऊभी रही थाँभली—थाम कर खड़ी रही। चाटुं—मीठी बात। कालो—उठा सकती। एता—इतना। वाटकड़ी—कोई पात्र। श्रालो—प्रकाश। श्रोधारुँ—उधार। वाणियो—वणिक। हाटडी—हाट, बजार। धींगाणुँ—उपद्रव।

४३५—मकणो—छोटा। श्रँबाडो—हौदा। कहेलीयुँ—कहा दिया। एवी—ऐसी।

४३६—रमकडुँ—अनुराग, प्रेम। पड़ियुँ—लग गया है। घड़ियुँ—बनाई गई। मोटा—बड़ा। विरला—अल्प, किसी किसी के। सुन—शून्य। शामळियाशुँ—श्रीकृष्ण में।

४३७—श्राद्य—आरंभ ही की। घूँघरा—घाँघरा, लहँगा। श्रमो—हम। मोकल्या—भेजा।

४३८—सोकलडी—शोक। सांल—वेदना। मोटुँ—अधिक। मैयर—मैका। वळावो—बिदा करो। हावे—अब। खोटुँ—अशुभ, बुरा। कुवेरे—कुस्थान या कुसमय। पड़िशुँ—पड़ी हुई हूँ। वखडाँ—विष। पीशुँ—पीऊँगी। जीव्यानुं—जीवन का। आल—झंझट। मेणुं—मेरी। श्रोटुँ—रटूँ।

४३९—पखाज—पखावज, मृदंग। वेणाय—बीन, बाँसुरी।

४४०—चितडुँ—चित को। मनडुं—मन को। बँघाये—वेध दिया। करवाँ—करना। श्रमने—हमें। काँठे—तीर पर। वलभद्रवीर—श्रीकृष्ण। गजरथ—हाथियों द्वारा खींचा जानेवाला रथ। श्वानमढे—कुत्तों के द्वारा। घोटयुँ—पागल है। शिखामण—सिखाना। फोक—व्यर्थ। ज्याँ—जहाँ। श्राश—आशा।

४४१—जेने—जिन्हें। घेर सीद जइए—घर नष्ट हो जायगा। श्रग्निनो भड़को—आग का भभका। सूली—कष्ट देनेवाली। एनी प्रत्ये—इनके प्रति। काईं—कुछ। नाखुँ—डालूँ। पूली—मूँज का गट्ठा। मम-

राणुँ जाल—भ्रमरों का झुंड। देराणी—देवरानी। दाझी—जली हुई। नाहानी—छोटी। मो मचकोड़े—मुख बिचकाती है। भाग्गे—भाग्य। बलता माँ—आग में। मारा घर·········छे—हमारा सारा परिवार पीछे पड़ा है। तेने खुणे—तुम्हारे पास। बेसीने—बैठकर। झीणु—झीना, झिंझरा।

४४२—कागल मोकले—पत्र भेजा। जाणी—जानकर। सांढ—ऊँट। डाबो—सामान की गाँठ। नीसर्‌याँ—निकली। जेनुँ······काय—जिसका मन माया में तनिक भी नहीं है। नावलियो—नवल, प्रेमी। ध्यारे—उसमें से। लाडली—प्रेयसी। सथाते—साथ, सत्संग।

४४३—पूरबनी—पहिले की। हैयुँ—हृदय। दोबली—दुलकी। भव—संसार। पेड्या वासक—सर्प। नाखियो—डाल लिया। ऊजास—उँजाला। रामतणे—राम पर। दीकरी—पुत्री। सीसोदाँ—मेवाड़ का सीसौदिया राजबंश। भ्हालानी—पकड़ने की।

४४४—करवूँ—करना। धरवुँ—धरना। ऊँणा सायर—ओछे लोगों का। काँठड़े बसी—तीर पर बैठकर। हीर नाँ चीर—मूल्यवान वस्त्र। भगवी—गेरुआ रँगा हुआ। तरवुँ—तरना। म्हालियाँ—महल। वरवुँ—वरण करना।

परिशिष्ठ

४४५—फकीरी—साधुपन। दिलगीरी—दुःख, उदासीनता। वाडी—वाटिका। मोजाँ—मौज। जोड़ा—पहिरने का पूरा वस्त्र। फक्कम-फक्का—फाँका।

४४६—सदना—एक भक्त जो जाति का कसाई था। तंदुल—चावल। गोप—चोरों में भरा माल। सैन—सेना नाऊ। रविदास-रैदास।

४४७—काँई करसी—क्या करेगा। सैयाँ—स्वामी। देसी—देगा।

४४८—धोवि—धोओ। सावन—साबुन। निरति—लीनता। सुख-मना—सुषुम्ना नाडी।

४४९—आसुरे—आश्रय। सिमरै—स्मरण करे। पद संख्या ३९१ से मिलान कीजिए।

४५०—नाँद—जल में जहाँ पानी फेर खाता है और जिसमें से मनुष्य क्या नावों तक का निकलना कठिन हो जाता है। वेरी—बेड़ा, नाव। झार—परिश्रम, झगड़ा। संगर—मर्यादा। दामन—मूल्य।

४५१—रौरे—आपके। लागणि—स्नेह। निहाई—लोहे का चौकोर टुकड़ा जिसपर लोहार सोनार सोना चाँदी काटते पीटते हैं।

४५२—लागि रहौं—प्रेम लगाए रहती हूँ। झिनझिन—झीना। बेहाल—व्यथित।

४५३—बुनिन तनिन—ताना-बाना बुनना। धनरा—धना भक्त। जैदेउ—गीतगोविंदकार जयदेवजी। छीपा—एक भक्त जो दरजी था। करमाबाई—एक भक्त थीं, जिनका प्रातःकाल ही ठाकुरजी को खिचड़ी भोग लगाना प्रसिद्ध है, यह वात्सल्यभाव की उपासिका थीं। रका बंका—भक्त थीं, जिन्हें जल भरने की सेवा मिली थी। सधना—यह कसाई था और एक ही बाट से सभी तौल तौलता था। तेग बाहन—खड्ग चलाना। पीपा—अचलदास खीची क्षत्रिय भक्त का नाम। सूर—सूरदासजी को श्रीवल्लभाचार्यजी ने पुष्टिमार्ग का जहाज कहा था।

४५४-८—इन पदों में पंजाबी शब्द अधिक हैं।

४५९—बदगी—सेवा, अभिवादन। दाड़िमदा—अनार का। गमाया—गँवाया। हजूर—सामने।

४६०—राँची—रमी हुई। पाँची—जड़ी हुई। जाहरी—प्रकट। काँची—कच्ची।

४६१—न्यारो छाँणै—अलग कर दे। सारै—लगावै। निस्तारै—उद्धार करता है। मिरतक—मृतक, मरा हुआ। जीवत—जीते हुए को। नरक—दुःख-कष्ट। अकरण करण—बिना कारण के काम पूरा करने-वाला। अगाध—अगम्य, असीम। अगोचर—इंद्रियों से परे। निगम—वेद। नेति—जिसके गुणों का अंत नहीं।

४६२—धनाँ—स्वामी, प्रभु। लुभाय—लुभा कर, फँसाकर। खुमारी—नशा उतरने के अनंतर जो थकावट आती है।

४६३—करणाँ—कानों से। नग—नगर। देरी—देखभालकर। भेरी—हुआ।

४६४—खराँ—खरा, सच्चा। बारदि—बोरा। वधावो—बढ़ाया।

४६५—लोला—प्रेम। आरति—कष्ट। बिलम—देर। होला—होगा।

४६६—लगण दी—लगन की। सदकै—निछावर।

४६७—पतिवरत—पातिव्रत्य। बिदो—प्रशंसा करो। भावती—अपने पसंद की।

४६९—पुरबली—पहिले की। पेट्याँ—पेटी में रखकर। धीयड़ी—पुत्री।

सहायक ग्रंथों की सूची

१. पद-संग्रहार्थ

१—मीरा-मंदाकिनी—सं० श्री नरोत्तम व्यास एम० ए० । २५ पृ० भूमिका, १२५ पद तथा अंत में शब्दार्थ है। पदों की सूचनिका अंत में है। भूमिका सं० १९८७ की है।

२—मीराबाई का काव्य—सं० श्री मुरलीधर श्रीवास्तव। ३५ पृ० भूमिका, अंतर्कथा, भक्तमाल से मीरा-संबंधी पद तथा ११६ पद दिए गए हैं।

३—मीराबाई की शब्दावली—संत-माला। ६८ पृ० में १६० पद, ८ पृ० में चरित्र तथा ८ पृ० में सूची है।

४—मीरा-पदावली—सं० श्रीमती विष्णुकुमारी 'मंजु'। ३८ पृ० में आलोचना, ८ में सूची, ६ में अंतर्कथा तथा २०१ पद हैं। द्वितीय संस्करण सं० १९३९।

५—मीराबाई के भजन—भूमिकादि नहीं है, २४ पद हैं। सं० १९०५ में सिद्धेश्वरी प्रेस, काशी से प्रकाशित।

६—मीराबाई के भजन—केवल ११ पद मीराबाई के आरंभ में हैं, अन्य दूसरों के हैं। कानपुर में श्री मनोहरलाल मिश्र द्वारा प्रकाशित।

७—मीरा की प्रेम-साधना—सं० श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' वीणा मंदिर छपरा। १०५ पृष्ठों में भूमिका, आचार्य ध्रुवजी तथा प० रामचंद्र शुक्लजी लिखित परिचय है और १२० पदों का संग्रह है।

८—स्त्री कवि-कौमुदी—सं० श्री ज्योतिप्रसाद 'निर्मल'। ५ पृ० की जीवनी तथा ३० पद हैं।

९—भक्त मीराबाई—सं० दयाशंकर दूबे, एम० ए०, एल-एल, बी०। अति संक्षिप्त जीवनी तथा १६ पद दिए गए हैं।

१०—सेलेक्शन्स फ्रौम हिंदी लिटरेचर, बुक ४—सं० लाला सीताराम बी० ए०। पृ० १४४—६३ तक संक्षिप्त जीवनी तथा संतबानी सीरीज की मीरा की शब्दावली के पदों से संकलन।

११—भजन-संग्रह, भाग २—सं० श्री वियोगी हरि। ६२ पद संगृहीत हैं।

१२—बृहद्भजनरत्नमाला अथवा भजनावली—सं० श्री हरिप्रसाद भागीरथी, बंबई।

१३—रागरत्नाकर तथा भक्त चिंतामणि—सं० श्री भक्तराम, चालंधर, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई।

१४—मारवाड़ी भजन सागर—सं० श्री रघुनाथप्रसाद सिंहानिया, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता, सं० १९९० ।

१५—मीरा की प्रेमवाणी—सं० 'कंटकजी' श्री रामलोचन शर्मा एम० ए०, कलकत्ता। भूमिका ५४ पृ०, पद ७५ पृ० तथा शब्दार्थ ८४ पृ० ।

१६—रागकल्पद्रुम—भाग १—२ । सं० श्रीकृष्णानंद व्यास 'रागसागर' ।

१७—भजनरत्नाकर—अपूर्ण ।

१८—भजननिधि ग्रंथावली—इस संग्रह से मीरा के ३ पद मिले हैं ।

१९—महिला मृदुवाणी—सं० मुंशी देवीप्रसादजी, जोधपुर । ९ पद मिले हैं ।

२०—हस्तलिखित प्रति, राजकीय पुस्तकालय जोधपुर से प्राप्त प्रतिलिपि से, १९ पद ।

२१—भजन संग्रह—लीथो छापा प्राचीन ४ पद ।

२२—मीराँ की पदावली—श्री सदानंद भारती, एस० एस० मेंदला ब्रदर्स, काशी सं० १९९२ ।

२३—मीराँबाई की पदावली—हिंदी साहित्य सम्मेलन सं० श्री परशुराम चतुर्वेदी एम० ए० एल-एल, बी० । भूमिका १०० पृ०, २०१ पद, ९५ पृ०, शब्दार्थ ८१ पृ०, जीवनी १२ पृ०, सहायक साहित्य ६ पृ० ।

२४—मीरा—ले० श्री श्यामापति पांडेय सं० श्री कालिका प्रसाद दीक्षित—७१ पृ० भूमिका ९२ पद तथा शब्दार्थ ।

२५—मीरा, सहजो व दया का पद्य संग्रह—सं० श्री वियोगी हरि, ४ पृ० जीवनी तथा ३६ पद ।

२६—भजन मीराबाई—फर्रुखाबाद में छपा ६४ पद, साधारण ।

२७—भजन मीराबाई—अमृतसर, १६ पृ० जीवनी ३५ पद ।

२. जीवनी संबंधी, हिंदी

१—मीराबाई की जीवनी—कार्तिक प्रसाद खत्री, सं० १९५० में प्रका० । कुछ पद भी संग्रहीत हैं पर जीवनी निराधार दंतकथाओं से पूर्ण 'वैकुंठवासी रघुराजसिंह जू देव के संग्रह से अधिकांश सग्रहीत है ।'

२—मीराबाई की जीवनी—मुं० देवीप्रसादजी ने बहुत अनुसंधान पूर्वक लिखा है, ३४ पृ० और सं० १९५५ में प्रकाशित ।

३—मेवाड़ का इतिहास—पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, १म भाग ।

४—मारवाड़ का इतिहास—श्रीजगदीशसिंह गहलोत कृत।

५—मीराबाई की जीवनी और प्रीति—श्री सीताराम शरण भगवान-प्रसाद 'रूपकला', सन् १९२२ ई० में खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित, दंतकथा तथा फारसी शेरों से भरी।

६—वीरविनोद—मेवाड़ का वृहत्काय प्रामाणिक इतिहास, महामहो-पाध्याय कविराजा श्यामलदासजी कृत।

७—भक्तकल्पद्रुम—राजा प्रतापसिंह।

८—भक्तमाल—राजा विश्वनाथसिंह।

९—चौरासी वैष्णवन की वार्ता तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता डाकोर का सं० १९६० का संस्करण।

१०—नागर समुच्चय, पद प्रसंगमाला—नागरीदासजी कृत, खड्ग-विलास प्रेस से प्रकाशित।

११—भक्त मीरा—'व्यथित हृदय' लिखित। धर्म ग्रंथावली प्रयाग से सन् १९३३ ई० में प्रकाशित। दंतकथा मात्र, ऐतिहासिक भूलों भरी हैं।

१२—मीराबाई—छात्र हितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग। श्रीमती रामकुमारी श्रीवास्तव, १९३५ ई०। बच्चों के लिये साधारण पुस्तिका।

१३—महाराणा साँगा—श्री हरविलास सारडा।

१४—चतुरकुल चरित, इतिहास, प्रथम भाग—ठा० चतुरसिंह वर्मा राष्ट्रकूट वंशी रूपाहेली मेवाड़ कृत, सन् १९०२ ई० में प्रकाशित, अनु-संधानपूर्वक मेड़तिया राठौड़ों का इतिहास लिखा गया है।

१५—गोस्वामी तुलसीदास—रा० ब० श्यामसुंदरदास तथा श्री पीतांबरदत्त बड़थ्वाल कृत।

१६—भक्तमाल—नाभादास कृत तथा प्रियादास प्रणीत टीका सहित। नवलकिशोर प्रेस द्वारा प्रकाशित प्रति तथा निज संग्रह की दो हस्त लिखित प्रतियाँ।

१७—भक्तनामावली—ध्रुवदास कृत। सं० बा० राधाकृष्णदास, सन् १९०१ ई०। निज संग्रह की एक हस्तलिखित प्रति।

१८—व्यासजी की वाणी—स्वसंग्रह की हस्तलिखित प्रति।

१९—मूता नैंणसी की ख्यात—भाग १–२, हिंदी रूपांतर, पं० राम-नारायण दूगड़।

२०—मिश्रबंधु-विनोद, भाग १—मिश्रबंधु कृत।

२१—भारत के प्राचीन राजवंश, भाग ३—पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ।

१२—मीरा की जीवनी और उसकी कविता—श्री जगदीश सिंह गहलोत।

अंग्रेजी पुस्तकें तथा लेख

१—महाराणा कुंभा—श्रीहर बिलास सारडा।

२—इंडिअन एंटिक्वेरी—सन् १९०१ अगस्त पृ० सं० ३२९-३५, 'सोंग्ज आव मीराबाई, द राजपूत पोएटेस', एम० मेकौलिफ लिखित, संक्षिप्त जीवनी तथा आलोचना।

३—कल्याण—'मीराबाई' श्री नलिनिमोहन सान्याल एम० ए० लिखित, हिंदुस्तानी एकैडेमी के लेख के आधार पर लिखा ज्ञात होता है।

४—मोडर्न वर्नैक्यूलर लिटरेचर ऑव हिंदुस्तान—सर ज्यॉर्ज ग्रिअर्सन लिखित।

५—सौंग्ज़ ऑव मीराबाई—श्री रामचंद्र टंडन एम० ए० कृत मीरा के पदों का अँग्रेजी अनुवाद।

६—द स्टोरी ऑव मीराबाई—श्री बाँके बिहारी बी० एस० सी०, एल-एल० बी०, जीवनी, आलोचना तथा कुछ पद, गीता प्रेस, गोरखपुर। कोरी भावुकता का प्रयास मात्र, दंतकथा का विस्तार तथा परिवर्द्धन।

७—इंडिअन रिव्यू—'मीराबाई', के० बी० रामस्वामी लिखित, दिसं० सन् १९१६ ई० पृ० सं० ८१८-८२१।

८—ईस्ट ऐंड वेस्ट—अगस्त सन् १९१०, 'मीराबाई, ए पोएटेस ऑव गुजरात' भड़ोच निवासी श्री कन्हैयालाल लिखित।

९—मीराबाई—डा० ऐनी बेसेंट लिखित, सेंट्रल हिंदू कॉलेज मैगजीन।

गुजराती पुस्तकें व लेख

१—बृहत् काव्यदोहन, भाग ७, पृ० सं० १-५१ मीराबाई की जीवनी, लेखक रा० रा० तनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी। पृ० सं० ७०१-२५ तक १११ पदों का संग्रह।

२—बृहत्काव्यदोहन, भाग १-२ पृ० सं० ८१९-४१ पर ७ पद, पृ० सं० ८४०-४ पर १७ पदों के संग्रह हैं।

३—मीराँबाई—रा० रा० माणेकलाल जुनीलाल ठुवरिया एम० ए०, एल-एल० एम, आलोचना।

४—मीराबाई—श्रीमानसुखराय महेता।

५—गुजराती साहित्यना मार्गसूचक स्तंभो—श्री कृष्णलाल मोहनलाल

झवेरी एम० ए०, एल-एल० बी० प्रकरण तीन में मीराबाई की जीवनी।

६—पंद्रहमीं शतकना प्राचीन गुर्जर काव्य—श्री केशव हर्षद ध्रुव।

७—सर्वांमंडल—श्री विश्वनाथ केशवजी त्रिवेदी कृत, मीराबाई शीर्षक लेख।

८—मीराबाई की भक्तिभावना—श्री मनुभाई जोधाणी लिखित 'शारदा' मई सन् १९३७ पृ० १२९-३७ पर लेख।

९— आर्य रमणीरत्न भाग १—श्री नारायण हेमचंद्र।

बंगला पुस्तकें

१—सप्त गोस्वामी—सतीशचंद्र मित्र लिखित। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु द्वारा वृंदावन भेजे गए श्री लोकनाथ, श्रीरूप, श्री सनातन, श्री रघुनाथ भट्ट, श्री रघुनाथदास, श्री गोपालभट्ट तथा श्रीजीव सात गोस्वामियों की जीवनियाँ हैं। पृ० सं० ३१०, सन् १९२१ को प्रकाशित।

२—बंगश्री—'मीराबाई', स्वामी भूमानंद लिखित। श्री रैदास को मीरा का गुरु माना है।

३—जयदेव—प्रभासचंद्र दे, श्री सनातन को मीरा का गुरु माना है।

हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में लेख

१—कल्याण—व० १२ सं० १ श्रावण १९९४, संत-अंक और भा० १ सं० ११ ज्येष्ठ सं० १९८४ पृ० सं० ३३२–४१।

२—हिंदुस्तानी—भा० १ अं० १ जनवरी सन् १९३१ पृ० सं० ३७-५८ पर 'मीराँबाई' लेख परशुराम चतुर्वेदी एम० ए०, एल-एल० बी० लिखित। भा० ७ अं० १ 'वैष्णवधर्म वा संप्रदाय का क्रमिक विकास', लेखक वही, पृ० सं० ५१। भा० ८ अं० २ 'मीराबाई व वल्लभाचार्य' लेख।

३—सुधा—व० १ खं० २ पृ० १७१-२ पर ठा० गोपालसिंह मेघविया का 'मीराबाई पर लेख।

४—महाविद्या—अं० ३ सन् १९३६ में 'मीराबाई' लेख, ले० श्री मोहनसिंह एम० ए०, पी०-एच० डी०, डी० लिट।

५—सरस्वती—'रघुनाथदास' लेख, व्रजभूषणदास लिखित।

६—विश्वामित्र—भा० १९ सं० ४६ सं० १९९१, पृ० सं० ५१-५७ 'मीराबाई की भक्ति-भावना' लेख, प्रो० रामलोचन शर्मा 'कंटक' एम० ए० लिखित।

७—नागरी प्रचारिणी पत्रिका—सं० १६७७ पृ० ११४–१८ 'पुरानी जन्मपत्रियाँ', मु० देवीप्रसाद लिखित ।

८—वीणा—व० ८ सं० १९३५, मीरा की प्रेम-साधना' ।

९—राजस्थान—व० १ सं० १ सं० १९९२, 'मीराबाई' ।

१०—पवित्रवचनसुधा—भारतेंदुजी लिखित 'मीराबाई' ।

११—देशदूत (सन् १९४५ ई०)—कुँअर सुखवीरसिंह गहलोत एम० ए० एल० एल० बी० लिखित 'मीरा-नाम या उपनाम', 'मीरा की जन्मतिथि' और 'मीराँ की मृत्यु कब हुई' तीन लेख ।

१२—राजस्थान—भा० १ अंक २ में श्रीरंकृष्ण शर्मा संग्रहीत 'मीराबाई के अप्रकाशित पद' ।

प्रतीकानुक्रमणिका

अ

आ

छ

ज

झ

ट

ड

त

थ

द

ह

हमारी प्रकाशित पुस्तकें